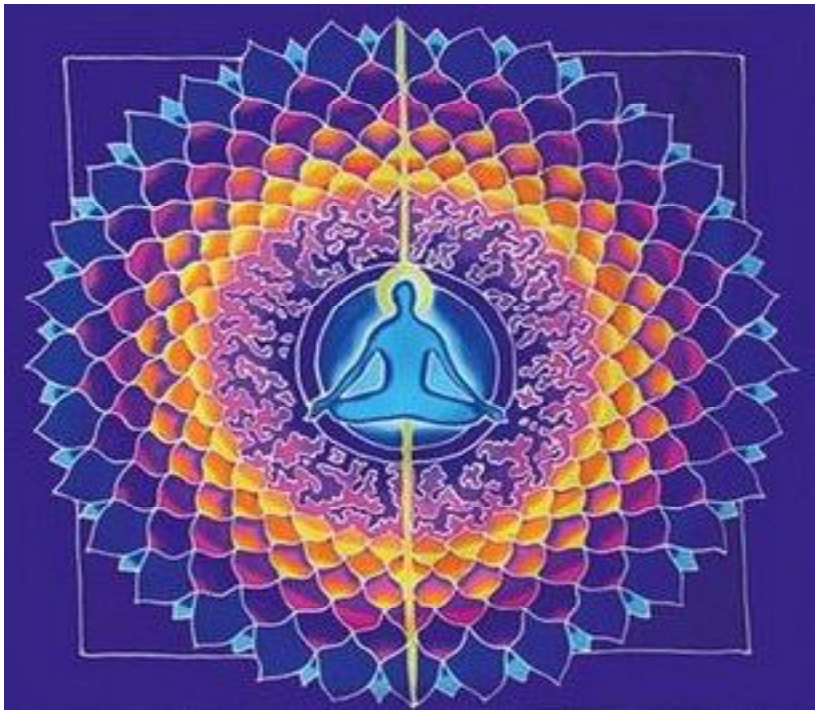
DIPLOMA IN YOGA AND AYURVED PANCHKRAMA

CODE DYA-01



योग विज्ञान का परिचय

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा (राजस्थान)
सौजन्यः पं. सुन्दर लाल शर्मा (मुक्त) विश्वविद्यालय छत्तीसगढ़, विलासपुर

पाठ्यक्रम अभिकल्प समिति

प्रो. विनय कुमार पाठक
कुलपति
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

प्रो. एलआर गुर्जर
अध्यक्ष
वमखुवि, कोटा

डॉ. अनुराधा दुबे
उप निदेशक, विज्ञान एवं तकनीकी
वमखुवि, कोटा

संयोजक एवं सदस्य

संयोजक
डॉ. नित्यानंद शर्मा
योग एवं स्वास्थ्य शिक्षा विभाग
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय,
कोटा
सदस्य

1. डॉ. डी. एन. शर्मा, उत्तराखंड
2. डॉ. ओ. एन. तिवारी, छत्तीसगढ़
3. डॉ. नागेन्द्र कुमार नीरज, हरिद्वार
4. डॉ. भानु जोशी, हल्द्वानी
5. डॉ. बी. पी. गौड़, जोधपुर
6. डॉ. क्षमता चौधरी, वीएमओयू, कोटा
7. डॉ. जयसिंह यादव , जोधपुर
8. वैद्या श्रीमती अंजना शर्मा , कोटा

पाठ लेखन एवं संपादन

पाठ लेखक
डॉ. ओम नारायण तिवारी
कार्यक्रम समन्वयक एवं अधिष्ठाता, छात्र कल्याण
भारतीय दर्शन, ज्योतिष एवं योग विज्ञान विभाग
पं. सुन्दरलाल शर्मा (मुक्त) विवि, बिलासपुर, छत्तीसगढ़ ,

पाठ एवं भाषा संपादक
डॉ. नित्यानन्द शर्मा, सहायक आचार्य,
योग एवं स्वास्थ्य शिक्षा विभाग, वमखुवि

अकादमिक एवं प्रशासनिक व्यवस्था

प्रो. विनय कुमार पाठक
कुलपति
वमखुवि, कोटा

प्रो. एलआर गुर्जर
निदेशक अकादमिक
वमखुवि, कोटा

प्रो. करन सिंह
निदेशक, एमपीडी
वमखुवि, कोटा

डॉ. सुबोध कुमार
अतिरिक्त निदेशक, एमपीडी
वमखुवि, कोटा

उत्पादन – मुद्रण जनवरी 2015

इस सामग्री के किसी भी अंश की वमखुवि, कोटा की लिखित अनुमति के बिना किसी भी रूप में मिमियोग्राफी (चक्रमुद्रण) द्वारा या अन्यकत्र पुन: प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।

वमखुवि, कोटा के लिए कुलसचिव वमखुवि, कोटा (राज.) द्वारा मुद्रित एवं प्रकाशित।

योग विज्ञान का परिचय

अनुसूची

खण्ड –1

इकाई–1 योग विज्ञान की संकल्पना

इकाई–2 योग विज्ञान का ऐतिहासिक विकास

इकाई–3 योग विज्ञान की अवधारणा एवं क्षेत्र

खण्ड–2

इकाई–4 योग दर्शन का स्वरूप

इकाई–5 योग का अर्थ एवं परिभाषा

इकाई–6 योग की सैद्धांतिक पृष्ठभूमि

खण्ड–3

इकाई–7 राजयोग

इकाई–8 हठ योग

खण्ड–4

इकाई–9 महर्षि पतंजलि

इकाई–10 महर्षि वशिष्ठ

इकाई–11 आदि शंकराचार्य

इकाई–12 गुरू गोरखनाथ

खण्ड–5

इकाई–13 स्वामी विवेकानन्द

इकाई–14 महर्षि अरविन्द

इकाई–15 स्वामी कुवलयानन्द

इकाई–16 स्वामी शिवानन्द

खण्ड 1

इकाई 1



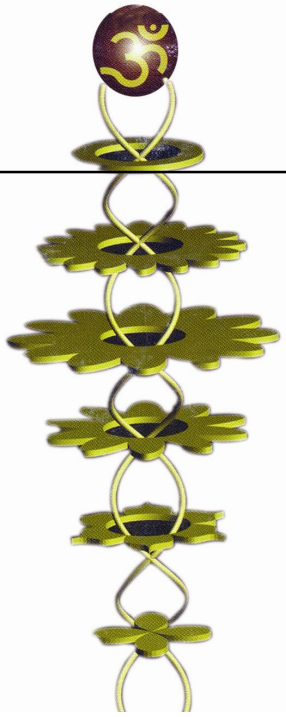
संकल्पना

योग विज्ञान की संकल्पना

इकाई 2



ऐतिहासिक विकास



इकाई 3



अवधारणा एवं क्षेत्र

खण्ड 1 : योग विज्ञान की संकल्पना

प्रथम प्रश्न पत्र **''योग विज्ञान का परिचयात्मक स्वरूप''** के अध्ययन हेतु खण्ड 1 **योग विज्ञान की संकल्पना** को तीन ईकाईयों में विभाजित किया गया है। इनमें इकाई 1 **योग विज्ञान की संकल्पना** इकाई 2 **योग विज्ञान का ऐतिहासिक विकास** इकाई 3 **योग विज्ञान की अवधारणा** को सम्मिलित किया गया है।

खण्ड संरचना

1.0 प्रस्तावना 3

1.1 उद्देश्य 3

1.2 विषय प्रवेश 3

1.3 इकाई 1 योग विज्ञान की संकल्पना 4

- 1.3.1 योग विज्ञान के आधार क्षेत्र
- 1.3.2 भारतीय समाज में योग विज्ञान का स्वरूप
- 1.3.3 आगम योग साधना
- 1.3.4 योग साधना का सैद्धांतिक पक्ष
- 1.3.5 योग विज्ञान का व्यवहारिक महत्व

1.4 इकाई 2 योग विज्ञान का ऐतिहासिक विकास 12

- 1.4.1 परम्परानुसार विकास
- 1.4.2 ऐतिहासिक एवं पुरातात्विक विकास

1.5 इकाई 3 योग विज्ञान की अवधारणा एवं क्षेत्र 22

- 1.5.1 योग विज्ञान की अवधारणा
- 1.5.2 स्वास्थ्य प्रबंधन और अष्टांगिक मार्ग
- 1.5.3 योग विज्ञान के क्षेत्र

1.6 सारांश 25

1.7 बोध प्रश्नों के उत्तर 26

1.8 उपयोगी संदर्भ ग्रंथ 28

1.0 प्रस्तावना

योग विज्ञान छः माह पाठ्यक्रम में दो सैद्धान्तिक प्रश्न पत्रों का अध्ययन आपको करना है। प्रथम प्रश्न पत्र **योग विज्ञान का परिचयात्मक स्वरूप** के अर्न्तगत पाँच खण्डों में सोलह इकाईयों का अध्ययन आपको करना होगा।

प्रथम प्रश्न पत्र के खण्ड एक को तीन इकाईयों में बाँटा गया है। इस खण्ड को पढ़ने के बाद आप यह जान सकेंगे कि योग विज्ञान क्या है। **प्रथम इकाई** के अध्ययन से आपको योग विज्ञान की संकल्पना, योग विज्ञान के आधार क्षेत्र, भारतीय समाज में योग विज्ञान का स्वरूप, आगम योग साधना, योग साधना का सैद्धान्तिक पक्ष तथा योग विज्ञान के व्यवहारिक महत्व की जानकारी हासिल हो सकेगी।

द्वितीय इकाई के अध्ययन से आपको योग विज्ञान के इतिहास की जानकारी प्राप्त होगी, कि किस प्रकार योग विज्ञान का परम्परानुसार इतिहास माना जाता है और किस प्रकार से परम्परायें विकसित हुई। योग विज्ञान के ऐतिहासिक एवं पुरातात्विक विकास का अध्ययन किस प्रकार हुआ एवं वर्तमान समय में योग का स्वरूप किस अवस्था तक आ पहुँचा है इसकी जानकारी हासिल हो सकेगी।

तृतीय इकाई के अध्ययन से आपको योग विज्ञान की अवधारणा की जानकारी प्राप्त होगी, कि स्वास्थ्य प्रबंधा में महर्षि पतंजलि प्रणीत अष्टांगिक मार्ग की उपयोगिता एवं योग विज्ञान के वर्तमान में व्यवहारिक प्रयोगों के क्षेत्र कौन कौन से है।

1.1 उद्देश्य

इन इकाईयों को पढ़ने के पश्चात् आप इस योग्य हो जाएंगे कि निम्नलिखित बिन्दुओं का ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।

- योग विज्ञान क्या है यह ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे
- योग विज्ञान के आधारभूत क्षेत्रों, का ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे
- योग विज्ञान के सिद्धांतों और तकनीकों का सैद्धांतिक ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे
- योग विज्ञान का भारतीय समाज में स्वरूप की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे
- योग विज्ञान की सैद्धांतिक पृष्ठभूमि की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे
- योग विज्ञान का जीवन में क्या व्यवहारिक महत्व है इसकी जानकारी प्राप्त कर सकेंगे
- योग विज्ञान का परम्परानुसार विकास का ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे
- योग विज्ञान का ऐतिहासिक एवं पुरातात्विक विकास का ज्ञान प्राप्त सकेंगे।
- योग विज्ञान की अवधारणा को स्पष्ट रूप से जान सकेंगे।
- स्वास्थ्य प्रबंधन में अष्टांगिक मार्ग की उपयोगिता जान सकेंगे।
- योग विज्ञान के प्रमुख क्षेत्रों की जानकारी हासिल कर सकेंगे।

1.2 विषय प्रवेश

हमारे जीवन के **जन्म ग्रहण से लेकर मृत्यु होने तक मैं किये गये समस्त व्यवहार योग** है। महर्षि अरविंद भी ऐसा ही मानते है कि ''सम्पूर्ण जीवन योग है'' (Whole Life is Yoga) जीवन के कार्यकलापों में कुछ व्यवहार धनात्मक होते है कुछ ऋणात्मक लेकिन विशद् दृष्टिकोण से होते योग ही है। इन धनात्मक और ऋणात्मक व्यवहारों में धनात्मक व्यवहारों को अपनाने या ग्रहण करने का व्यवस्थित या सम्यक् ज्ञान जिस विज्ञान से होता है उसे ही हम योग विज्ञान के नाम से जानते है, इस प्रकार योग एक व्यवहारिक विज्ञान है। योग विज्ञान बहुत व्यापक विषय है यह जहाँ मोक्ष शास्त्र है वही आयुर्वेद चिकित्सा विज्ञान, मनोचिकित्सा विज्ञान, शिक्षा विज्ञान, दर्शन शास्त्र,

मूल्य विज्ञान एवं प्रबंध विज्ञान का भी व्यवहारिक अंग हैं। विज्ञान की विधियों और प्रणालियों की तरह ही योगविज्ञान भी अपने आप में पूर्ण विज्ञान है तथा इसकी अपनी विधियां, प्रणालियाँ एवं तकनीके है। इस प्रकार योग पद्धति एक –

(1) वैज्ञानिक विद्या है।
(2) जीवन में व्यवहार की आदर्श कला है। और
(3) पृथ्वी में उत्पन्न एवं विद्यमान समस्त संस्कृतियों के श्रेष्ठतम् मूल्यों से युक्त मानवीय आचार एवं व्यवहार का लिखित संविधान है।

वर्तमान गतिशील विश्व में स्वास्थ्य एवं शांति की तलाश में भटक रहे लोगों को योग विज्ञान (दर्शन) एक अंतिम सहारे के रूप में दिखाई देता है। योग विज्ञान का बहुत विस्तृत क्षेत्र है इसके कई संकाय एवं उनके भी उपविभाग है। किन्तु प्रचलन में योग शब्द का अर्थ केवल आसन, यौगिक षट्कर्म, प्राणयाम, ध्यान की कुछ दिशा निर्देशित विधियों के अर्थ में ही सिमट् कर प्रदर्शित हो रहा है। योग विज्ञान चेतना का विज्ञान है यह जड़ शारीरिक क्रियाओं से अत्यधिक श्रेष्ठ विज्ञान है ऐसा न होता तो योग आसनों में महारत जिम्नास्टिक के खिलाड़ी **बिना प्रयास के ही योगत्व हासिल कर लेते।** योग **''शरीर का नहीं मन के नियंत्रण द्वारा शरीर पर अधिकार करने की कला** एवं **मन के नियंत्रण द्वारा चित्त को शांत एवं सहज रखने का अभ्यास** एवं **वैराग्य युक्त व्यवहार** के रूप में लिया जाता है। इसमें योग को प्राप्त करने हेतु अभ्यास एवं वैराग्य की सतत् साधना करना पड़ता है।

1.3 इकाई 1 : योग विज्ञान की संकल्पना

1.3.1 योग विज्ञान के आधार क्षेत्र उपरोक्त विषय प्रवेश की प्रस्तावना के संदर्भ में हम योग विज्ञान को दो प्रमुख आधार क्षेत्रों में बाँट सकते है

(1) योग विज्ञान का यम क्षेत्र (2) योग विज्ञान का नियम क्षेत्र

जिस प्रकार ज्ञान योग में प्रवेश हेतु **विवेक और वैराग्य** दो प्रमुख आधार क्षेत्र है उसी प्रकार राजयोग की प्राप्ति यम क्षेत्र एवं नियम क्षेत्र में प्रवेश करने पर ही संभव है।

(1) योग विज्ञान का यम क्षेत्र

मनुष्य के नैतिक प्रशिक्षण की विधियाँ यम कहलाती है इन विधियों के पाँच प्रकार है

(1) अहिंसा
(2) सत्य
(3) अस्तेय
(4) ब्रम्हचर्य
(5) अपरिग्रह

'यम' धातु से बनें इस शब्द का अर्थ है नियन्त्रण करना। पाँचों यमों द्वारा साधक अपने ऊपर नियंत्रण स्थापित करता है। अपने ऊपर नियंत्रण करने से समाज को भी स्वतः ही लाभ प्राप्त होता है इस कारण इन्हें यम कहते है। योग साधना में प्रवेश करने वाला साधक व्यक्तिगत स्तर पर आन्तरिक शुद्धि व सात्विक मनोवृत्ति निर्मित कर सकने में इन यमों द्वारा सक्षम हो पाता है। **मन, वचन व कर्म** से इनका पालन स्वयं के साथ समाज के लिए भी अत्यंत लाभदायक है।

सामाजिक व्यवहार में पूर्णरूप से इन यमों का पालन नहीं किया जा सकता इसे ही ध्यान में रखकर महर्षि पंतजलि ने ग्रहस्थ व्यक्तियों के लिए इनके पालन में कुछ ढील दे दी है। जब इनका पालन प्रत्येक स्थिति, समय एवं काल में अनिवार्य रूप से किया जाता है तो इन्हें **व्रत** कहाँ जाता है तथा ये पाँच यम **पंचमहाव्रत** कहे जाते है। केवल यम क्षेत्र में ठीक से प्रवेश करके भी योग के अन्तिम लक्ष्य कैवल्य को प्राप्त किया जा सकता है। यम विशुद्ध रूप से

मानसिक प्रशिक्षण का क्षेत्र हैं।

(2) योग विज्ञान का नियम क्षेत्र

मनुष्य के लिए कर्म करने के आदर्श सिद्धांत नियम के क्षेत्र के अन्तर्गत आते है इन्हें भी पाँच प्रकारों में बाँटा गया है।

(1) शौच (बाह्य एवं अभ्यन्तर)
(2) संतोष
(3) तप
(4) स्वाध्याय
(5) ईश्वरप्रणिधान

नियम विशुद्ध रूप से क्रियात्मक है। इनके द्वारा प्रमुखतः **शरीर की शुद्धि** एवं **इन्द्रियों पर नियंत्रण** किया जाता है। नियम प्रमुखतः शारीरिक अभ्यास है, और गौण रूप से मानसिक अभ्यास इनके अभ्यास से साधक का स्वयं का अधिकत्तम भला होता है। नियम साधक के कर्मों का परिष्कार कर उसके अन्तःकरण को निर्मल और निःसंग बनाता है। मन की पवित्रता से चित्त में अस्थिरता या चचंलता नहीं आने पाती चित्त की सभी बाह्य वृत्तियाँ अभ्यन्तरमुखी होकर धीरे–धीरे शांत होने लगती है और अन्तः करण में ज्ञान का प्रकाश फैलने लगता है। इस प्रकार पाँचों नियमों का विधि पूर्वक सतत् पालन योग के लक्ष्य की ओर उन्मुख करता है। नियमों का महत्व इतना अधिक है कि **अभ्यास एवं वैराग्य** की प्राप्ति हेतु किये जाने वाले **क्रियायोग** के लिए इनके तीन अंग **तप, स्वाध्याय एवं ईश्वरप्रणिधान** का अभ्यास बताया गया है। नियम का क्षेत्र योग साधना का द्वितीय आधारभूत क्षेत्र है जो योग साधना के अंतिम लक्ष्य को प्राप्त करा सकता है। अतः मन वचन एवं कर्म से नियमों का पालन करना आवश्यक है।

यम और नियम योग विज्ञान की दो साधना प्रणालियाँ केवल योग साधक के लिए ही नहीं बल्कि संपूर्ण समाज व्यावस्था का कार्य सुचारू ढंग से चल सके इस हेतु भी आवश्यक हैं सुन्दर सामाजिक व्यवस्था (आदर्श समाज) के लिए इनका आचरण में व्यवहारिक उपयोग होना अनिवार्य हैं। आज समाज में विकृति आने के प्रमुख कारणों में से यम नियम का पालन न होना भी एक कारण है। यदि समाज के सभी व्यक्ति यम नियमों का पालन स्वयं करने लगे तो आदर्श समाज स्वयं ही बन जावेगा, जहाँ अशांति एवं अव्यवस्था नहीं रह पायेगीं। यम का पालन तो प्रत्येक जाति, धर्म, देश, काल, अवस्था और आश्रम या मन के लोगों के लिए अनिवार्य है यदि वे सही मायने में सामाजिक प्राणी होना चाहते है। इस प्रकार योग विज्ञान समाज के लिए आदर्श व्यवहार का संविधान है।

यम नियम के बिना कोई अभ्यासी योग का अधिकारी नहीं हो सकता। यह न केवल अभ्यासियों के लिए ही वरन् सभी आश्रमों के व्यक्तियों के लिए अति आवश्यक है। इनमें यमों का सारे समाज से घनिष्ठ संबंध होता है, इस कारण इनके पालन में सब मनुष्य परतन्त्र हैं अर्थात् यह सब मनुष्यों का परम् कर्त्तव्य है, जैसा मनु जी का कथन है

यमान् रोवेत सततं न नियमान् केवलान बुधः।
यमान् पतत्यकुर्वाणो नियमान् केवलान् भजन।।

अर्थात् बुद्धिमान को चाहिये कि **यमों** का लगातार सेवन करे, केवल **नियमों** का ही नहीं, क्योंकि केवल नियमों का सेवन करने वाला यमों का पालन न करता हुआ पतन की ओर उन्मुख हो जाता है।

अष्टांग योग ग्रंथ में स्वामी चरण दास ने यम एवं नियमों को विस्तार दिया है।

यम – अंहिसा, सत्य, अस्तेय, ब्रम्हचर्य, क्षमा, दया, धीरता, नम्रता, प्रमितभोजन और शुचिता।

नियम – तप, संतोष, आस्तिकता, दान, ईश्वर पूजन, सिद्धांत, श्रवण, लज्जा, बुद्धि, तप एवं होम।

वर्तमान विश्व समुदाय में दार्शनिक विचारधाराओं के बीच योग पद्धति **''जीवन जीने की कला''** के सामुदायिक स्वरूप में संपूर्ण विश्व में स्थान पा रही है। इसे आज मानव के लिए **जीवन जीने की कला की संहिता (code of art of living)** के रूप में जाना जा रहा है। योग विज्ञान के सिद्धांतों और तकनीकों को चार भागों में बाँटा गया है।

(1) शारीरिक स्तर
(2) मानसिक स्तर
(3) भावनात्मक स्तर और
(4) आत्मिक स्तर

इन स्तरों के परिष्करण और उन्नयन हेतु योग विज्ञान के सिद्धान्तों को प्रयोग में लाया जा सकता है। इन चारों स्तरों के शुद्धिकरण हेतु योग विज्ञान या योग सिद्धान्त के पृथक–पृथक विभाग किये गये है। कुछ प्रमुख विभाग निम्नलिखित तालिका (क्रमांक 01) के अनुसार है।

योग विज्ञान के विभाग या सिद्धान्त

राजयोग		हठयोग	
कर्मयोग	ज्ञानयोगभक्तियोग	लययोग	मंत्रयोग तारक योग

(तालिका क्रमांक 01)

1.3.2 भारतीय समाज में योग विज्ञान का स्वरूप

भारतीय वाड्यम में आध्यात्मिक और धार्मिक संदर्भ में जिन शब्दों का प्रयोग विशेष रूप से देखा जाता है उनमें योग शब्द भी है। आत्मा, ब्रम्ह्य, जीव, मोक्ष, निर्वाण, धर्म और ईश्वर की भाँति योग उन थोड़े से गिने गिनाये शब्दों में है जिनका प्रयोग इस प्रसंग में सर्वाधिक होता है। भारतीय आध्यत्मिक विचारों को तीन प्रमुख धाराओं में विभक्त किया जा सकात है इनमें कालक्रमानुसार **वैदिक, बौद्ध** एवं **जैन** निम्नानुसार है

(अ) वैदिक विचारधारा

नैगम (वेद मूलक) इस विचारधारा के अनुयायी भारत में ज्यादा है ये वेदों को प्रमाण मानते है। वेद मूलतः संस्कृत भाषा में है इनकी श्रेणी में ही गीता, रामायण, महाभारत, महापुराण एवं उपपुराण तथा स्मृतियों तथा धर्मशास्त्रों की गणना होती है। इन सभी ग्रंथों में योग चर्चा भरी पड़ी है, योगियों की कथायें आती है और योगाभ्यास, विभूतियों तथा सिद्धियों के संबंध में विस्तृत उपदेश मिलते है। साथ ही साथ योग विषयक स्वतंत्र उपनिषद एवं ग्रंथ भी प्राप्त होते है, देव देवियों, साधक साधिकाओं के व होने और योग विभूतियुक्त होने का उल्लेख मिलता है।



ईश्वर का प्रतीक चिन्ह प्रणव

(ब) बौद्ध विचारधारा

इस धारा का उद्‌भव महात्मा बुद्ध के उपदेशों से होता है। भारत में इस धारा के अनुयायी कम है किन्तु भारत सहित बहुत से देशों में उनके विचारों एवं साधनाओं का आध्यात्मिक जीवन पर गहरा प्रभाव पड़ा है। इस धारा के आधार ग्रंथ बुद्धदेव के आदेशों और उपदेशों से युक्त परिभाषा में है। भारत के बाहर भी इस विचारधारा के अत्यन्त सुन्दर ग्रंथ उपलब्ध होते है। यह विचार धारा भी योग और योगियों की चर्चा से भरी पड़ी है। बुद्ध का जीवन ही योग साधना का प्रमाणिक संदर्भ है। जिस मध्यम मार्ग **(प्रज्ञा, शील, समाधि)** का उन्होंने प्रसार किया वह उनकी वर्षों की योगसाधना की उपलब्धि थे **''अर्हत्''** जहाँ पहुँचकर फिर जन्म नहीं लेना होता, योगजन्य समाधि का पुरूस्कार है। स्वयं बुद्ध ने कई बार योग साधना का उपदेश दिया, उनके कई शिष्य महान् योगियों के रूप में विख्यात हुये है।

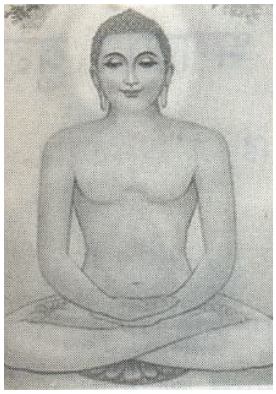


गौतम बुद्ध

(स) जैन विचार धारा

जैन धारा के प्रवर्तक वर्धमान महावीर स्वामी एवं उनके 23 पूर्ववर्तो तीर्थंकर थे। इनका भी मूल साहित्य पालि में है। बाद में संस्कृत में विशाल साहित्य सृजन हुआ। इस धारा में योग का रूप तपश्चर्या में बदल गया। साधु ही नहीं जैन गृहस्थ तक लंबे व्रत और उपवास आत्मशोधन हेतु करते है।

इन तीनों धाराओं का प्रर्वतन पावन भारत भूमि से ही प्रारंभ होकर आज तक सतत् प्रवाहमान है।



वर्धमान महावीर

1.3.3 आगम योग साधना

उपरोक्त तीन धाराओं के साथ ही साथ भारत भूमि में साधना का एक क्षेत्र ''तंत्र'' भी प्रवाहमान हैं तंत्र के दो प्रमुख भेद है (1) आगम और (2) बौद्ध तंत्र।

तन्त्र का जो रूप वैदिक समाज के बीच में प्रस्फुटित हुआ, उसे आगम कहते हैं। वेद निगम कहलाते है, तंत्र आगम है। हिन्दू संस्कृति में आज तांत्रिक विचार और उपासना पद्धति इतनी धुल मिल गई है कि अब विभाजन कर

पाना मुश्किल है, नित्य कर्म, नैमित्तिक कर्म और काम्य कर्म दोनों धाराओं के सम्मिलन से प्रवाहित है। इनमें आज प्रमुखतः व्यवहृत शैव और शाक्त तंत्र है। वैष्णव तंत्र जो बहुत पहिले प्रबल रूप में व्यवहार में थे आज भागवत धर्म के रूप में वैदिक सम्प्रदाय का अविच्छेद और अविछिन्न अंग बन गये है। बौद्ध धर्म का महायान सम्प्रदाय भारत से तिब्बत, चीन, मंगोलिया, कोरिया और जापान तक फैला है जो तंत्र मूलक है। आगम के समान बौद्ध तंत्र भी **योगचर्या** से ओत–प्रोत है महायान सम्प्रदाय वाले देशों में योग का प्रचलन है। योग साधना में तिब्बत भारत से आगे माना जाता है। योग साधना के क्षेत्र में भारत में सिद्धों एवं नाथों की परम्परा भी वर्तमान में प्रचलित है तथा योग साधकों के नाम पर भी कई पंथ वर्तमान है जैसे [illegible] के युग में योग का एक रूप भजन या संकीर्तन भी व्यवहार में



आगम के आदि उपदेष्टा

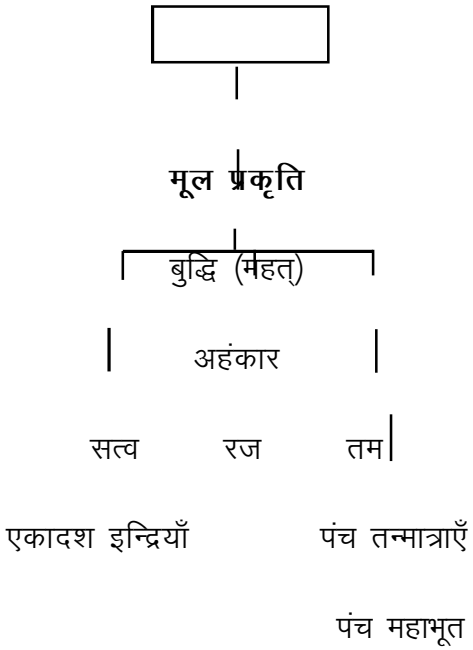
1.3.4 योग साधना का सैद्धान्तिक पक्ष

भारत के लंबे इतिहास में योग और उससे संबध रखने वाले शब्दों का व्यवहार धार्मिक और आध्यात्मिक वाड्मय में भारतीय आत्मा की अभिव्यक्ति का सहज माध्यम है। योगाचार भारतीय संस्कृति का अभिन्न अंग है। जहाँ–जहाँ भारतीय प्रभाव फैला या फैल रहा है, वहाँ–वहाँ योगाचार भी पहुँचा। वर्तमान भौतिकवादी गतिशील संस्कृति का घुटन भरा पहलू आज योग की उपादेयता को निरतंर बढ़ा रहा है। प्रायः प्रश्न उठाया जाता है कि अध यात्म से योग का संबध है पर धर्म से उसका कोई प्रत्यक्ष संबंध नहीं। ऐसे प्रश्नों का उत्तर है कि धर्म तो मुख्यतः आचार, सदाचार का नाम है। इस प्रसंग में मनुस्मृति का यह वाक्य उत्तर देने में पूर्णतः समर्थ सिद्ध होता है।

''अयं तु परमो धर्म्मः यद् योगेनात्मदर्शनम्''

योग के द्वारा आत्मा का दर्शन करना सबसे बड़ा धर्म है। आत्मस्थ या स्वस्थ होना भारतीय संस्कृति के चार पुरुषार्थो (1) धर्म (2)अर्थ (3) काम और (4) मोक्ष में से योग की अवस्था प्राप्त करना मोक्ष पुरुषार्थ की अवस्था है। और इसी अवस्था को परम् पुरुषार्थ (कैवल्य) भी कहते है। इस अवस्था को प्राप्त करने हेतु योग विज्ञान सांख्य दर्शन की सैदांतिक पृष्ठभूमि में जिसमें प्रकृति और पुरुष दो मूल तत्वों की विवेचना की गई है, स्वीकार करता है। भगवान श्रीकृष्ण भी यही कहते है। कि ज्ञानी लोग साख्य और योग में भेद नही करते। साख्य का सृष्टि क्रम तालिका (क्रमाक

02) के अनुसार है।



(तालिका क्रमांक 02)

सृष्टि क्रम की संक्षिप्त व्याख्या

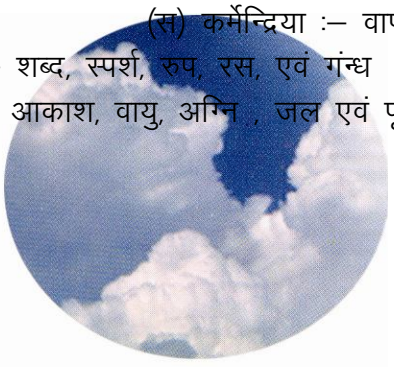
(1) एकादश इन्द्रियाँ :– (अ) मन

(ब) ज्ञानेन्द्रियाँ :– कान , त्वचा, नेत्र, जिव्हा एवं नासिका

(स) कर्मेन्द्रिया :– वाणी, हस्त, पाद, उपस्थ, एवं गुदा

(2) पंच तन्मात्राएँ :– शब्द, स्पर्श, रुप, रस, एवं गन्ध

(3) पंच महाभूत :– आकाश, वायु, अग्नि , जल एवं पृथ्वी



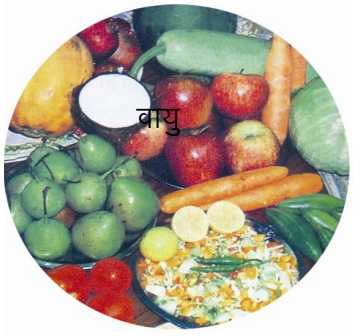




आकाश



वायु

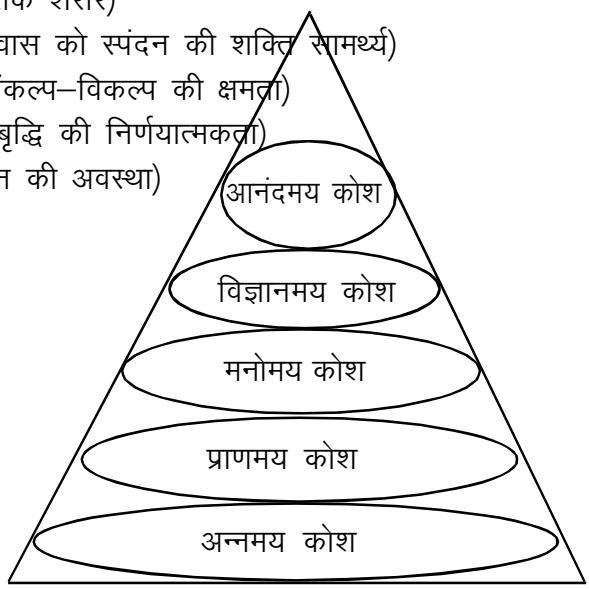


अग्नि जल पृथ्वी

पंच महाभूत

यह दृश्य जगत् और हमारा भौतिक शरीर इन्हीं पंच तत्वों के पंचीकरण से बना हैं हमारे शरीर को उपनिषद् पाँच कोशों में विभक्त करते है तथा स्थूल से सूक्ष्म की ओर बढ़ते है।

(1) अन्नमय कोश (दृश्य भौतिक शरीर)
(2) प्राणमय कोश (श्वास प्रश्वास को स्पंदन की शक्ति सामर्थ्य)
(3) मनोमय कोश (हमारी संकल्प–विकल्प की क्षमता)
(4) विज्ञानमय कोश (हमारी बृद्धि की निर्णयात्मकता)
(5) आनंदमय कोश (पूर्ण ज्ञान की अवस्था)



पंच कोश

आनंदमय कोश में प्रवेश ही योग में प्रवेश है। योग दर्शन का प्रतिनिधि ग्रंथ पातंजल योग सूत्र बड़े वैज्ञानिक ढंग से आत्मस्थ होने के लिए **चित्त वृत्तियों के निरोध** को योग या कैवल्य के रुप में व्यवहारिक रुप से **अष्टांगमार्ग** के रुप में निरुपित करता है। अष्टांग मार्ग के आठ अंग क्रमशः यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान एवं समाधि है। यह आठ अंग मानवीय व्यवहार में मन के नियंत्रण के साधन के रुप में प्रस्तुत होते हैं इसी कारण योग विज्ञान को **भारतीय मनोविज्ञान** की संज्ञा प्रदान की गई है।

1.3.5 योग विज्ञान का व्यवहारिक महत्व

यौगिक जीवन पद्धति साधु सन्तों, महात्माओं और ब्रम्हचारियों जिन्होंने ग्रहस्थ आश्रम या सांसारिक बंधनों का त्याग कर दिया है, केवल उनके अपनाने का विज्ञान नहीं हैं। बल्कि योग पद्धति को कोई भी व्यक्ति विवाहित, अविवाहित स्त्री पुरुष अपना कर योग के वैज्ञानिक सिद्धांतों द्वारा अपने जीवन को सुखमय एवं सहज बना सकता है। व्यक्ति किसी भी आयु–वर्ग, व्यवसाय, धर्म , लिंग, जाति या सम्प्रदाय का हो। यौगिक आचार–विचार से व्यक्ति के गुणों में परिवर्तन आने लगता है। प्रत्येक व्यक्ति में तीन गुण विद्यमान होते है, राजसिक, सात्विक ओर तामसिक। **तमोगुण** – निद्रा, तन्द्रा, मोह, भय, आलस्य, दीनता, भ्रम, आदि उत्पन्न करता है। **रजोगुण** – चंचलता, चिन्ता, संसार कर्मो में प्रवृत्ति आदि पैदा करता है, जिससे दुख और शोक

उत्पन्न होता है। **सतोगुण** से क्षमा, श्रद्धा, धैर्य, उत्साह, वीर्य, दान, दया आदि पैदा होते है। जिससे सुख और आनन्द की वृद्धि होती है। योग के **अभ्यास,** व्यक्ति को ''तम'' और ''रज प्रधान'' अवस्था से ''सत्व प्रधान'' अवस्था की ओर ले जाते है। इसलिए सुखी एवं निरोग जीवन हेतु **योगाभ्यास** परम् आवश्यक एवं **श्रेष्ठतम् मार्ग** है।

वर्तमान जीवन पद्धति दिन प्रतिदिन दुःखी, अशान्त और नीरस बनती जा रही है। इसका मूल कारण यह हैं कि उन्नति के नाम पर हम प्रतिस्पर्धा और तनावपूर्ण जीवन जीने लगे है। व्यक्ति का जीवन असन्तुलित हो गया है क्योंकि जीवन के विभिन्न पक्षों जैसे शारीरिक स्वास्थ्य, मानसिक स्वास्थ्य, समाजिक (नैतिक) स्वास्थ्य एवं आध्यात्मिक स्वास्थ्य में सन्तुलन के कोई प्रयास ही नही किये जा रहे है। इस कारण व्यक्ति दुखित एवं निराश है। योग विज्ञान एक ऐसा विज्ञान है जो **''व्यक्ति को उसके अस्तित्व के सभी पक्षों पर प्रभाव डालते हुए सन्तुलित करता हैं''** उसे पूर्ण स्वास्थ्य, समृद्धि, सुख और शांति प्रदान करता है। एवं व्यक्तित्व के सभी पक्षों को उर्ध्वमुखी कर व्यक्तित्व को आदर्श व्यक्तित्व (सहज मानव स्वभाव) के निर्माण में सहायक होता है।

बोध प्रश्न :

टिप्पणी क : अपने उत्तर नीचे दिये गये स्थान में लिखें ।

ख : इकाई के अंत में दिये गये उत्तरों से अपने उत्तर मिलाइए।

1 योग विज्ञान के आधार क्षेत्रों में से यम क्षेत्र पर प्रकाश डालिये ?

_____

_____

_____

_____

_____

_____

_____

_____

_____

2 योग विज्ञान के आधार क्षेत्रों में से नियम क्षेत्र पर प्रकाश डालिये ?

_____

_____

_____

_____

_____

_____

_____

_____

_____

_____

1.4 इकाई 2 : योग विज्ञान का ऐतिहासिक विकास

1.4.1 परम्परानुसार विकास

योग विज्ञान का ऐतिहासिक विकास तभी से शुरु हो जाता है जब से मनुष्य का अस्तित्व शुरु होता हैं। भारतीय संस्कृति में ज्ञान के सभी स्त्रोतों का उदगम् ईश्वर से शुरु होता है। जिस प्रकार ईश्वर अनादि और अजन्मा है उसी प्रकार योग विज्ञान भी सृष्टि के आरम्भ काल से प्रवाहमान है।

श्रीमद्भागवत गीता में योगेश्वर भगवान श्रीकृष्ण अर्जुन से कहते है कि सृष्टि के आरम्भ में उन्होंने विवस्वान (सूर्य) को सर्वप्रथम योग का उपदेश दिया था। विवस्वान ने अपने पुत्र मनु को अपने पुत्र इक्ष्वाकु को ऐसी परम्परा से योग के इस उपदेश का प्रचार–प्रसार राजाओं में फैला। इस परम्परा से योग की प्रचीनता सृष्टि के साथ शुरु होना लक्षित होती है।

भगवान शिव को योगीश्वर कहा जाता है, तथा आदिनाथ भगवान शिव को योगशास्त्र का उत्पत्तिकर्ता माना जाता हैं उन्होने सर्वप्रथम **आदिशक्ति पार्वतीजी** को प्रथम शिष्या के रुप में योग विज्ञान का ज्ञान दिया। वह ज्ञान **मत्स्येन्द्रनाथ** ने सुना और बाद में इसका प्रसार उनके शिष्यों को परम्परागत् (सिद्धों एवं नाथों की योग परम्परा के रुप में) प्राप्त होता गया ऐसा सन्दर्भ हठयोग की ज्योत्सना टीका से प्राप्त होता है।

योगीयाज्ञवाल्कय स्मृति के अनुसार योग विज्ञान के मूल उपदेशक **हिरण्यगर्भ** है तथा इनसे प्रचीन योग विज्ञान का कोई दूसरा जानकार नहीं है।

सांख्यस्य वक्ता कपिलः परमर्षिः स उच्यते।
हिरण्यगर्भो योगस्य वक्ता नान्यः पुरातनः।।

ऋग्वेद में भी हिरण्यगर्भ के सम्बन्ध में वर्णन मिलता है कि सृष्टि के पहले हिरण्यगर्भ विद्यमान थे इन हिरण्यगर्भ भगवान् को **समष्टि बुद्धि** कहते है, इन्ही को योगी लोग महान् तथा विरचि और अज (अजन्मा) भी कहते हैं। इन्होनें ही सर्वप्रथम पृथ्वी तथा स्वर्ग को धारण किया। पंतजलि योग सूत्र पर **महर्षि वेदव्यासजी** ने भाष्य शुरु करने के पूर्व योग के उत्पत्तिकर्ता के रुप में **वासुकी** से प्रार्थना (स्तवन) की कि **''योग दो योगयुक्तः''**। यही पतंजलि उन्हीं हिरण्यगर्भ (वासुकी) के अवतार माने जाते है।

सारांशतः कहा जा सकता है कि योग विज्ञान का प्रारंभिक विकास सृष्टि आरम्भ के साथ ही शुरु हो गया था। चूकिं भगवान शिव, विवस्वान, हिरण्यगर्भ अथवा वासुकी को **भारतीय मनीषा आप्त वचन** मानकर स्वीकार करती है। किन्तु अन्य या **आधुनिक वैज्ञानिक मनीषा** इन्हें ऐतिहासिक व्यक्तित्व नही मानती। फिर भी उपरोक्त उल्लेख योग विज्ञान की परम्परा अति प्रचीन है ऐसा संकेत अवश्य प्रदान कर देते है।

1.4.2 ऐतिहासिक एवं पुरातात्विक विकास

ऐतिहासिक एवं पुरात्तात्त्विक ज्ञान के आधार पर योग विज्ञान का विकास क्रमशः ज्ञात सभ्यताओं में सबसे प्रचीन सभ्यता सिन्धु घाटी की सभ्यता से शुरु होकर निम्नानुसार हुआ। ऐतिहासिक विकास क्रम को व्यवस्थित करने हेतु पुरातात्विक धरोहरों एवं प्राचीन साहित्य को आधार बनाया गया है। काल क्रमानुसार योग विज्ञान का ऐतिहासिक विकास निम्नलिखित प्रकार से है

(1) पूर्व वैदिक काल
(2) वैदिक काल
(3) उपनिषदों का काल
(4) महाकाव्य काल

(5) सूत्र काल
(6) स्मृति काल
(7) पौराणिक काल
(8) मध्य काल
(9) पूर्व–आधुनिक काल
(10 21वीं शताब्दी का प्रारंभ काल

(1) पूर्व वैदिक काल

वेदों के काल के पूर्व पुरातात्विक साक्ष्यों से ज्ञात होता हैं कि **सिन्धु घाटी** में एक सभ्यता थी जो एक विकसित सभ्यता थी यह सभ्यता मातृ शक्ति की पूजक थी। यही से **पशुपतिनाथ** के रुप में **पद्मासन** में बैठे योगी की मूर्ति प्राप्त हुई है। (चित्र क्र.–1) इस सभ्यता के ध्वंसावशेषों से ज्ञात होता है कि ईसवीं सन् से 3000 वर्ष पूर्व तथा उससे भी पहले भारतवर्ष में योग विज्ञान का प्रचार हो चुका था। पत्थर की प्राप्त मूर्तियाँ जिनका मस्तक, ग्रीवा और धड़ बिल्कुल सीधा है और जिनके अर्ध निमिलित नेत्र नासिका के अग्रभाग पर स्थिर है। योग विज्ञान के शास्त्रीय ग्रंथों में वर्णित ध्यानस्थ मुद्रा में बैठे योगी की प्रतिमा है। जो वायु पुराण के पाशुपत योग का विवरण है। यह साक्ष्य कम से कम योग विज्ञान के इतिहास को ताम्र[illegible] परिपाटी के प्रसार तक अवश्य ले जाता है।



पशुपतिनाथ (सिन्धु सभ्यता)

(2) वैदिक काल

वेद इस वसुन्धरा की सबसे प्राचीन उपलब्ध रचनाएँ है। निश्चित ही काल को लेकर विद्वानों में मत्तैक्य नहीं है। मैकसमूलर 1200 से 1000 ई. पू. प्राचीन मानते है। जैकोबी एवं बालगंगाधर तिलक ने 4500–2500 ई. पू. तथा विन्ट्रनिट्ज के अनुसार 2500 से 1500 ई. पू. के बीच इनका काल माना है। चूंकि वेदों की रचना बुद्ध और महावीर से पहले पूर्ण हो चुकी थी इस कारण किसी भी स्थिति में वेदों का काल 750 ई. पू. से पहले का ही सिद्ध होता है। **वेदों** को **श्रुति** भी इसीलिये कहते है कि ये परम्परा से श्रुति रूप में ही प्रचारित–प्रसारित हुये थे। वैदिक साहित्य में प्राणापानदि वायु, सत्यधर्म की महत्ता, ध्यान, आचार शुद्धि, ध्यानात्मक आसन की स्थिति आदि यौगिक तकनीकि व्यवस्थाओं का स्पष्ट उल्लेख आया है। जैसे :– यजुर्वेद (7:27) एवं (7:14), अथर्ववेद (11:4) अथर्ववेद (19:43:1) में **दीक्षा, तपस्** इन शब्दों का प्रयोग योग साधना के अर्थ में किया गया है। उपरोक्त विवेचना से ऐसा स्पष्ट होता है कि वैदिक काल में भी योग साधना करने वाले योग विज्ञान के जानकार ऋषि, मुनि, योग साधक विद्यमान थे। परंतु एक स्वतंत्र दर्शन के रूप में योग विज्ञान का विकास अभी भी नहीं हुआ था। योग विज्ञान का कुछ विकास ब्राम्हण ग्रंथों में भी देखने को मिलता है। शथपथ ब्राम्हण, एतरेय ब्राम्हण, कौशीतिक जैमनीय एवं गोपथ आदि में **प्राणविद्या** के बारे में विस्तार से वर्णन है। प्रणव विद्या का विकसित रूप आ चुका था प्रणव का अन्य नाम ऊँ है। ब्राम्हण ग्रंथ वेदों के कर्मकाण्ड भाग कहलाते है। जो अपने विभिन्न वेदों से जुड़े है इनमें शथपथ ब्रम्हण सबसे ज्यादा विस्तारित है।

(3) उपनिषदों का काल

वृहदारण्यकोपनिषद (1:5:3) एवं छांदोग्य उपनिषद् में (1:3:3) प्राण, अपान आदि पाँच वायुओं के महत्व का वर्णन किया गया है। हृदय तथा उससे निकलने वाली नाड़ियों का वर्णन कठोपनिषद (2:3:16) तथा छांदोग्य उपनिषद (8:6:1) में पाया जाता है। हठयोग में सबसे अधिक महत्वपूर्ण समझी जाने वाली **सुषुम्नानाड़ी** का अप्रत्यक्ष उल्लेख भी इन दोनों उपनिषदों में तथा तैतिरीय उपनिषद् (6:1) में मिलता है। कठोपनिषद में योग की सुस्पष्ट व्याख्या (2:3:11) की गयी है। श्वेताश्वतर उपनिषद में योगाग्निमय शरीर की तथा ध्यानयोग का संक्षिप्त वर्णन प्राप्त होता है। मुंडकोपनिषद (3:2:6) में **सन्यासयोग** शब्द का प्रयोग मिलता है। योग का आधारभूत विकास उपनिषदों में देखा जा सकता है। जैसे छन्दोग्य और वृहदारण्यक उपनिषद **''क्रियायोग''** का आधारभूत सिद्धांत बताते हैं। **श्वेताश्वतर उपनिषद** योग की दृष्टि से अत्याधिक महत्वपूर्ण उपनिषद है। इस उपनिषद में **योग अभ्यासों का** क्रमवार विवरण प्राप्त होता है तथा उनका शरीर क्रियात्मक प्रभाव का वर्णन भी प्राप्त होता है। जिसकी परम्परा बाद में **हठयोग** के ग्रंथों में प्राप्त होती है। एतरेय और तैतरीय उपनिषद में शरीर के विभिन्न कोषों का वर्णन मिलता है। इस प्रकार उपनिषद योग विज्ञान की आधार शिला कहे जा सकते है।

(4) महाकाव्य काल

दो प्रमुख भारतीय महाकाव्य महाभारत एवं रामायण विभिन्न प्रकार की यौगिक क्रियाओं एवं साधनाओं से भरे पड़े है। योग पद्धति के विभिन्न रूप **रामायण काल** में बहुत प्रचलित थे। **महाभारत** महत्वपूर्ण योग विज्ञान का स्त्रोत साहित्य है, प्रसिद्ध श्रीमद्भगवत् गीता का योग निरूपण इसी ग्रंथ का एक भाग है। गीता **योग युक्त व्यक्ति** के गुणों का वर्णन करती है तथा **ज्ञान भक्ति एवं कर्म** के मार्गों पर प्रकाश डालती है। गीता योग के विभिन्न अभ्यासों एवं तकनीकों का एक विशिष्ट संश्लेषण है। प्राचीन समय से ही गीता पर अनेक भाष्य लिखे गये तथा व्याख्यायें की गई तथा वर्तमान में भी विश्व की सभी भाषाओं में इसके अनुवाद हो रहे है।

(5) सूत्र काल

महर्षि पतंजलि द्वारा संकलित योग सूत्र योग का सबसे प्राचीन व्यवस्थित ग्रंथ सूत्र काल के साहित्य के रूप में हमें उपलब्ध होता है। इसमें 195 सूत्र जो 4 अध्यायों में विभक्त है प्राप्त होते है। यह सूत्र ग्रंथ पूर्व की एवं समसामयिक परम्पराओं का आधार ग्रंथ है साथ ही **परिवर्तित** चिंतकों और योग साधकों को प्रभावित करता रहा है। योग सूत्र के ऊपर कई भाष्य एवं टीकायें लिखी गई है जो क्रमशः उनके समयानुकूल तकनीकों एवं अवधारणाओं से प्रभावित है।

योग सूत्र पर प्रथम भाष्य महर्षि वेदव्यास ने **''व्यास भाष्य''** नाम से किया। बिना इस भाष्य के योग सूत्र सदैव अपने वास्तविक अर्थ से अछूता ही रहता। व्यासभाष्य पर अनेक टीकायें जिनमें विज्ञान भिक्षु, रचित योग वार्तिक, वाचस्पति मिश्र कृत – व्यासभाष्य व्याख्या, भोज द्वारा लिखित राजमार्तण्ड, रामानंद लिखित– मणिप्रभा, रामानुजकृत योगसूत्र भाष्य, राधवानन्द कृत पातंजल रहस्य, पं. बलदेव मिश्र कृत योगप्रदीपिका, ब्रम्हानन्द कृत ज्योत्सना टीका आदि सैकडों टीकायें लिखी जा चुकी है।



महर्षि पतंजलि

यही काल दर्शनों के उद्‌भव का भी काल रहा है। पांतजल योग सूत्र के पूर्व बौद्धों का योग के विकास एवं साधना में विशिष्ट प्रभाव रहा है। बुद्ध ने स्वयं योग की शिक्षा **योग गुरू अरम कलाम** और **उद्‌क रामपुत्र** से प्राप्त की। पतंजलि के योग सूत्र एवं बौद्धों के आरम्भिक ग्रंथों की अवधारणाओं में बड़ी स्पष्ट समानता प्राप्त होती है। बौद्धों के आरंभिक ग्रंथों में ध्यान के चार अंग योग साधना के क्षेत्र में महत्वपूर्ण योगदान है। महर्षि पंतजलि ने भी योग सूत्र में ऐसी ही योजना की व्याख्या की है। जिसमें चार प्रकार के ब्रम्ह विहारों को बताया गया है, **मैत्री, करूणा, मुदिता** और **उपेक्षा।** दोनों ही सिद्धान्त समाधि एवं निर्वाण की अवधारणा में भी समानता रखते है। तथा आठ योगांगों में भी समरूता प्रदर्शित होती। ऐसा लगता है जैसे दोनों समान स्रोत से आयी विचारधारायें है। पंतजलि काल के बाद बौद्ध अनेक शाखाओं में विभक्त हो गयें।

जैन दर्शन के संस्थापक महावीर स्वामी बौद्धों के समकालीन ही थे। महावीर 24 वें तीर्थकर के रूप में गिने जाते है तथा महान् योगाभ्यासी योगी के रूप में जाने जाते है। जैन दर्शन का **उपाययोग** के रूप में सम्मयक कर्म, सम्मक् वाणी एवं सम्यक् ज्ञान को प्राथमिकता देती है और साधना के तीन अंगों (1) ज्ञान योग (2) इच्छायोग (3) क्रिया योग बतलाते है। मुक्ति के लिए जैनियों की शिक्षा में सम्यक् दर्शन सम्यक् चरित्र का विधान हैं या पूर्ण मुक्ति इन्हीं से संभव है। यमों का जो वर्णन पंतजलि योग सूत्र में प्राप्त होता है वहीं जैन पंथ के भी हैं। हेमचन्द्र द्वारा लिखित एवं व्याख्यायित योग ग्रंथों में मुख्य है। योग बिन्दु, प्रवचनसार, योगदृष्टि समुच्चय, योगसार, परमात्मा, तत्ववृताधिगम् सूत्र आचार्यडंग, उत्तरध्यान आदि।

(6) स्मृति काल

स्मृतियों का काल पतंजलि के काल से शुरू होता है हालांकि कुछ स्मृतियाँ 500 B.C. के आसपास सम्पादित हुई है तथा 1000 A.D. तक लिखी गई है। **स्मृति साहित्य** के इस लंबे काल में हमें विश्वास, पूजा और रीति रिवाजों में अनेक परिवर्तन प्राप्त होते है। स्मृतियों में योग नित्य कर्मों में स्थान रखता है। अभी तक सत्ताइस स्मृति ग्रंथ प्राप्त है तथा प्रकाशित हुये है। इनमें याज्ञवाल्कय स्मृति, मुन स्मृति, दक्षस्मृति प्रमुख है।

(7) पौराणिक काल

पौराणिक काल में **योग विज्ञान** का **विकास** प्रथम ईसवीं सदी के आसपास से शुरू होता है। परम्परागत पुराणों में 18 पुराणों को लिया जाता है ये निम्नलिखित है

(1) ब्रम्ह, (2) पद्य, (3) विष्णु, (4) वायु, (5) भागवत्, (6) नारदीय, (7) मार्कण्डेय, (8) अग्नि, (9) भाविष्य, (10) ब्रम्हत वैवर्त, (12) लिंग, (13) वाराह, (14) वामन, (15) कूर्म, (16) मत्स, (17) गरूड़ और (18) ब्रम्हानंद पुराण इनमें से अधिकांश पुराण योग अंगों को बताते है तथा योगचर्या की विवेचना करते है। इन अठारह पुराणों के 18 उपपुराण भी है इनकी संख्या सैकड़ों भी हो सकती है लेकिन केवल 15 ही मुद्रित प्राप्त होते है। ये योग साधना पर जोर देते है तथा योगांगों की विविध व्याख्यायें प्रदान करते है।

(8) मध्यकाल

मध्यकाल को योग विज्ञान के विकास में हम निम्न चार धाराओं में पृथक–पृथक देख सकते है। ये चार धारायें निम्न हैं

(1) तन्त्र धारा
(2) नाथ धारा
(3) भक्ति धारा
(4) शंकराचार्य धारा

(1) तन्त्र धारा

तंत्र योग साधना का बहुत बृहत साहित्य प्रकाशित एवं अप्रकाशित दोनों रूपों में मिलता है। तंत्र सामान्यतः शक्ति उपासना, मुद्राओं, मंत्रों, मण्डलों तथा पंचमकार इनमें भी दक्षिणमार्गों वाममार्गों और जादूई प्रयोगों के द्वारा अति

प्राकृतिक शक्तियों को प्राप्त करना है। यह कह सकना बड़ा शोध का विषय है कि कौन सा तंत्र पहले प्रचलित हुआ। इन तंत्रों में अनेक विषयों को सम्मिलित किया गया है। सातवीं से बारहवीं शताब्दी का काल सर्वाधिक तंत्र ग्रंथों के प्रणयन का काल रहा, इनमें हिन्दू और बौद्ध दोनों सम्मिलित है। योग साधना का प्रयोग तंत्रिक आनंद प्राप्ति हेतु करते हैं तथा इनकी साधना के तीन स्तर है पशुभाव, वीरभाव, एवं दिव्यभाव, ये तीनों भाव साधकों की साधना के स्तर पर निर्भर करते है। अन्तिम स्तर पर पहुंचते–पहुंचते तांत्रिक इन्द्रियों के स्तर से भी ऊपर उठ जाता है।

(2) नाथ धारा

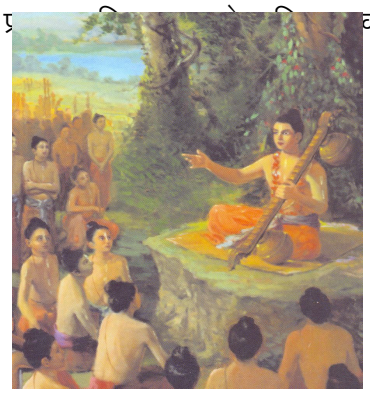
तांत्रिक धारा का विकास राजयोग और बौद्धों की सहजयान शाखा से शुरू होता है तथा राजयोग पतंजलि के योग से अत्याधिक भ्रमित करता है। राजयोग की पृष्ठभूमि में हठयोग रहा है तथा यह नथों की साधना से बहुत लोकप्रिय बन गया। हठयोग साधना का मूल आधार तांत्रिक सिद्धान्त ही रहे है। उच्च आत्मिक अनुभवों के लिए नाथ योगियों द्वारा शरीर का प्रयोग एक साधन के रूप में माना गया। यही योग आज संपूर्ण विश्व में सर्वाधिक लोकप्रिय हो रहा है। हठयोग के प्रमुख ग्रंथों में सिद्ध सिद्धान्त पद्धति, गोरक्षशतक, हठप्रदीपिका, धेरण्ड संहिता, शिव संहिता, प्रमुख हैं। कुछ प्रमुख ग्रंथ जो पाण्डुलिपियों में [illegible] हठरत्नावली, हठसंकट चन्द्रिका, योग चिन्तामणि आदि इस धारा के प्रमुख साहित्य है।



गुरू गोरक्षनाथ

(3) भक्ति धारा

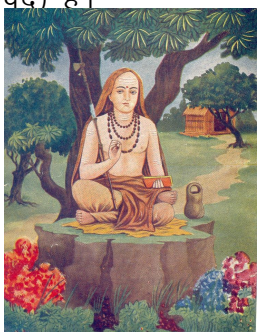
योग विज्ञान ने भक्ति साहित्य को भी अत्यंत प्रभावित किया। भक्ति संतों ने योगसाधना द्वारा गूढ़ रहस्यों को खोजा एवं उन्हीं साधनाओं के द्वारा भक्ति की ओर प्रेरित भी किया। भागवत पुराण वैष्णव संम्प्रदाय की बाइबिल की तरह अपनाई जाती है। प्राचीन काल से ही शाण्डिल्य सूत्र और नारद भक्ति सूत्र व्यावस्थित रूप में भक्ति को एक अन्य स्वरूप में प्रस्तुत करते रहे हैं। इस प्र[illegible]की आधारभूमि पर ही खड़ी प्रतीत होती है।



भक्ति का उपदेश देते महर्षि नारद

(4) शंकराचार्य धारा

आदिशंकराचार्य द्वारा भारतीय संस्कृति की एकता और अखण्डता को अक्षुण बनाये रखने हेतु संपूर्ण भारत वर्ष को चार भागों क्रमशः उत्तर **(ज्योतिर्मठ)** दक्षिण **(श्रृगेंरीमठ)** पूर्व **(गोवर्धनमठ)** पश्चिम **(द्वारकाशारदा मठ)** में बाँटकर सनातन धर्म की पुनः स्थापना कर योग पद्धति से जीवन जीने एवं जीवन का अंतिम लक्ष्य मोक्ष प्राप्त करने का संदेश दिया गया। आदिशंकराचार्य ने योगाचार्य भगवत्पूज्यपादाचार्य से योग साधना की दीक्षा ली एवं अपने योगबल से मात्र 32 वर्ष की आयु में संपूर्ण भारतीय समाज को अंधकार में जाने से रोककर अपने अद्वैत वेदांत के सिद्धांत से पूरे विश्व को बौद्धिक चुनौती प्रदान की। उनकी यह परम्परा सतत् प्रवाहमान है एवं योग साधना के विभिन्न क्षेत्रों को आलोकित कर रही है इस धारा के वर्तमान में चार शंकराचार्यों में – 1. शारदामठ (द्वारिका) एवं, 2. ज्योर्तिमठ (बदरिकाश्रम) के शंकराचार्य **अन्नतश्रीविभूषित स्वामी स्वरूपानन्द जी सरस्वती महाराज** हैं। इन्होंने पिछले करीब दो सौ वर्षों की विलुप्त धारा को पुनः प्रवाहित किया एवं ये साक्षात् योगीश्वर के अवतार है। 3. गोवर्धन मठ (जगन्नाथपुरी) के शंकराचार्य **श्री निश्चलानन्द जी** है। तथा 4. श्रृंगेरीमठ (रामेश्वरम्) के शंकराचार्य **श्री भारतीतीर्थ जी महराज** है। इन चारों मठों के ब्रम्ह वाकय क्रमशः 1. **तत्वमसि** (सामवेद), 2. **अयमात्मा ब्रम्ह** (अथर्ववेद), 3. **अहं ब्रम्हास्मि** (यजुर्वेद) एवं 4. **प्रज्ञानं ब्रम्ह** (ऋग्वेद) है।



आदि शंकराचार्य

(5) पूर्व आधुनिक काल

भक्ति काल के उपरांत योग विज्ञान को विकास एवं लोकप्रियता दिलाने में स्वामी श्रद्धानंद (आर्यसमाज) राजाराममोहन राय (ब्रम्हसमाज) स्वामी विवेकानंद रामकृष्ण मिशन का बड़ा योगदान रहा है। महर्षि रमन एवं परमहंस योगानंद ने लगातार योग विज्ञान का प्रचार–प्रसार भारत के बाहर कर के लोकप्रियता बढ़ाई। रमन् महर्षि श्री अरविंद स्वामी शिवानंद ने भी इसी काल में योग विज्ञान पर महत्वपूर्ण कार्य किया। जहाँ **विवेकानंद** ने राजयोग की वैज्ञानिकता पर कार्य किया वहीं **शिवानंद** ने योग सन्यास परम्परा पर कार्य किया तथा इसी दौरान **स्वामी कुवल्यानंद** जी ने योग की विधियों का वैज्ञानिक उपकरणों एवं तकनीकों से सांमजस्य स्थापित करते हुए प्रयोगों का नया क्षेत्र खोला एवं दैनिक जीवन में योग विज्ञान की उपादेयता सिद्ध करने के प्रयास किये। इसी क्रम में **गीता प्रेस गोरखपुर** ने योग साहित्य द्वारा जन–जन तक योग ज्ञान फैलाने में महती भूमिका का निर्वहन किया।

10. 21वीं शताब्दी का प्रारंभ काल

योग साधना का सामुदायिक स्वरूप 20वीं शताब्दी के अंतिम दशकों में विशेष धार्मिक–सामाजिक आंदोलनों के विशेष अर्थों में प्रारंभ हुये इनमें :–

(1) **आचार्य श्रीराम शर्मा** ने गायत्री परिवार के रूप में समाज का विशिष्ट कार्य प्रारंभ किया जिसमें योग के विविध स्वरूप समाहित है। शांति कुंज हरिद्धार इसका केन्द्र है।

(2) **महर्षि महेश योगी** ने भावातीत ध्यान की संकल्पना के साथ सम्पूर्ण विश्व में ध्यान की नई पद्धति एवं भारतीय आस्था के केन्द्र वेदों में सम्पूर्ण ज्ञान का सार खोजा। इन्होंने विश्वभर में चेतना विज्ञान एवं वेद अध्ययन केन्द्रों की स्थापना की। भावातीत ध्यान पर विश्वभर में कई वैज्ञानिक शोधकार्य हुऐ हैं। इनकी दो पुस्तके :– 1) साईंस ऑफ बींग एण्डं आर्ट ऑफ लिवींग (Science of Being and Art of Living) तथा 2)कोमेंट्री ऑन श्रीमद्भगवद गीता (Comentry on Shrimad Bhagvad Geeta) बड़ी प्रसिद्ध हैं।

(3) **अर्न्तराष्ट्रीय श्रीकृष्ण भावनामृत** संघ के संस्थापक भक्ति वेदान्त स्वामी प्रभुपाद ने अमेरिका से भक्ति योग का शंखनाद किया। तथा सम्पूर्ण विश्व में 108 श्रीकृष्ण के भव्य मंदिर बनवायें।

वर्तमान में योग विज्ञान ने एक जन आंदोलन का रूप ले लिया है केन्द्र एवं राज्य सरकारें इसमें अपना पूर्ण योगदान कर रही है। स्वास्थ्य मंत्रालय ने योग विज्ञान के प्रचार–प्रसार हेतु **योग एवं प्राकृतिक चिकित्सा अनुसंधान संस्थान** के रूप में एक केन्द्रीय संस्थान बनाया है जिसका मुख्यालय दिल्ली में है जो योग विज्ञान में शोध एवं प्रचार हेतु अनुदान भी उपलब्ध करवाता है। देश के अनेक विश्वविद्यालयों द्वारा योग शिक्षा के स्नातक, स्नातकोत्तर, पत्रोपाधि एवं शोध कार्यक्रम प्रारंभ किये गये है। इनमें सर्वप्रथम शुरूआत सन् 1959 में डा. हरिसिंह गौर विश्वविद्यालय सागर में योग विज्ञान विभाग की स्थापना से हुई। आज अनेक राज्यों में राज्य शासन के राज्य स्तरीय योग केन्द्र जनस्वास्थ्य एवं शिक्षा हेतु गठित है एवं कार्य कर रहे हैं। 21वीं शताब्दी में योग विज्ञान **दैनिक चर्या के विज्ञान** के रूप जीवन के सभी क्षेत्रों में प्रवेश कर रहा है, योग विज्ञान के विकास में ये **शुभ लक्षण** है।

डॉ. हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय सागर (विश्व का प्रथम योग विभाग)

बोध प्रश्न :

टिप्पणी क : अपने उत्तर नीचे दिये गये स्थान में लिखें ।

ख : इकाई के अंत में दिये गये उत्तरों से अपने उत्तर मिलाइए।

3 योग विज्ञान के परम्परानुसार विकास को स्पष्ट कीजिये ?

_____

_____

_____

_____

_____

_____

_____

4 वैदिक काल में योग विज्ञान के विकास को स्पष्ट कीजिये ?

_____

_____

_____

_____

_____

_____

1.5 इकाई 3 योग विज्ञान की अवधारणा एवं क्षेत्र

1.5.1 योग विज्ञान की अवधारणा

जीवन के जो भी धर्म है, उन सबके साध्य हेतु शरीर ही एक मात्र साधन है। साधन जितना सम्यक् होगा साध्य उतना ही उन्नत (उच्च) होगा। प्राचीन काल से आज तक मनुष्य ने जो कुछ भी भौतिक प्रगति की है उन सब में

इस शरीर को ही सुख प्रदान करने का उद्देश्य निहित है। भारतीय वाङ्गमय विशेषकर वेद (संहिताएँ, ब्राम्हण, आरण्यक एवं उपनिषद्) एवं परिवर्तों काल में षड्दर्शन, शरीर रूपी साधन से सत्यानुसंण्धान, तत्वानुसंधान, ब्रम्हानुसंधान, आत्मानुसंधान या स्वास्थ्यानुसंधान रूपी साध्य को प्राप्त करने का उद्योग प्रस्तुत करते रहे हैं। भारतीय चिंतकों ने तो शरीर को सम्पूर्ण ब्रम्हाण्ड की सूक्ष्म प्रतिकृति की संज्ञा दी है। इस सच्चिदानंद (सत्यं, शिवम्, सुन्दरम्) **ब्रम्ह** से ही विश्व के सब प्राणियों का जन्म **आनन्द** में हुआ है और वह आनन्द में ही जीवन जीता है तथा आनन्द में ही उसका लय हो जाता है। ऐसा **तैतरीय उपनिषद** का मत है और यदि ऐसा नहीं हो रहा है तो शरीर को स्वस्थ रखने में सम्यक्ता नहीं है। और तब स्वास्थ्यानुसंधान के रूप में योगानुसंधान की आवश्यकता होगी।

वर्तमान में भी सम्यक् स्वास्थ्य को परिभाषित करते हुए ''विश्व स्वास्थ्य संगठन'' स्वास्थ्य को केवल रोग और अपंगता का अभाव भर नहीं मानता बल्कि व्यक्ति की संपूर्ण **भौतिक, मानसिक** एवं **सामाजिक** सम्पन्नता की स्थिति को स्वास्थ्य से जोड़कर देखता है। जे. एफ. विलियम स्वास्थ्य को जीवन का वह गुण मानते है जो मनुष्य को अधिकतम जीवित रहने एवं श्रेष्ठतम सेवा करने योग्य बनाता है। आयुर्वेद स्वस्थ मनुष्य हेतु एक सर्वांग परिभाषा प्रस्तुत करता है जिसके तीनों दोष (वात, पित्त, कफ) सम हों जिसकी जठराग्नि (पाचन क्रिया) सम हो, जिसकी धातुओं (रस, रक्त, मांस, मेद, अस्थि, मज्जा, शुक्र) की क्रिया सम अर्थात् क्षय और वृद्धि से रहित हो जिसके मलों (स्वेद, मूत्र, पुरीष) की क्रिया सम हो, जिसकी आत्मा, दशों, इन्द्रियाँ (पांच ज्ञानेन्द्रियाँ, पाँच कर्मेन्द्रियाँ) और मन प्रसन्न (निर्मल अविकारी) हों वह व्यक्ति ''स्वस्थ'' कहलाता है। अर्थात् शरीर, मन, आत्मा तीनों पूर्ण रूप से विकार रहित हो तो तब उसे सम्यक् स्वास्थ्य कहा जाता है।

मनुष्य जन्म से पूर्व, जन्म की सूक्ष्मता एवं जन्म के बाद वृद्धि में जो भी कर्म करता है वह सब योग ही है। अर्थात् जड़ चेतन के बीच जो भी परिवर्तन हो रहा है। वह सब योग का ही प्रयोजन है, **क्रमबद्ध पर्याय** है। इस क्रमबद्ध पर्याय से परे हटना सम्यक् रूप से स्वा की स्थिति से परे हटना ही अस्वास्थ्य है। स्वा में स्थित रहने का पूरा विज्ञान योग दर्शन स्पष्ट करता है। स्वा में अर्थात् समाधि में स्थित होने के लिए क्रिया योग की आवश्यकता होती है। क्रिया योग के तीन रूप है **तप, स्वाध्याय और ईश्वरप्रणिधान** इन्हें स्वास्थ्य प्राप्त करने के नियमों शौच एवं संतोष के साथ रखा गया है। शरीर को सम्यक् स्वास्थ्य प्रदान करना (निरोग रखना) **तप** है, मन को सम्यक् स्वास्थ्य प्रदान करना (मन का निग्रह या नियंत्रण) स्वाध्याय (आत्म ज्ञान) है, तथा आत्मा को सम्यक् स्वास्थ्य प्रदान करना आत्मा को तम के आवरण से रहित करना **ईश्वर प्राणिधान** है। ये तीनों क्रिया योग के रूप में अभ्यास एवं वैराग्य की सिद्धि करवाते है। अभ्यास से शरीर एवं वैराग्य ही मन की शुद्धि होती है तब व्यक्ति समाधि की ओर अग्रसर होने की योग्यता अर्जित कर पाता है।

समाधि की ओर अग्रसर होने हेतु योगदर्शन वर्णित व्रतों का नियम पूर्वक (मन, वचन, कर्म) से पालन करना होता है, व्रत जो जाति, देश, काल और समय की सीमा से रहित समस्त अवस्थाओं में पालन करने योग्य है इनके पाँच प्रकार के क्षेत्र हैं, इन व्रतों को महाव्रत या यम कहा जाता है। इनके द्वारा स्वयं पर नियंत्रण किया जाता है, इनका अभ्यास मानसिक स्तर पर होता है जो शुद्ध सात्विक मनोवृत्ति निर्माण करते हैं। उनके भेद हैं अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रम्हचर्य और अपरिग्रह। इन व्रतों को नियमों से पालन करना चाहिए। नियमों के भेद है, शौच, संतोष, तप, स्वाध्याय और ईश्वर प्राणिधान। ये नियम विशुद्ध रूप से क्रियात्मक है इन नियमों के पालन से शरीर और इन्द्रियों को मन नियंत्रित करने की योग्यता अर्जित कर लेता है। मन के नियंत्रण के चित्त शांत होता है। चित्त के शांत होने से वृत्तियॉ उठना बंद हो जाती है। यही **योगस्य** चित्त, वृत्ति, निरोधः है।

1.5.2 स्वास्थ्य प्रबंधन और आष्टांगिक मार्ग

सम्यक् स्वास्थ्य प्राप्त करने हेतु शारीरिक, मानसिक एवं आत्मिक शुद्धि का विधान योग दर्शन में महर्षि पंतजलि आठ सोपानों में करने का उपदेश करते हैं। ये आठ सोपान, **यम–नियम, आसन–प्राणायाम,** प्रत्याहार–धारणा, ध्यान एवं समाधि है। यमों एवं नियमों के पालन करने में, वितर्क, बाधा (व्यवधान) उत्पन्न करते हैं, इस हेतु उनसे बचना चाहिये। वितर्कों से बचकर यम नियमों का पालन करने पर शरीर को स्थिर एवं सुखपूर्वक स्थित रखने में संसारिक

द्वन्दों के प्रभाव नहीं व्यापते। द्वन्दहीन शरीर में प्राणों का संचालन अपनी इच्छा से किया जा सकता हैं। प्राणों का संचालन तीन भेदों में क्रमशः अन्तः, बाह्य और स्तम्भ रूप से देश, काल एवं संख्या से अपने शरीरानुकूल निर्धारित करना होता है और जब प्राण अपने इच्छा से (स्वाभाविक रूप से) गति करता है तो बुद्धि स्थिर हो जाती है। स्थिर बुद्धि ही विवेक ज्ञान है। बुद्धि से स्थिर (प्रकाशित) होने पर मन को निग्रह (वश) में करने की योग्यता आ जाती है और जब मन को अपने वश में करने की क्षमता (प्रत्याहार) आ जाती है तो इन्द्रियों का वश में होना (बुद्धि का स्थिर होना) निश्चित हो जाता है। इन्द्रियों को विषयों से स्थिर बुद्धि के अनुसार संबंध रखने की योग्यता धारणा जब हो जाती है तब अहंकार समाप्त हो चित्त (मन, बुद्धि, अहंकार) शांत होने लगता है। शांत चित्त (धारणा, ध्यान, समाधि) को किसी विषय में एकाग्र किया जाना संयम कहलाता है। संयम से भूत एवं भविष्य सब दृष्ट हो जाता है तथा संयम से अनेक सिद्धियाँ (अलौकिक सामर्थ्य) प्राप्त हो जाती है। संयम से एकाग्र हुआ चित्त **दृष्टा** एवं **दृश्य** से रंगा हुआ समस्त अर्थों वाला होता है। ऐसा चित्त ही स्वरूप को प्राप्त कराता है, इस चित्त को स्थिर करने के उपाय यौगिक जीवन शैली द्वारा संभव है। यह शैली संसार में सर्वाधिक संख्या में उपस्थित मध्यम अधिकारियों के लिए एक मात्र विकल्प है। इसके अन्तर्गत श्रद्धापूर्वक, योग साधना पद्धति के सोपानों को पूर्ण करना होता है। इस हेतु मन, वचन, कर्म से यमों का नियमों के द्वारा पालन करना चाहिए। शरीर का षट्कर्मों (नेती, धोती, बस्ती, कुजंर, नौली एवं त्राटक साथ ही कपालभाति, धौंकनी, बाधी और शंख प्रक्षालन) की क्रियाओं को करते हुए, शरीर के प्राकृतिक विकास हेतु योग आसनों का अभ्यास करना चाहिए। आसनों द्वारा शरीर के सम्यक् विकास में (शरीर को पूर्णतः प्राणों युक्त करने में) प्राणायाम का विधान भेद एवं अंगों सहित करने का विवरण योगदर्शन प्रस्तुत कर इसे स्थिर करने हेतु मन के निग्रह हेतु प्रत्याहार की विधि से मन को धारण करने का निर्देश करता है। मन को धारण करने के आधार के अनुसार ही आधार ध्यान में पर्णित होने लगता है और ध्यान की गहराई के अनुरूप ही सम्यक् स्वास्थ्य (समाधि) घटित हो जाता है।

योग दर्शन अधिकारी भेद से समस्त मनुष्यों को तीन प्रकारों उत्तम, मध्यम एवं निम्न (हीन) में वर्गीकृत करता है तथा उत्तम अधिकारियों को राजयोग द्वारा आत्मानुसंधान या कैवल्य प्राप्ति का निर्देश करता है। मध्यम अधिकारियों को ज्ञानयोग, भक्तियोग, कर्मयोग आदि के द्वारा मनोनिग्रह कर आत्मज्ञान की प्रेरणा देता है तथा निम्न (हीन) अधिकारियों को शरीर शुद्धि की ओर प्रवृत कर हठयोग की सहायता का विधान करता है। जड़ शरीर की सम्यक् शुद्धि होने के बाद चित्त की (मन, बुद्धि, अहंकार) पुरूष के समान शुद्धि होने पर सम्यक् स्वास्थ्य (मोक्ष, निर्वाण, परमपद, कैवल्य मुक्ति) प्राप्त किया जा सकता है। यही योग का अनुशासन (प्रबंधन) है और यह अनुशासन ही कैवल्य की ओर प्रवृत (प्रेरित) करता है।

1.5.3 योग विज्ञान के क्षेत्र

विज्ञान की अंधाधुन्ध प्रगति और मानव व्यक्तित्व के वैश्वीकरण की स्थिति ने मानव जीवन की **निजता एवं सरलता** को मानव जीवन से छीन लिया है। जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में प्रतिस्पर्धा के बिना सहज जीवन रह ही नहीं गया है। ढ़ाई साल का बालक नर्सरी शिक्षा में 'पाँच किलो' का स्कूल बैग लिये बगैर अपना अस्तित्व ही नहीं बना सकता है। अस्सी वर्ष की वृद्ध काया बिजली और कूकिंग गैस जैसी मूलभूत चीजों की लाईन में धक्के खाये बिना अपना जीवन यापन कर ही नहीं सकता ऐसे परिवेश में शारीरिक एवं मानसिक शांति के लिए योग विज्ञान ने हर क्षेत्र में अपनी भूमिका सिद्ध कर दी है।

कुछ प्रमुख क्षेत्र जहाँ योग की भूमिका स्वीकार कर ली गई है। जो निम्नलिखित है –

1. शिक्षण संस्थानों के सभी स्तरों एवं क्षेत्रों में
2. चिकित्सा विशेषकर आयुर्वेदिक एवं प्राकृतिक चिकित्सा सिद्ध एवं यूनानी चिकित्सा के क्षेत्र में
3. खेल दक्षता बढ़ाने के क्षेत्र में
4. औद्योगिक कर्मचारियों की दक्षता बढ़ाने में
5. मनोचिकित्सा के क्षेत्र में

6. शारीरिक शिक्षा के क्षेत्र में
7. राजनीतिक व्यस्तता के समायोजन में
8. अत्मानुशासन, धर्मानुशासन एवं वैशविकशांति के क्षेत्र में
9. व्यक्तित्व के सर्वांगीण विकास एवं स्वास्थ्य प्रबंधन में
10. शारीरिक सौन्दर्य विकास के क्षेत्र में
11. सामुदायिक स्वास्थ्य आदि क्षेत्रों में

बोध प्रश्न :

टिप्पणी क : अपने उत्तर नीचे दिये गये स्थान में लिखें

ख : इकाई के अंत में दिये गये उत्तरों से अपने उत्तर मिलाइए।

5 योग विज्ञान की अवधारणा को संक्षिप्त में समझाइए ?

_____

_____

_____

_____

_____

_____

_____

_____

_____

_____

_____

6 स्वास्थ्य प्रबंधन में अष्टांगिक मार्ग पर प्रकाश डालिए ?

_____

_____

_____

_____

_____

_____

_____

_____

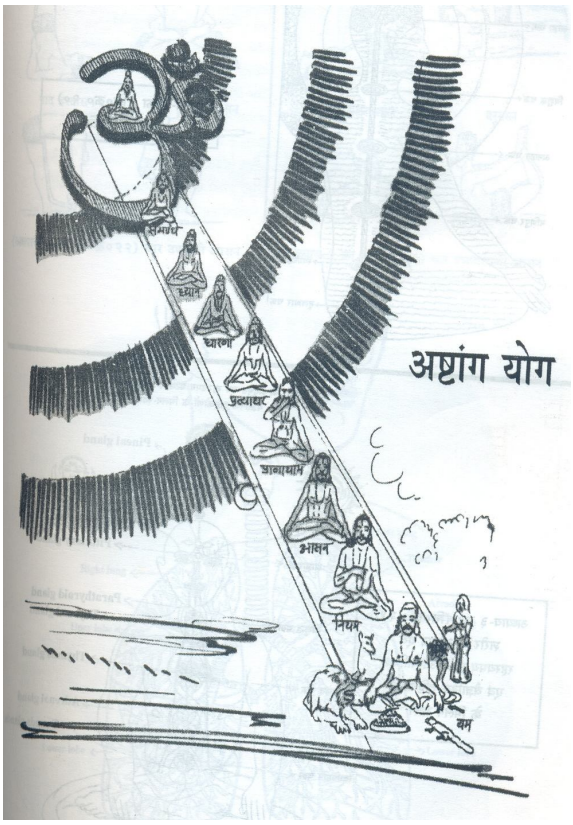
_____

_____

1.6 सारांश

इस खण्ड के अध्ययन के उपरांत आपने देखा कि योग विज्ञान की संकल्पना क्या है। योग विज्ञान या पद्धति में हम मानवीय आचार व्यवहार का प्रबंधन देखते है। योग विज्ञान के आधारभूत क्षेत्रों में समस्त संस्कृतियों एवं धर्मों का निचोड़ हमें प्राप्त हो जाता है। कर्तव्य की नई परिभाषा प्राप्त होती है। योग विज्ञान के इतिहास के अध्ययन में हमें भारतीय संस्कृति की श्रेष्ठता में एक तत्व **योग विद्या** का ज्ञान होना भी प्रकाश में आया। योग विज्ञान की सैद्धांतिक पृष्ठभूमि में आपने शरीर को निर्मित करने वाले तत्वों का ज्ञान प्राप्त किया साथ ही उपनिषदों में वर्णित शरीर के कोशों का विभाजन का भी ज्ञान आपको हुआ।

इस खण्ड में आपने योग विज्ञान के भारतीय दृष्टिकोण से परम्परागत् विकास के साथ ऐतिहासिक एवं पुरातात्विक विकास का भी ज्ञानार्जन किया। इस प्रथम खण्ड में आपको योग विज्ञान की अवधारणा एवं योग विज्ञान के क्षेत्रों का परिचय भी कराया गया। इस प्रकार आप अब योग विज्ञान की वास्तविक धारणा समझने के स्तर पर आ गये है। इस खण्ड के अध्ययन के बाद आपको **यमों** के अगों, **नियमों, अष्टांगमार्ग,** के आठ अंगों, तथा सांख्य दृष्टि से सृष्टि क्रम तालिका को कंठस्थ याद कर लेना चाहिये। साथ ही यम के अंगों एवं नियम के अंगों को **दैनिक जीवन में स्वतः आचरण में लाने का संकल्प** करना चाहिये। योग विज्ञान केवल **सैद्धांतिक** विज्ञान नहीं है। यह एक **प्रायोगिक विज्ञान** है तथा इसकी प्रयोगशाला अन्यत्र बाहर नहीं स्थित होती वरन् **प्रत्येक मनुष्य योग विज्ञान की एक प्रयोगशाला है** जिसका अस्तित्व मोक्ष प्राप्त करने पर ही समाप्त होता है। अतः आप इस पाठ्य सामग्री के साथ ही अपनी अन्तः यात्रा हेतु भी तैयारी शुरू कर देवें। इस हेतु आपको **प्रातः उठने** से लेकर **सायं विश्राम** तक एक उद्देश्य परक जीवन शैली की **समय सारणी** बना लेना चाहिये। सत्याचरण, स्वल्पाहार, स्वालंबन, परोपकार, सेवा, साधना, स्वाध्याय सत्संग के प्रयोग आप में विवेक ज्ञान को उत्पन्न करेंगे। यदि आप यह महसूस करते है कि आप समय सारणी बनाने में या अन्य किन्हीं बिन्दुओं पर अपने आपको अक्षम पा रहे हो तो **परामर्श कक्षा एवं सम्पर्क कक्षा** में इसका निराकरण कर सकते है। इसके बावजूद भी आपको कोई कठिनाई हो तो **पाठ्यक्रम दर्शिका** में दिये पत्ते पर हमसे सम्पर्क करें हम आपकी त्वरित मदद करेंगे।



1.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

प्र.1 योग विज्ञान के आधार क्षेत्रों में से यम क्षेत्र पर प्रकाश डालिये?

उ. योग विज्ञान के दो आधारभूत क्षेत्र है।

(1) यम क्षेत्र

(2) नियम क्षेत्र।

(1) यम क्षेत्र :– राजयोग की प्राप्ति हेतु यम क्षेत्र की भी आवश्यकता होती है। महर्षि पतंजलि के अनुसार यम क्षेत्र के पाँच उपक्षेत्र है (1) अहिंसा (2) सत्य (3) अस्तेय (4) ब्रम्हचर्य और (5) अपरिग्रह। स्वामी चरणदासजी ने यम क्षेत्र को और विस्तृत किया जो निम्नानुसार है

(1) अहिंसा (2) सत्य (3) अस्तेय (4) ब्रम्हचर्य (5) क्षमा
(6) दया (7) धीरता (8) नम्रता (9) प्रमित भोजनऔर
(10) शुचिता

यम धातु से बने इस शब्द का अर्थ है नियन्त्रण करना। उपरोक्त वर्णित यमों द्वारा साधक अपने उपर नियन्त्रण प्राप्त करता है। मन, वचन, एवं कर्म द्वारा इन यमों का पालन स्वयं के साथ समाज के लिए भी अत्यंत लाभदायक है। इनका पालन जब प्रत्येक स्थिति, समय एवं काल में अनिवार्य रूप से किया जाता है तो इन्हें महाव्रत कहा जाता है।

प्र. 2 योग विज्ञान के आधार क्षेत्रों में से नियम क्षेत्र पर प्रकाश डालिये?

उ. योग विज्ञान के आधार क्षेत्रों में से दूसरा क्षेत्र नियम क्षेत्र कहलाता है। मनुष्य के लिए कर्म करने के आदर्श सिद्धांत नियम के क्षेत्र के अर्न्तगत आते है। महर्षि पतंजलि के अनुसार नियम क्षेत्र के भी पाँच उप क्षेत्र है –

(1) शौच (बाह्य एवं अभ्यन्तर) (2) संतोष (3) तप (4) स्वाध्याय
(5) ईश्वर प्रणिधान।

स्वामी चरणदासजी ने नियम क्षेत्र को और विस्तृत किया जो निम्नानुसार है –

(1) तप (2) संतोष (3) आस्तिकता (4) दान
(5) ईश्वर पूजन (6) सिद्धांत श्रवण (7) लज्जा (8) बुद्धि
(9) तप (10) होम।

ये क्षेत्र विशुद्ध रूप से क्रियात्मक होते है। इनके द्वारा प्रमुख रूप से शरीर की शुद्धि एवं इन्द्रियों पर नियंत्रण किया जाता है। नियम मुख्यतः शारीरिक अभ्यास है गौण रूप में मानसिक अभ्यास इनके अभ्यास से साधक को व्यक्तिगत तौर पर अधिक से अधिक लाभ प्राप्त होता है। इनका महत्व अत्याधिक है अभ्यास एवं वैराग्य की प्राप्ति हेतु किये जाने वाले क्रियायोग के तीन क्षेत्रों में से दो क्षेत्र तप एवं स्वाध्याय इसी नियम क्षेत्र के अर्न्तगत ही है। अतः मन वचन एवं कर्म से इन क्षेत्रों का पालन योग विज्ञान में प्रवेश हेतु आवश्यक है।

प्र. 3 योग विज्ञान के परम्परानुसार विकास को स्पष्ट कीजिये?

उ. भारतीय संस्कृति में ज्ञान के सभी स्त्रोतों का उद्‌गम ईश्वर से शुरू होता है, जिस प्रकार ईश्वर अनादि और अजन्मा है उसी प्रकार योग विज्ञान भी सृष्टि के आरम्भ काल से ही प्रवाहमान है ऐसा माना जाता है।

एक परम्परानुसार श्रीमद्‌भागवत गीता में योगेश्वर भगवान श्रीकृष्ण अर्जुन से कहते है कि सृष्टि के आरम्भ में मैनें विवस्वान (सूर्य) को सर्वप्रथम योग का उपदेश दिया था। विवस्वान ने अपने पुत्र मनु, मनु ने अपने पुत्र इस्वाकु को ऐसी परम्परा क्रमशः चलती आई है।

दूसरी परम्परनुसार भगवान शिव को योगीश्वर कहा जाता है तथा आदिनाथ भगवान शिव को योगशास्त्र का उत्पत्तिकर्ता माना जाता है। उन्होंने ही सर्वप्रथम आदिशक्ति पार्वती जी को प्रथम शिष्या के रूप में योग विज्ञान का ज्ञान दिया वह ज्ञान **मत्स्येन्द्रनाथ** ने सुना और बाद में इसका प्रसार उनके शिष्यों की श्रृंखला में होता चला आ रहा है। ऐसा सन्दर्भ हठयोग की ज्योत्सना टीका से प्राप्त होता है। इस प्रकार योग विज्ञान के परम्परानुसार और भी प्रर्वतक

प्राप्त होते है जैसे हिरण्यगर्भ इत्यादि।

प्र. 4 वैदिक काल में योग विज्ञान के विकास को स्पष्ट कीजिये?

उ. वैदिक साहित्य इस वसुन्धरा की सबसे प्राचीन उपलब्ध रचनाएँ है। अनेक विद्वानों ने वैदिक काल की प्राचीनता पर अपने अपने मत्त व्यक्त कीये है। सभी एक तथ्य पर सहमत है कि वेदों का काल कम से कम 750 ई.पू. के पहले का ही है। वैदिक साहित्य में वायु, सत्यधर्म की महत्ता, ध्यान, आचार शुद्धि,ध्यानात्मक आसन की स्थिति आदि यौगिक तकनीकि अवस्थाओं का स्पष्ट उल्लेख प्राप्त होता है।

वैदिक साहित्य का ही एक अंग ब्राम्हण ग्रथों में भी **प्राणविद्या** का विस्तृत वर्णन है। **प्रणव (ॐ)** का ज्ञान भी स्पष्ट था। ब्राम्हण ग्रंथ वेदो के कर्मकाण्ड भाग कहलाते है। इनके शथपथ ब्राम्हण में अनेकों सन्दर्भ प्राप्त होते है। अतः वैदिक काल से ही योग विज्ञान का विकास क्रमशः होते आ रहा है।

प्र. 5 योग विज्ञान की अवधारणा को संक्षिप्त में समझाइये?

उ. जीवन के जो भी धर्म है, उन सबके साध्य हेतु शरीर ही एक मात्र साधन है। साधन जितना समयक् होगा साध्य उतना ही उन्नत (उच्च) होगा। प्राचीन काल से आज तक मनुष्य ने जो कुछ भी भौतिक प्रगति की है उस सब में इस शरीर को ही सुख प्रदान करने का उद्देश्य निहित है। भारतीय वैदिक वाड़मय एवं बाद में दार्शनिक साहित्यालोचन सभी शरीर रूपी साधन से स्वास्थ्यानुसंधान रूपी साध्य को प्राप्त करने का प्रयत्न करते रहे है।

स्वास्थ्यानुसंधान ही योगानुसंधान है। जड़ एवं चेतन के प्राकृतिक सामंजस्य से परे हटना ही **स्वा** की स्थिति से हटना है और **स्वा** में अर्थात् **समाधि** में स्थिति होने के लिए **क्रिया योग** की आवश्यकता होती है। शरीर को सम्यक् स्वास्थ्य प्रदान करना (निरोग रखना) **तप** है, मन को सम्यक् स्वास्थ्य प्रदान करना (मन का निग्रह या नियंत्रण) **स्वाध्याय** है। तथा आत्मा को सम्यक् स्वास्थ्य प्रदान करना (आत्मा को तम के आवरण से रहित करना) **ईश्वर प्रणिधान** है। इसे ही **क्रिया योग** कहा जाता है। क्रिया योग ही साधना की प्रगाढ़ता में समाधि की योग्यता देता है जो योग विज्ञान का अन्तिम लक्ष्य है।

प्र. 6 स्वास्थ्य प्रबंधन में आष्टांगिक मार्ग पर प्रकाश डालिये?

उ. महर्षि पतंजलि **आंष्टागिक** मार्ग के आठ पद, यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान एवं समाधि को बतलाते है। यम, नियम के अभ्यास में वितर्क एवं सांसारिक द्वन्द्व बाधक होते है प्राणायाम का अभ्यास सिद्ध होने पर बुद्धि स्थिर हो जाती है। जब इन्द्रियाँ इस योग्य हो जाती है कि विषयों से संबंध बुद्धि के अनुसार ही कर सके, तब अहंकार समाप्त होकर चित्त शांत होने लगता है, शांत चित्त धीरे धीरे एकाग्र किये जाने पर संयमित होकर भूत एवं भविष्य को देख सकने की योग्यता प्राप्त कर लेता है। यौगिक जीवन शैली बड़े व्यवस्थित क्रम से स्वा में स्थित होने के लक्ष्य को अपने आंष्टागिक मार्ग द्वारा प्राप्त करवाती है। अतः स्वाध्याय के प्रबंधन में योग मार्ग ही सम्यक् मार्ग है।

1.8 उपयोगी संदर्भ ग्रंथ

(1) भारत में शारीरिक शिक्षा — **विमला प्रसाद**
प्रकाशन विभाग सूचना और प्रसारण
प्रसारण मंत्रालय भारत सरकार, नई दिल्ली

(2) योगा एण्ड डेथ साइकॉलाजी — **आई.पी.सचदेवा**
मोतीलाल बनारसीदास बेग्लों रोड
जवाहर नगर दिल्ली – 7

(3) रिसर्च कन्ट्रीब्यूशन ऑफ (स्वामी विवेकानन्द योग अनुसंधान संस्थान) — **स्वामी विवेकानंद योग प्रकाशन**
बैंगलोर, 2001

(4) ''योगा एण्ड रिसर्च'' — **स्वामी कुवल्यानंद**
कैवल्यधाम लोनावाला – 410403
महाराष्ट्र पूना

(5) योग साइक्लोपीडिया भाग – **I, II, III** — **डॉ. जयदेव योगेन्द्र**
दी योग इन्स्टीट्यूट सांताक्रूज
ईस्ट बम्बई – 400055

(6) सांख्यकारिका — **डा. बैजनाथ पाण्डेय**
भारतीय विद्या प्रकाशन
पो.बा.–1108, कचौड़ी गली,
वाराणसी 221001

(7) भक्ति सागरादि — **स्वात्माराम**
योगेन्द्र
प्रकाशन खेमराज श्री कृष्णदास
प्रकाशन बम्बई – 1977

(8) पांतज्जल योग सूत्रवृत्तिः — **डॉ. विमला कर्णाटक**
प्रकाशन कृष्णदास अकादमी
वाराणसी
पो.बा.नं.–1118 चौक,
वाराणसी–1

(9) भारतीय दर्शन का सर्वेक्षण — **संगम लाल पाण्डेय**
सेन्ट्रल पब्लिशिंग हाऊस,
इलाहाबाद

(10) योग दर्शन — **परमहंस निरंजनानन्द**
प्रकाशन श्री पंचमदशनाम
परमहंस
अलखबाड़ा, देवधर, बिहार

(11) भारत के महान योगी भाग 1 से 10 — **विश्वनाथ मुखर्जी**
अनुराग प्रकाशन चौक वाराणसी
पो.बा.–1149,

वाराणसी–1

(12) पातंजल योग विमर्श — **डॉ. विजयपाल शास्त्री**
क्लासिकल पब्लिशिंग कम्पनी

करमपुरा

नई दिल्ली – 15

(13) योग एस डेथ साइंकोलॉजी एण्ड पैरा साइंकोलॉजी Vol I हिस्टोरिकल बैकग्राउण्ड — **डा. सी. टी. केन्गें**
भारतीय मनीषा प्रकाशन वाराणसी

खण्ड 2

इकाई 4

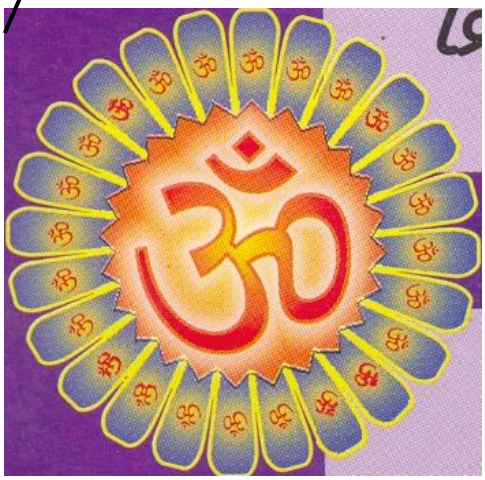


योग दर्शन का स्वरूप



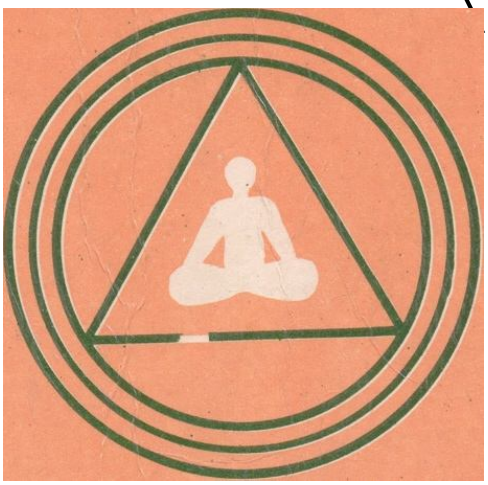
योग विज्ञान के सिद्धान्त

इकाई 5



अर्थ एवं परिभाषाएँ

इकाई 6



सैद्धान्तिक पृष्ठभूमि

खण्ड 2 : योग विज्ञान के सिद्धांत

प्रथम प्रश्न पत्र **''योग विज्ञान का परिचयात्मक स्वरूप''** के अध्ययन हेतु खण्ड 2 ''योग विज्ञान के सिद्धांत'' को तीन इकाईयों क्रमशः 4, 5, 6, में विभाजित किया गया है। इनमें इकाई 4 में **योग दर्शन का स्वरूप** इकाई 5 में **योग का अर्थ एवं परिभाषाऐं** तथा इकाई 6 में **योग की सैद्धांतिक पृष्ठभूमि** को सम्मिलित किया गया है।

खण्ड संरचना

2.0 प्रस्तावना 31

2.1 उद्देश्य 31

2.2 विषय प्रवेश 31

2.3 इकाई 4 : योग दर्शन का स्वरूप 33

2.3.1 दर्शन का अर्थ एवं महत्व

2.3.2 दर्शनों की समस्यायें

2.3.3 दर्शनों के प्रकार

2.3.4 योग दर्शन की दार्शनिक पृष्ठभूमि

2.3.5 योग दर्शन में पदार्थ विचार

2.3.6 योग दर्शन में कर्म विचार

2.3.7 योग दर्शन में मोक्ष विचार

2.4 इकाई 5 : योग का अर्थ एवं परिभाषाऐं 40

2.4.1 योग का अर्थ

2.4.2 योग की परिभाषायें

2.5 इकाई 6 : योग की सैद्धांतिक पृष्ठभूमि 44

2.5.1 योग का द्वैतवाद

2.5.2 योग दर्शन का त्रिगुण सिद्धांत

2.5.3 योग दर्शन में सृष्टि विचार

2.6 सारांश .....

48

2.7 बोध प्रश्नों के उत्तर .....

48

2.8 उपयोगी संदर्भ ग्रंथ 50

2.0 प्रस्तावना

प्रथम प्रश्न पत्र के अंतर्गत इकाई 4, 5, एवं 6 का अध्ययन इस द्वितीय खण्ड में किया जाना है। इसके पूर्व आपने प्रथम खण्ड में योग विज्ञान की संकल्पना का भलीभाँति अध्ययन कर लिया है। अब हम योग विज्ञान के विभिन्न सिद्धान्तों का अध्ययन यहाँ करेंगे।

इकाई 4 को पढ़ने के बाद आप योग दर्शन के स्वरूप में बारे में जान पायेंगे कि योग दर्शन का अर्थ क्या है। योग दर्शन का महत्व क्या है। दर्शनों की समस्यायें क्या है। दर्शनों के कितने प्रकार है। योग दर्शन की दार्शनिक पृष्ठिभूमि क्या है। योग दर्शन के अनुसार पदार्थ विचार। योग दर्शन के अनुसार कर्म विचार एवं योग दर्शन में मोक्ष विचार का अध्ययन करेंगे।

इकाई 5 को पढ़ने के बाद आप योग का अर्थ एवं योग की विविध परिभाषाओं के संदर्भ में विस्तार से जानेगें।

इकाई 6 को पढ़ने के बाद आप योग की सैद्धान्तिक पृष्ठभूमि जिसके अन्तर्गत योग का द्वैतवाद योग दर्शन और त्रिगुण का सिद्धांत तथा योग दर्शन में सृष्टि विचार, योग दर्शन में मन एवं शरीर का संबंध के बारे में जानकारी हासिल करेंगे।

इस प्रकार इस द्वितीय खण्ड के अध्ययन से आप योग विज्ञान के सिद्धांतों से भलीभाँति परिचित होगें जिसकी आधार भूमि से आप योग विज्ञान में प्रवेश के योग्य हो सकेगें।

2.1 उद्देश्य

खण्ड 2 के अन्तर्गत इकाई 4, 5 एवं 6 के अध्ययन का उद्देश्य योग विज्ञान के सिद्धांतों से अवगत करवाना है। जिससे अध्येताओं के लिए योग विज्ञान की दार्शनिक गुत्थियों का हल सहजता से प्राप्त कर सकने की योग्यता उत्पन्न हो सके। साथ ही निम्नांकित उद्देश्यों को लेकर इस खण्ड का अध्ययन करवाया जाना है।

- इकाई 4 के अध्ययन द्वारा योग दर्शन के महत्व, योग दर्शन द्वारा हल की जाने वाले समस्यें, दर्शनों के प्रकार योग दर्शन की दार्शनिक पृष्ठभूमि, पदार्थ, कर्म एवं मोक्ष के विचारों का योग दर्शन के संदर्भ में विशेष अध ययन करवाना।
- इकाई 5 के अध्ययन द्वारा योग के विविध अर्थो का ज्ञान स्पष्ट करवाना और योग के संदर्भ में विभिन्न शास्त्रों

में दी गई परिभाषाओं का गहन् अध्ययन करवाना।

• इकाई 6 के अध्ययन द्वारा योग के विविध सिद्धांतों का अध्ययन करवाना जिनमें प्रमुखतः योग का द्वैतवाद, योग का त्रिगुण सिद्धांत, येाग दर्शन का सृष्टि विचार और योग दर्शन के अनुसार मन शरीर का क्या संबंध है। इस बारे में अध्ययन करवाना।

उपरोक्त योग के स्वरूप, अर्थ एवं सैद्धांतिक पृष्ठभूमि के अध्ययन उपरांत आप योग के अनेक सिद्धांतों उनकी दर्शनिक पृष्ठभूमि उनके महत्व को समझ सकने के योग्य स्तर प्राप्त कर सकेंगे।

2.2 विषय प्रवेश

उपभोक्तावादी या भौतिक दृष्टिकोण से शान्ति की संभावना समाप्त हो जाने पर (जैसा कि आज अमेरिका, इंग्लैण्ड, जर्मनी, फ्रांस, चीन आदि विकसित देशों में देखने को मिलता है) चिन्तनशील मानव ने ऐकान्तिक एवं आत्यन्तिक शान्ति के निमित्त से जिस शास्त्र का सृजन (उद्भावन) किया, उसे हम दर्शनशास्त्र के नाम से जानते है।

आर्यावर्त पावन भारतभूमि में विश्व के प्राचीनतम वाड्.मय ऋग्वेद से ही इस दार्शनिक–चिन्तन का प्रारम्भ स्पष्ट रूप में देखने को मिलता है, जिसका विकास उपनिषदादि परवर्ती ग्रन्थों में देखा जाता है। ''आत्मा वा अरे द्रष्टव्यः श्रोतव्यः मन्तव्य निदिध्यासितव्यः च। अर्थात् 'आत्मदर्शन (सत्य का साक्षात्कार) करना चाहिए। यह **श्रुति का निर्देश** है। संसार के साथ ही सुख दुःख भी उत्पन्न होते हैं, क्योंकि संसार **त्रिगुणात्मिका प्रकृति** से उत्पन्न होता है, जो **सुख–दुःख** तथा **मोह** इन तीनों गुणों से अन्वित है। संसार का प्रत्येक जीव स्वभावतः सुख की प्राप्ति तथा दुःख की निवृत्ति चाहता है, जो आत्म साक्षात्कार से ही सम्भव है। अतः श्रुति ने आत्मदर्शन का उपर्युक्त आदेश दिया है, परन्तु भिन्न भिन्न ऋषियों–महर्षियों ने भिन्न–भिन्न मार्ग (विधि) से उस आत्मा का साक्षात्कार किया और इस साक्षात्कार से उन्हें जिस ज्ञान राशि किंवा परमानन्द की प्रतीति हुई, उसे लोकोपकारार्थ अपने शिष्यों में फैलाया। यही कारण है कि जिस ऋषि ने जो मार्ग दर्शाया वह उसका दर्शन कहलाया। इस प्रकार मूल रूप में कुल नौ दार्शनिक विचारधारायें या सम्प्रदाय देखने को मिलते हैं ये है :– 1. सांख्य 2. योग 3. न्याय4. वैशेषिक 5. पूर्वमीमांसा 6. उत्तर मीमांसा 7. चार्वाक 8. बौद्ध और 9. जैन। इनमें प्रथम छः षड़दर्शन या हिन्दू दर्शन कहलाते हैं। इन्हें आस्तिक दर्शन भी कहा जाता है। शेष चार्वाक एवं जैन तथा बौद्ध दर्शन के चार सम्प्रदाय – 1. माध्यमिक 2. योगाचार 3. सौत्रान्तिक 4. वैभाषिक मिलाकर कुल छः इन षडदर्शनों को नास्तिक दर्शन कहॉ जाता है क्योंकि ये वेदों को प्रमाण नहीं स्वीकार करते हैं।

भारतीय शास्त्रों में इन दर्शनों के अतिरिक्त एक अन्य दर्शन का विवरण भी उपलब्ध होता है, जो आधुनिक दर्शन ग्रन्थों में अप्राप्य है, इस दर्शन को **'मध्यमीमांसा'** अर्थात **'भक्ति सूत्र'** और दूसरा देवर्षि नारद कृत **''नारदसूत्र''।** भारतीय दर्शन के ''**भावात्मक स्वरूप**'' के पर्यावसान में भक्ति–मीमांसा का बहुत महत्व है ''भक्ति मीमांसा'' को प्रसिद्ध षड्दर्शनों के साथ रखना आवश्यक एवं शोध का विषय भी है।

योग दर्शन का महत्व दर्शनशास्त्रों में तो है ही, किन्तु हमारे व्यावहारिक जीवन में भी इसका बहुत घनिष्ठ सम्बन्ध है। मनुष्य जीवन के उद्देश्य हैं – **धर्म, अर्थ, काम** तथा **मोक्ष** । ये चार ''**पुरूषार्थ**'' कहे जाते हैं। इनकी प्राप्ति के लिए शरीर और इन्द्रियों की एक चित्त की शुद्धि एवं उन पर नियंत्रण आवश्यक है। इसके बाद '**चित्त**' को स्थिर करना भी आवश्यक है। इन बातों के लिए हमें योगशास्त्र की शरण लेनी पड़ती है। '**चित्तवृत्ति**' के निरोध ही को तो **योग** कहा जाता। जब तक शरीर, इन्द्रिय तथा मन साधक के वश में नहीं आते, तब तक उद्देश्य की सिद्धि नहीं हो सकती। मोक्ष या दुःख निवृत्ति या आत्मा का साक्षात्कार ही तो **'परम पुरूषार्थ'** है। इसमें किसी का मतभेद नहीं है। इसीलिए श्रुति ने कहा है

''आत्मा वारे द्रष्टव्यः श्रोतव्यः मन्तव्यः निधिध्यासितव्यः च''।

योग को ही **निदिध्यासन''** कहते है। परमपद की, मोक्ष की या कैवल्य की प्राप्ति में हर एक स्तर पर यथार्थ ज्ञान को प्राप्त करने में '**निदिध्यासन**' करना अनिवार्य ही होता है। इसके बगैर तत्वचिंतन (आत्म साक्षात्कार) के मार्ग पर एक पग भी आगे नहीं बढ़ा जा सकता है।

संसार में दो प्रकार के तत्व है – (1) बाह्य और (2) आभ्यान्तर – एक **जड़** और दूसरा **चेतन**। आभ्यन्तर तत्व **'चित्त'** है। प्रत्येक दर्शन में इन तत्वों की, किसी न किसी रूप में, सहायता आवश्यक है। साक्षात्कार करने ही से तत्वों का विशेष ज्ञान प्राप्त होता है तत्व स्वयं, या उसका कोई अंश, जैसे – न्याय दर्शन का परमाणु इतना सूक्ष्म है कि '**योगज प्रत्यक्ष**' के बिना उसका ज्ञान हो ही नहीं सकता। इसलिए योग मार्ग की प्रक्रियाओं का ज्ञान या साध ाना सभी दर्शनों के लिये नितांत आवश्यक है।

क्योंकि भारतीय दार्शनिक जगत् (सम्प्रदायों) में यह माना जाता है कि बिना चित्त की शुद्धता के तत्व की उपलब्धि नहीं हो सकती। उपनिषदों में **तत्व ज्ञान** के लिए चित्त की शुद्धता का विस्तृत वर्णन है। **वेदान्त** में ज्ञान की प्राप्ति के लिए अन्तः करण के सभी मलों का पूर्ण विनाश नितान्त आवश्यक है। अन्तःकरण की शुद्धि के बिना मनुष्य को वेदान्त में अधिकार ही नहीं है। इस प्रकार भारत के प्राचीन ऋषियों ने चित्त शुद्धि के अनेक प्रकार के निर्देश दिए, जिनको कालान्तर में एकत्रित करके **महर्षि पतंजलि** ने **सांख्य के दार्शनिक सिद्धांतों** की आधार भूमि में सूत्र रूप में एक स्वतंत्र दर्शन का प्रणयन किया यही दर्शन '**योग दर्शन**' के नाम से विख्यात है। इस दर्शन में भारतीय दर्शनों के सभी दार्शनिक सम्प्रदायों का समावेश मिलता है एवं किसी न किसी रूप में सभी दार्शनिक सम्प्रदाय उसका अनुगमन करते हैं। इन सब कारणों से योग विज्ञान के परिचय में योग विज्ञान के सिद्धांतों के दाशनिक स्वरूपों का परिचय इस खण्ड की तीन इकाईयों क्र. 4, 5 एवं 6 में प्राप्त करना सम्यक् होगा।

2.3 इकाई 4 : योग दर्शन का स्वरूप

2.3.1 दर्शन का अर्थ एवं महत्व

दर्शन शब्द संस्कृत की ''दृश'' धातु के 'करण' अर्थ में ल्युट प्रत्यय (अन्) लगाकर बना है जिसका अर्थ है जिसके द्वारा देखा जाये (दृश्यते अनेन इति दर्शनम्) यहाँ देखना भारतीय दर्शन में स्थूल नेत्रों से नहीं, बल्कि सूक्ष्म नेत्रों (प्रज्ञा चक्षुओं से) द्वारा परम् तत्वों को देखने के रूप में प्रयोग किया गया है।

अंग्रेजी में दर्शन को PHILOSOPHY कहते है। यह दो शब्दों से मिलकर बना है PHILOS और SOPHIA जिसका अर्थ है गहरे ज्ञान (अध्यात्म विद्या) के प्रति तीव्र अनुराग (प्रेम)। भारतीय संस्कृति में परम् आनंद को देने वाली विद्या से दर्शन के अर्थ को लिया जाता है। मैक्समूलर का कथन इसी अर्थ को स्पष्ट करता है, ''भारत में दर्शन ज्ञान के लिए नहीं बल्कि उस सर्वोच्च लक्ष्य के लिये था जिसके लिये मानव इस जीवन में प्रयास कर सकता है।'' अतः दर्शन भारतीय संदर्भ में परम तत्वों का साक्षात्कार है।

भारतीय दर्शन का महत्व उसकी विशेषताओं में समाहित है ये विशेषताएँ निम्नलिखित है।

(1) भारतीय दर्शन में आध्यात्मिकता हैं यह नीतिशास्त्र और धर्म के क्षेत्र से ऊपर उठना सिखलाता है।

(2) भारतीय दर्शन की जीवन से अत्याधिक निकटता है। केवल मानसिक जिज्ञासा न होकर दर्शन आत्मिक शांति का स्त्रोत है।

(3) भारतीय दर्शन मानता है अज्ञान संसार का स्वभाव है। अतः सांसारिक कार्यों में ही बन्धन है और ज्ञान ही मोक्ष है।

(4) भारत के सभी दार्शनिकों ने मोक्ष (मुक्ति) को जीवन का लक्ष्य माना है। अज्ञान को ज्ञान से नष्ट कर अपने वास्तविक रूप को पहचानने से जीवन में दिव्य रूपांतरण होता है तब सांसारिक माया, मोह, क्रोध तथा लोभादि दुखों से छुटकारा प्राप्त होने को ही मोक्ष कहते है। मोक्ष नीति और धर्म

से परे एक अवस्था है।

(5) मोक्ष प्राप्ति में साधना (अभ्यास) और योग (वैराग्य) के महत्व पर बल।

(6) भारतीय दर्शन मनोवैज्ञानिक सत्यों पर आधारित है। भारतीय चिंतकों ने सूक्ष्म अनुभवों द्वारा जीवन के पक्षों का गहरा मनोविश्लेषण कर शारीरिक एवं मानसिक नियंत्रण हेतु योग साधना की अद्वितीय आधार भूमि प्रदान की है।

(7) भारतीय दर्शन में धर्म और जीवन दर्शन में अनुपम समन्वय स्थापित किया गया है। जीवन का रूपांतरण और सांसारिक दुखों से मोक्ष पाना धर्म और दर्शन दोनों का लक्ष्य है।

(8) भारतीय दर्शन में जीवन के समस्त पक्षों पर जोर दिया गया हैं भारतीय दर्शन का लक्ष्य केवल मोक्ष प्राप्त करना ही नहीं था, वरन समाज में आध्यात्मिक रूपांतरण करना भी रहा। इसी कारण गौतम बुद्ध, महावीर और शंकराचार्य जैसे व्यक्तित्व दार्शनिक होने के साथ समाज सुधारक भी रहे है।

(9) भारतीय दर्शन सदैव प्रगतिवादी दर्शन रहा है। जब कभी किसी सिद्धांत की स्थापना की गई तो उसके विरोध पक्ष की भी स्थापना हुई। जड़वाद, आध्यात्मवाद, द्वैतवाद, अद्वैतवाद, विशिष्टा–द्वैतवाद आदि सभी परस्पर विरोधी मतों की स्थापना द्वारा भारतीय दर्शन में सदैव गतिशील एवं जीवंतता बनी हुई है।

(10) विश्व की शाश्वत नैतिक व्यवस्था में विश्वास चार्वाक दर्शन को छोड़कर समस्त आस्तिक दर्शन विश्व में एक शाश्वत नैतिक व्यवस्था देखते है। इस सार्वभौम नैतिक व्यवस्था से धर्म की उत्पत्ति हुई, इसी धार्मिक और सार्वभौम नैतिक व्यवस्था के अनुसार प्रकृति, देवता, जीव, नक्षत्र आदि सभी चलते है। अतः विश्व एक नैतिक व्यवस्था पर आधारित है ऐसी मान्यता में विश्वास है।

(11) भारतीय दार्शनिक जगत् की उपरोक्त मान्यताओं के साथ ही अनेक विशेषताओं जैसे भूतकाल में आस्था व विश्वास, कर्म में विश्वास, पुर्नजन्म में विश्वास, संसार की सत्ता में विश्वास, आत्मनियंत्रण और आत्मसाक्षात्कार को महत्व तथा श्रवण, मनन और निधिध्यासन को आचरण में स्वीकार्यता भारतीय दार्शनिक जगत् के महत्व को स्पष्ट करने में सक्षम है।

उपरोक्त महत्वों से स्पष्ट है कि भारतीय दर्शन में अनेकानेक शाश्वत सत्यों की विभिन्न वर्गों द्वारा विभिन्न समय में खोज की गई। भारतीय दर्शन का मुख्य लक्ष्य ब्रहम साक्षात्कार या आत्मसाक्षात्कार होने के कारण सांसारिक स्तर पर जीवन व्यतीत करते हुए परम लक्ष्य का मार्ग दर्शन करके आध्यात्मिक स्तर पर पहुँचने के विभिन्न मार्गो जैसे ज्ञान, कर्म और भक्ति की धारायें सभी मनुष्यों के यथायोग्य निर्वहन को पूर्ण सामर्थ्य प्रदान करते है।

2.3.2 दर्शनों की समस्यायें

सभी दर्शनों के चार प्रतिपाद्य विषय है जो इस प्रकार है –

(1) **हेय** :– दुख का वास्तविक स्वरूप क्या है, जो ''**हेय**'' अर्थात त्याज्य है ?

(2) **हेय हेतु** :– दुख कहाँ से उत्पन्न होता है, इसका वास्तविक कारण क्या है, जो हेय अर्थात त्याज्य दुख का वास्तविक हेतु है

(3) **हान** :– दुख का नितान्त अभाव क्या है, अर्थात ''हान'' किस अवस्था या स्थिति का नाम है?

(4) **हानोपाय** :– हानोपाय अर्थात् नितान्त दुःखनिवृति का साधन क्या है?

महर्षि पतंजलि योग सूत्र के प्रथम पाद में दर्शनों की इन समस्याओं का निराकरण करते है।

2.3.3 दर्शनों के प्रकार

वेदों को प्रमाण मानने वाले छः दर्शन (षड़दर्शन) प्रमुख है।दर्शनों के प्रतिपाद्य विषयों का हल षड़दर्शन विभिन्न प्रकार से करते है। ये षड़दर्शन निम्नलिखित तालिका क्रमांक 1 के अनुसार है –

क्र.	दर्शन का नाम	दर्शनों के रचनाकार	रचना काल
(1)	मीमांसा, दर्शन (पूर्व मीमांसा)	महर्षि जैमनी	2 2 5 ई.पू.
(2)	वेदान्त दर्शन (उत्तर मीमांसा)	महर्षि बादरायण	201 ई.पू
(3)	न्याय दर्शन	महर्षि गौतम	100 ई.पू.
(4)	वैशेषिक दर्शन	महर्षि कणाद	3 7 5 ई.पू.
(5)	सांख्य दर्शन	महर्षि कपिल	700 ई.पू.
(6)	योग दर्शन	महर्षि पतंजलि	80 ई. पू.

(तालिका क्र.–1)

2.3.4 योग दर्शन की दार्शनिक पृष्ठभूमि

सामान्यतः ऐसा समझ लिया जाता है कि योग तो किसी प्रकार की क्रिया या क्रियाओं का समुच्चय है और दर्शन वाग्विलास तथा तार्किक द्वन्द्ध और शास्त्रार्थ की विषय वस्तु है। इसमें संदेह नहीं कि यह बात अंशतः सत्य है, परंतु योग और दर्शन एक दूसरे से उतनी दूर नहीं है जितने कि मान लिऐ जाते है। योग का लक्ष्य है सत्य का साक्षात्कार कराना और दर्शन का कार्य है इस विश्व को समझने में सहायोग देना। विश्व में जहाँ छोटे छोटे जीव जन्तु हैं वही बड़े बड़े देवता भी है। चेतन पदार्थ है तो जड़ पदार्थ भी है। इस विश्व में ही हमारा ''चित्त'' है और यह चित्त एक ओर योगाभ्यास में रत होता है और दूसरी ओर काम क्रोध, लोभ से प्रेरित चेष्टाओं में। चित्त में ही योग की ऊंची ऊंची अनूभूतियां होती हैं और प्रतिदिन (नित्य) का छोटे से छोटा अनुभव भी। इन सब बातों का समन्वय करना तथा इनको एक मंच पर ले आना दर्शन का काम है। यदि ऐसा न किया जावेगा तो हमारे जीवन के विभिन्न पहलुओं में सामंजस्य नहीं रहेगा। हम एक ही साथ कई लोकों में रहेंगे जिनकी सीमाएँ कही न मिलती होंगी। इसलिये यदि कोई तथ्य सचमुच दर्शन है तो योग की अनुभूतियों को भी उसके द्वारा समझा जाना चाहिये। यदि वह ऐसा नही कर सकता तो सचमुच उसका आधार केवल मनुष्य के उर्वर मस्तिष्क की कल्पना मात्र होगी। और वह सचमुच केवल बौद्धिक अखाड़े में उतरने वालों के मनोरंजन की सामग्री मात्र बन कर रह जायेगा। ऐसे ही दर्शन को लक्ष्य करके वेदान्त के एक सूत्र में कहा गया है – तर्क अप्रतष्ठित है। एक विद्वान कोई तर्क उपस्थित करता है तो दूसरा विद्वान उस तर्क का खण्डन कर देता हैं। दर्शन यदि सचमुच विश्व को समझाने का दावा करता है तो, सत्य के साक्षात्कार की उन अनुभूतियों से काम लेना चाहिये जो योग के द्वारा सामने आती हैं और योग को दर्शन की सार्वभौम सामग्री का अंग बनना ही पड़ेगा। दोनों में अन्योन्याश्रय सबंध है।

योग दर्शन के प्रणेता महर्षि पंतजलि ने सांख्यदर्शन के सिद्धांतों को ज्यो का त्यों मान लिया है। दोनो दर्शनों की मान्यताओं में एक दो तथ्यों में भिन्नता अवश्य है किन्तु मुख्य बातें एक ही हैं। सांख्य दर्शन के प्रवर्त्तक महर्षि कपिल

का स्थान बड़ा ऊंचा है। **''सिद्धानां कपिलो मुनिः''** कहकर योगेश्वर श्री कृष्ण ने महर्षि कपिल की योगियों में श्रेष्ठता सिद्ध कर दी है। सांख्य दर्शन संसार के सभी दर्शनों में प्रचीन है तथा मनोविज्ञान की आज भी कई समस्यायें सांख्य के सिद्धांतों के बिना नहीं सुलझाई जा सकती है। सांख्याचार्य ईश्वर कृष्ण ने सांख्य को सारांश रूप में इस प्रकार समझाया है।

मूल प्रकृतिरविकृतिर्महदाद्यः प्रकृतिविकृतयः सप्त।
षोडशकस्तु विकारो न प्रकृतिर्न विकृतिः पुरूषः।।

प्रकृति और विकृति दो तकनीकि शब्द है जिन्हे समझने पर ही उपरोक्त सूत्र समझ में आ पाता है। प्रकृति उसे कहते है जिसमें अनेक नये नये पदार्थ सृजन कर सकने की क्षमता हो तथा विकृति वे पदार्थ है जिनमें प्रकृति के अनुरूप सृजन क्षमता नही रहती है उन्हें विकृति कहते हैं। जगत के मूल में दो पदार्थ सांख्य दर्शन मानता है प्रथम पुरूष और दूसरा प्रधान या प्रकृति या अचित् जड़। योग दर्शन भी इसी आधार पर दृढ़ है किन्तु एक तत्व ईश्वर को भी यहाँ मान्यता देता है। योग दर्शन सांख्य की पृष्ठ भूमि पर तीन तत्वों को निम्नानुसार मान्यता देता है श्रीमद्भगवत गीता भी इसमें सहमति को पुष्ट करती है।

''सांख्ययोगौ'' पृथक बालाः प्रवदन्ति न पण्डिताः''।

(1) जीव तत्व (आत्मा, पुरूष या चेतनतत्व) – सांख्य दर्शन केवल दो ही तत्व मानता है (अ) पुरूष और (ब) प्रकृति। इसमें पुरूष तत्व को सांख्य निष्क्रिय कूटस्थ, नित्य मानता है। जड़ तत्व के सम्बंध से व्यष्टिरूप में सभी चेतन तत्व या आत्माएँ जीव भाव में होती है। तथा असंख्य होती है। ऐसा सांख्य एवं योग दोनो का मत है।

(2) ईश्वर तत्व (परमात्मा, पुरूष विशेष या चेतन तत्व) – योग दर्शन सांख्य के पुरूष तत्व को मानता है किन्तु इसका मत है कि सृष्टि प्रक्रिया में जड़ एवं चेतन का संयोग कराने वाला एक तीसरा तत्व होना आवश्यक है और वह तत्व दोनों चेतन और जड़ तत्वों से पृथक ऐसा तत्व जो चेतन तत्व के सर्वांश अनुकूल
हो और दूसरे जड़ तत्व के विपरीत हो, अर्थात जिसमें दुःख जड़ता और अज्ञान का नितान्त अभाव हो, जहाँ तक पहुँचना आत्मा का अंतिम ध्येय हो, जो ज्ञान का पूर्ण भंडार हो जहाँ से ज्ञान पाकर आत्मा जड़ चेतन का विवेक प्राप्त कर सके और अविद्या के बंधनों को तोड़कर 'हेय दुःख से सर्वथा मुक्ति प्राप्त कर सके। इसे ही ईश्वर तत्व कहा गया है। जड़ तत्व के संबंध से समष्टि रूप में चेतन तत्व ईश्वर या ब्रम्ह ही है। ऐसी मान्यता सांख्य एवं योग दर्शन की है।

(3) जड़ तत्व (प्रकृति) :– चेतन तत्व से भिन्न सक्रिय, परिणामिनी नित्य, अव्यक्त, अलिंग, प्रधान त्रिगुणात्मक, अविकृति तथा गुणों की साम्यावस्था को कहते है। ऐसे तत्व को चेतन तत्व के सापेक्ष मानने की आवश्यकता होती है जिसका धर्म दुःख है, जहाँ से दुःख की उत्पत्ति होती है और जो इस चेतनतत्व से विपरीत धर्मवाला है। दुःख जो जड़तत्व का स्वाभाविक गुण है न कि आत्मा या चेतन का। जड़ और चेतन तत्व में आसक्ति या अविवेकपूर्ण संयोग ही 'हेय'' अर्थात त्याज्य दुःख का वास्तविक स्वरूप है। और चेतन तथा जड़ तत्व का अविवेक अर्थात मिथ्या ज्ञान या अविद्या ''हेयहेतु'' अर्थात त्याज्य दुख का कारण है। चेतन और जड़ तत्व का विवेकपूर्ण ज्ञान ''हानोपाय'' दुख निवृत्ति का मुख्य साधन है। सांख्य और योग सम्मत् इस जड़ तत्व प्रकृति या प्रधान से इस दृश्य जगत् की उत्पत्ति हमने इकाई एक में योग की संकल्पना में विस्तार से देख चुके है।

2.3.5 योग दर्शन में पदार्थ विचार

योगशास्त्र में केवल बौद्धिक विषयों का विचार है। इनमें वस्तुतः विचार के लिए एकमात्र तत्व है **'चित्त'** अर्थात **''बुद्धि''** इसी के विविध स्वरूपों का योगशास्त्र में विचार है।

योग' का अर्थ है समाधि (योगः समाधि – योगाभाष्य 1–1) इसी को ''चित्तवृत्ति का निरोध'' भी कहते है। यह 'समाधि' चित्त का ही स्वाभाविक एक धर्म है। इस 'चित्त' की पाँच अवस्थाएँ होती हैं, जिन्हें **''चित्त की भूमि''** कहते हैं ये है – (1) क्षिप्त (2) मूढ़ (3) विक्षिप्त (4) एकाग्र तथा (5) निरूद्ध

सांख्य के समान योग में भी ईश्वर को छोड़कर अन्य तत्वों में सत्व, रजस् तथा तमस् रहते है। 'सत्व' के उद्रेक होने से ही साधक समाधिस्थ होता है। रजोगुण और तमोगुण के उद्रेक से चित्त समाधि के योग नहीं होता। चित्त की

भूमियाँ इन त्रिगुणों के अनुरूप ही होती है।

(1) **रजोगुणी चित्त** –: रजोगुण के प्रभाव से 'चित्त' बहुत चचंल होकर सांसारिक विषयों में इधर–उधर भटका करता है, उस अवस्था में उस चित्त को **''क्षिप्त''** कहते हैं जैसे दैत्य, दानवों का चित्त अथवा धन के मद से उन्मत्त लोगों का चित्त।

(2) **तमोगुणी चित्त** –: तमोगुण के उद्रेक से 'चित्त' मूढ़ हो जाता है, जैसे कोई निद्रा में मग्न हो तो उसके चित्त को ''मूढ़'' कहते हैं। राक्षसों के पिशाचों के तथा मादक द्रव्य खाकर उन्मत्त पुरूषों के ''चित्त'' मूढ़ कहे जाते हैं।

(3) **सत्तोगुणी चित्त** –: सत्व के आधिक्य रहने पर भी रजस् के कारण सफलता और असफलता के बीच में कभी इधर और कभी दूसरी तरफ चित्त की वृत्ति भटकती रहती है। कहते है कि देवताओं का तथा प्रथम–भूमि में स्थित जिज्ञासुओं का चित्त **''विक्षिप्त''** होता है। सत्व के आधिक्य के कारण राजसिक वृत्ति के रहने पर भी इस भूमि में कभी–कभी स्थिरता आ जाती है। 'क्षिप्त' अवस्था में यही वैशिष्ट्य इस भूमि का है। इसीलिए इस अवस्था के चित्त को **''विक्षिप्त''** कहते हैं।

(4) **विशुद्ध चित्त**–: शुद्ध सत्तोगुणी चित्त के एक ही विषय में लगे हुए चित्त को **'एकाग्र'** कहते है। यह निर्वात में रखे दीपक की स्थिर लौ के समान इधर–उधर नही जाता है।

(5) **निरूद्ध चित्त** –: चित्त की सभी वृत्तियों के शांत हो जाने पर इन वृत्तियों के संस्कार मात्र चित्त में रह जाते है। इन संस्कारों से युक्त चित्त **''निरूद्ध''** कहा जाता है।

इनमें प्रथम तीन भूमियों में यद्यपि कुछ मात्रा में वृत्ति का निरोध है, किन्तु ये तीनों भूमियाँ योग साधन के लिए वस्तुतः उपयुक्त नहीं है, प्रत्युत ये योग के **उपघातक** हैं। अतएव योग के साधनों से ये दूर कर दिये गये हैं। अंतिम दो **एकाग्र** एवं **निरूद्ध** योगशास्त्र के **'लक्ष्य'** है। उनमें प्रधान रूप से ''निरूद्ध अवस्था ही ''योग है। पंतजलि सूत्र में **योगश्चित्त वृत्ति निरोधः** का यही आशय है। चित्त त्रिगुणात्मक है। तीनों गुणों के उद्रेक क्रमशः समय–समय पर **''चित्त''** में होते रहते हैं। उसके अनुसार 'चित्त' के भी तीन रूप होते हैं

''चित्त'' जड़ है और ''पुरूष'' चेतन है। अनादि अविद्या के कारण पुरूष और 'प्रकृति' में परस्पर एक प्रकार का अभेद सम्बंध हो जाता है। इससे बुद्धि की वृत्तियों का पुरूष में आरोप होता है और मैं शांत हूँ, दुखी हूँ तथा मूढ़ हूँ इस प्रकार के ज्ञान पुरूष में उदित होते हैं। बुद्धि की विषयाकार वृत्तियां पुरूष में प्रतिबिम्बित होती हैं, वही **''पुरूष की वृत्ति''** कही जाती है। पुरूष का प्रतिबिम्ब **'चित्त'** पर पड़ता है। उससे चित्त भी अपने को चेतन के समान समझने लगता है और चेतन की तरह कार्य करने लगता है यही चित्त की वृत्ति हैं। इस प्रकार इन दोनों में परस्पर आरोप होता है। यही योग दर्शन का **पदार्थ विचार** है।

2.3.6 योग दर्शन में कर्म विचार

(1) कर्म का महत्व – सभी दर्शनों में कर्म सिद्धांत पर विचार किया गया है। वस्तुतः कर्म हमारे जीवन का तथा दर्शन का एक बहुत महत्वपूर्ण अंग है। संसार की प्रत्येक वस्तु में ''रजोगुण'' रहता ही है। रजोगुण का स्वभाव है – क्रियाशील होना। अतः प्रत्येक वस्तु में किसी न किसी रूप में **''क्रिया''** रहती ही है। श्रीमद्भगवत गीता में भी इसे स्पष्ट किया गया है।

'न हि कश्चित् क्षणमपि जातु तिष्ठत्यकर्मकृत् ।
कार्यते ह्यवशः कर्म सर्वः प्रकृतिजैर्गुणः ।।

अर्थात सभी प्राणियों को ''कर्म'' करना ही पड़ता है। योगशास्त्र में कर्म को अत्याधिक महत्व दिया गया है। परम् लक्ष्य तक पहुँचने के लिए कर्म एक प्रधान साधन है। कर्म करने के अनन्तर उससे चित्त में संस्कार अर्थात कर्माशय उत्पन्न होता है और वही ''वासना' को उत्पन्न करता है और फिर उसी वासना के अनुरूप जीव की उत्पत्ति तथा संसार में उसके कर्म होते हैं। यह **'कर्मचक्र**' अबाधित गति से अनवरत संसार में चलता ही रहता है। कर्म की गति अनादि है। अविद्या अनादि है और इसी अविद्या के कारण कर्म की उत्पत्ति होती है।

(2) कर्म के भेद –: कर्म चार प्रकार के होते हैं। (i) कृष्ण (ii) शुक्ल कृष्ण (iii) शुक्ल तथा (iv) अशुक्ल – अकृष्ण

(i) **कृष्ण** :– दुर्जनों के कर्म कृष्ण होते है।

(ii) **शुक्लकृष्ण** :– बाह साधनों से उत्पन्न शुक्लकृष्ण कर्म साधारण लोगों के होते है। जीवन यापन करने के लिए उन्हें साधारण रूप से पुण्य और पाप दोनों ही करने पड़ते है। इस कारण शुक्ल कृष्ण कर्म के द्वारा दूसरों को पीड़ा देने तथा उनके प्रति अनुग्रह दिखाने से उनका कर्माशय संचित होता है।

(iii) **शुक्ल कर्म** :– तपस्या स्वाध्याय तथा ध्यान में निरत लोगों के कर्म केवल मन के अधीन होते हैं, इसलिए उन्हें ब्राहय साधनों की अपेक्षा नहीं होती। इसीलिये उस प्रकार के कर्मो के द्वारा निश्चित रूप से न तो दूसरो को पीड़ा ही दी जा सकती है और न अनुग्रह ही दिखाया जा सकता है। इन कर्मो को शुक्ल कर्म कहते है।

(iv) **अशुक्ल–अकृष्ण कर्म** :– योगी लोग उन्ही कर्मो को करते हैं जिनके द्वारा उनकी चित्तवृत्तियाँ निरूद्ध हो सकें। अतएव उनके चित्त में विद्यमान पुण्य और पापों के संस्कार भी निवृत हो जाते हैं। वे लोग पाप उत्पन्न करने वाले कर्म तो करते ही नहीं, किन्तु तप, ध्यान, आदि के द्वारा पुण्य जनक जो कर्म करते हैं, उनके फल को प्राप्त करने की इच्छा भी उन्हें नहीं होती। इस कारण उनके कर्म अशुक्ल–अकृष्ण कहे जाते है। कर्म के फलों की इच्छा न होने से अशुक्ल तथा निषिद्ध कर्मो को न करने के कारण ''अकृष्ण'' योगियों के कर्म होते हैं।

साधारण लोगों के कर्म प्रथम तीन प्रकार के ही होते है। इन तीन प्रकार के कर्मो से उनके अनुरूप वासनाएँ भी उत्पन्न होती हैं, जिस प्रकार के वे कर्म होते हैं। दिव्य कर्म करने से उसी के अनुरूप **दिव्य वासना** उत्पन्न होती है। मानवीय कर्मो से उत्पन्न वासनाओं के फलों के भोग के समय में दिव्यकर्मो के फलों का कभी भी भोग नहीं होता है। इसी प्रकार नारकीय तथा तैर्यक् वासनाओं के लिए भी उपर्युक्त ही नियम है।

(3) कर्माशय या वासनाओं की प्रवृत्ति :– वासनाओं की प्रक्रिया बहुत नियंत्रित तथा विचित्र होती है। कभी भी कोई **फल–भोग** बिना उसकी वासना के नहीं हो सकते। देश और काल इस नियम में व्यवधान नहीं करते। कोई भी कर्मफल आकस्मिक नहीं होता। मरने के पश्चात् ही किसी का जन्म पूर्व–वासनाओं की सहायता के बिना नहीं होता। जिस योनि में जिसका जन्म होने को होता है, उस योनि के कर्म–फलों के भोग करने के योग्य पूर्व–पूर्व जन्मान्तरों में किये हुए तदनुरूप कर्मो से उत्पन्न वासनाएँ अभिव्यक्त हो जाती है। उदाहरणार्थ – एक जीव पहले मनुष्य था। वह मरने के बाद पशुयोनि में जन्म ग्रहण करने जा रहा है। इस स्थिति में उस मनुष्य ने अनेक पूर्व जन्मों में पशुयोनियों के उचित कर्म किये थे और तदनुकूल उसकी पाशविक वासनाएँ भी चित्त (कर्माशय) में विद्यमान थीं। अब कई जन्म व्यतीत होने के बाद भी पाशविक जन्म लेने के इस अवसर पर वे ही वासनाएँ उद्बुद्ध होकर उसके इस पशुयोनि में जन्म लेने के कारण बनेंगी। ये वासनाएँ अनादिकाल से सतत् चली आ रही है।

ये वासनाएँ हेतु, फल, आश्रय, तथा आलम्बन के द्वारा स्थायित्व प्राप्त करती है। और इनके न रहने पर अर्थात इनके नाश होने से (बीजक्षय) इनसे निवृत्ति भी हो जाती है।

4. वासना के कारण :– वासनाऐं होने का कोई हेतु होता है। हेतु का फल होता है। तथा फल का कोई आश्रय होता है। इस आश्रय के लिए कोई आलम्बन होना चाहिये। उदाहरणार्थ –:

(i) **हेतु** – धर्म से सुख, अधर्म से दुःख सुख से राग और दुख से द्वेष इन दोनों से 'प्रयत्न' जिसके कारण मन में वचन में, तथा शरीर में चेष्टाएँ होती हैं, जिनके द्वारा जीव किसी को अनुगृहीत करता है, या पीड़ा देता है। इससे धर्म और अधर्म सुख और दुख तथा राग और द्वेष उत्पन्न होते हैं। इसी क्रम से इन छः धर्म आदि शालाकाओं के सहारे

यह संसार चक्र चलता है। यही संसार चक्र वासनाओं का हेतु है। प्रतिक्षण क्रियाशील इस 'संसारचक्र' का कारण है **अविद्या**। यही है सभी क्लेषों का मूल, इसलिए यही है वासनाओं का वास्तविक हेतु।

(ii) **फल** – जिसको आश्रय या लक्ष्य मान कर उपर्युक्त धर्म आदि की विद्यमानता हो, वही 'फल' है। सत्कार्यवाद के अनुसार कार्यरूप फल कारण रूप वासना में अवश्य रहता ही है।

(iii) **आश्रय** – साधिकार मन वासनाओं का **''आश्रय''** है। अधिकार से च्युत निराश्रय होकर, रहने वाले मन में वासना नहीं रह सकती है।

(iv) **आलम्बन** – अभिमुख में प्राप्त वस्तु जिस वासना को उत्पन्न करे, वही उस वासना का **''आलम्बन''** होता है।

इस प्रकार हेतु, फल, आश्रय और आलम्बन ही **''वासना''** को उत्पन्न करते हैं और इनके न होने से **''वासना''** उत्पन्न नहीं होती।

5. संस्कार – कर्म के अंतर्गत हमने देखा कि **''कर्म''** करने के पश्चात् उससे **''कर्म–संस्कार''** या **कर्माशय'** बनता है। ये **'संस्कार'** पुण्यात्मक तथा अपुण्यात्मक होते हैं और काम, लोभ, मोह तथा क्रोध से उत्पन्न होते है। ये पुनः दृष्टजन्मवेदनीय तथा अदृष्टजन्मवेदनीय हैं। इनमें तीव्र वैराग्य से की गयी तपस्या, मन्त्रजप, तथा समाधि के द्वारा अथवा ईश्वर, देवता महर्षि एवं महानुभावों की आराधना से उत्पन्न ''कर्माशय' पुण्यात्मक' होते है। ये सद्यः अपना फल देते हैं। इसी प्रकार तीव्र अविद्या आदि कलेशों से भयभीत, व्याधिग्रस्त, दीन, शरणागत तथा महानुभावों के प्रति अथवा तपस्वियों के प्रति बारंबार अपकार करने से 'पापात्मक' कर्माशय उत्पन्न होता है। ये सभी सद्यः अपना फल देते हैं।

नारकीयों का **'दृष्टजन्मवेदनीय'** कर्माशय नहीं होता और जीवन्मुक्तों का अदृष्टजन्मवेदनीय' कर्माशय नहीं होता। इस प्रकार योग दर्शन अपना कर्मविचार बड़ी स्पष्टता के साथ प्रस्तुत करता है।

2.3.7 योग दर्शन में मोक्ष विचार

सांख्य दर्शन की आधार भूमि में योग दर्शन भी **बन्धन** का मूल कारण **अविवेक** को मानता है। योग दर्शन भी मोक्षावस्था को सुख दुख से परे की अवस्था मानता है। मोक्ष (कैवल्य) प्राप्ति के लिए यहाँ तत्व ज्ञान पर अधिक बल दिया गया है। तत्व ज्ञान की प्राप्ति तब तक नहीं हो सकती है जब तक मनुष्य का चित्त विकारों से परिपूर्ण है। अतः चित्त की स्थिरता तथा चित्तवृत्ति निरोध के लिए यहां आठ मार्ग बताए गए हैं जिन्हें अष्टांग मार्ग भी कहा जाता है। ये आठ मार्ग यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा ध्यान एवं समाधि है। समाधि योग दर्शन का अंतिम अंग है जिसका आशय है की अभीष्ट विषय का निरन्तर अनुशील करना। इस अवस्था में ध्येय वस्तु की ही चेतना रहती है। इस अवस्था में मन अपने ध्येय विषय में पूर्णतः विलीन हो जाता है जिसके फलस्वरूप उसे अपना कुछ भी ज्ञान नही रहता। यहाँ समाधि दो प्रकार की मानी गई है। (1) सम्प्रज्ञात समाधि तथा (2) असम्प्रज्ञात समाधि। सम्प्रज्ञात समाधि में ध्येय विषय का स्पष्ट ज्ञान रहता है अतः इसे सबीज समाधि भी कहा जाता है। असम्प्रज्ञात समाधि में ध्यान का विषय ही लुप्त हो जाता है। इस अवस्था में आत्मा अपने यथार्थ स्वरूप को पहचान लेती है। इस समाधि में ध्यान की चेतना का पूर्णतः अभाव रहता है। अतः इसे निर्बीज समाधि भी कहा जाता है। यही निर्बीज समाधि की अवस्था प्राप्त कर लेना योग दर्शन के अनुसार मोक्ष या कैवल्य की प्राप्ति है। निर्बीज से आशय कर्माशय के संस्कारों का पुनः उत्पन्न न होना। संस्कारों के कारण चित्त में उत्पन्न वृत्तियों का पूर्ण निरोध हो जाना प्रशांत चित्त हो जाना ही योग दर्शन का मोक्ष है।

बोध प्रश्न :

टिप्पणी क : अपने उत्तर नीचे दिये गये स्थान में लिखें

ख : इकाई के अंत में दिये गये उत्तरों से अपने उत्तर मिलाइए।

1 दर्शनों की प्रमुख समस्यायें क्या है ?

2 योग दर्शन के अनुसार कर्म की अवधारणा समझाइयें ?

2.4 इकाई 5 योग का अर्थ एवं परिभाषायें

2.4.1 योग का अर्थ

प्राचीन भारतीय चिन्तक एवं दार्शनिक तत्वज्ञान को प्राप्ति के बाद तत्वानुभूति के लिए तत्पर रहते थे। वे केवल तत्वज्ञान मात्र से संतुष्ट नहीं रहते थे। फलतः तत्वानुभूति के साधन के रूप में योग विज्ञान का विकास हुआ और आगे चलकर अष्टांगयोग के साधन मार्ग का आविर्भाव हुआ। तत्वज्ञान तथा तत्वानुभूति आदि उन भावों की प्राप्ति में सहायक होने से शरीर तथा मानसिक स्वस्थता हेतु भी योग की उत्पत्ति हुई। इसी तारतम्य में योग के विविध अंग **मंत्र, लय,** हठ इत्यादि विकसित हुऐ और यही विज्ञान **चेतना विज्ञान** के अतिरिक्त **'देह–मानसशास्त्र'** भी बनता गया।

योग का शब्दिक अर्थ विभिन्न आधारों पर व्यवहृत है। व्याकरण की दृष्टि से ''युज'' धातु के बाद करण और

भाववाच्य में **''घञ्''** प्रत्यय लगाने से बनता है। **''युज''** धातु का अर्थ है समाधि इस प्रकार योग शब्द का वास्तविक अर्थ समझने की आवश्यकता है। **''समाधि''** शब्द का अर्थ है सम्यक् प्रकार से अपने अंतर्मन के साथ युक्त हो जाना, मिल जाना, एक हो जाना जीव की कामना, वासना आसक्ति, संस्कार आदि सब प्रकार की आगन्तुक मलिनता को दूर कर स्वरूप में प्रतिष्ठित होकर, मुख्यभाव से अंतर्मन में मिल जाना। योग शब्द का अर्थ है जीव आर ब्रम्ह्य का पूर्णरूपेण मिलन। पाणिनि के गणपाठ में तीन 'युज्' धातु है। **दिवादिगण** के युज् धातु का अर्थ समाधि है। दूसरा युज् **रूध ाादिगण** में है, जिसका अर्थ **संयोग** होता है तथा तीसरा युज **चुरादिगण** मे है, जिसका अर्थ मिलाप होता है। समाधि ाबोधक युज धातु से ही यहां योग शब्द का उद्भव माना गया है। **''युज समाधौ''** धातु से योग समाधि के अर्थ में बहुत व्यापकता लिये हुऐ है। युजिर् योगे धातु से भी योग शब्द बनता है जिसका अर्थ जुड़ना अर्थात जीवात्मा का परमात्मा के साथ मिलजाना एक हो जाना। प्रायः हठयोगी एवं अन्य साधक भी योग का यही अर्थ लेते हैं। परंतु ऐसा स्थूल अर्थ लेना उचित प्रतीत नहीं होता। कारण यह है कि जीवात्मा और परमात्मा पृथक् वस्तु नहीं है, किन्तु चेतनतत्वेन एक ही है। भेद तो अविद्या जन्य है अतः औपाधिक है। भेद दर्शानेवाली अविद्या की योग समाधि द्वारा निवृत्ति हो जाने पर चेतन में भेद नहीं रह जाता। चेतन एक ही रह जाता है, जैसे घटाकाश और मठाकाश की उपाधिरूप घट और मठ नष्ट हो जाने पर एक महाकाश ही शेष रह जाता है। अतः जीवत्व–भाव का विलोप करके ब्रह्यभाव में स्थित हो जाना ही योग है। इसी को जीवात्मा और परमात्मा मिलकर एक हो जाना कहा गया है। योगांगों का अभ्यास करते हुए चित्तवृति–निरोध पूर्वक असम्प्रज्ञात समाधि भूमिका में पहुंचकर अपने चैतन्य स्वरूप या ब्रम्ह्यस्वरूप में स्थित हो जाना ही योग है।

सामान्यतः योग का अर्थ है स्थूलता से सूक्ष्मता की ओर जाना अर्थात् बाहर से अन्तर्मुख होना। चित्त की वृत्तियों द्वारा हम स्थूलता की ओर जाते हैं, अर्थात बहिर्मुख होते है। आत्मत्तत्व से प्रकाशित चित्त अहंकार रूप वृत्ति द्वारा, अहंकार इन्द्रियों और तन्मात्राओं रूप वृत्तियों द्वारा, तन्मात्राएं सूक्ष्म और स्थूलभूत और इन्द्रियां विषयों की वृत्तियों द्वारा बर्हिमुख हो जाती है। जितनी मात्रा बढ़ती जाएगी और उसके विपरीत वृत्तियां जितनी अंतर्मुख होती जायेगी, उतना ही रज और तम के तिरोभावपूर्वक सत्वका प्रकाश बढ़ता जाएगा। जब कोई भी वृत्ति न रहे तब शुद्ध परमात्मस्वरूप शेष रह जाता है। इस परमात्मस्वरूप अवस्था को प्राप्त करने हेतु योग के तीन अर्तविभाग किये जा सकते हैं ये तीन अंर्तविभाग निम्नलिखित

(1) ज्ञान (सांख्य) योग
(2) उपासना (भक्ति) योग
(3) कर्म योग

भौतिक पदार्थो को जान लेना अर्थात, सांसारिक ज्ञान और विज्ञान ज्ञानयोग नहीं है, बल्कि तीनों गुणों (सत्व, रज, तम) और उनसे बने हुए सभी पदार्थो से परे अर्थात् स्थूल–सूक्ष्म और कारण शरीर तथा स्थूल सूक्ष्म और कारण जगत् का संशय विपर्यय रहित पूर्णज्ञान हो जाना **''ज्ञान योग''** कहलाता है। इस ज्ञान योग की प्राप्ति हेतु उपासना योग (भक्ति) की आवश्यकता होती है। उपासना योग में चित्त की समस्त वृत्तियों को सब ओर से हटाकर चित्त को किसी विषय ध्येय (भक्ति का विषय या लक्ष्य) पर ठहरा सकना **भक्ति** या **''उपासना योग''** कहलाता है। यह **''उपासना योग''** बिना कर्म के प्राप्त नहीं हो सकता है अतः जगत् के कर्मो को कोल्हू के बैल के सदृश करते रहना कर्म योग नही है बल्कि अनासक्त या निष्काम भाव से किया जाने वाला कर्म कर्मयोग होता है। इस प्रकार ये तीनों अंर्तविभाग योग रूपी वृत्त की रूप भेद कड़िया ही है। इन तीनों को दो प्रमुख भेदो में भी विभाजित किया जा सकता है। ये है

(1) सांख्य (2) योग

जहाँ भक्ति और कर्म पर अधिक जोर दिया जाता है वह योग निष्ठा कहलाती है तथा जहां ज्ञान को प्रधानता दी जाती है उसे सांख्य निष्ठा कहते है। इसे श्रीमद्भगवत गीता में भी स्पष्ट किया गया है कि इस जगत् में कल्याण (योग) की प्राप्ति हेतु दो प्रकार की निष्ठायें हैं –

लोके अस्मिन् द्विविधा निष्ठाा पुरा प्रोक्ता मयानध।
ज्ञानयोगेन सांख्यानां कर्मयोगेन योगिनाम् ।।

ये दोनों निष्ठाायें फल की दृष्टि से समान है अर्थात तीनों योगों का अंतिम फल **परमात्म तत्व** की प्राप्ति पर ही पूर्ण होता है। इसे भी स्पष्ट निर्देशित कर दिया गया है।

सांख्ययोगौ पृथ्गबालाः प्रवदन्ति न पण्डिताः ।
एकमप्यास्थितः सम्यगुभयोर्विन्दते फलम् ।।

इस प्रकार योग का अंतिम लक्ष्य अंतिम फल या अंतिम परिणाम एक ही है। इसी कारण एक तत्व (परमात्य तत्व) का अभ्यास योग है।

2.4.2 योग की परिभाषाएँ

वेद, उपनिषद, स्मृति, पुराण सूत्रों आदि में योग का साहित्य अत्यंत विशाल है। इन ग्रन्थों में योग को दृष्टिकोण की भिन्नताओं के कारण अलग अलग परिभाषित किया गया है। इन परिभाषाओं को इनकी व्याख्याओं के आधार पर निम्नलिखित तालिका (क्रमांक 02) के अनुसार वर्गीकृत किया जा सकता है–:

योग की व्याख्यायें

(1)	(2)	(3)
एक अवस्था या स्थिति के रूप में	एक साधना प्रक्रिया के रूप में	अवस्था एवं प्रक्रिया के सम्मिलित रूप में।

(तालिका क्रमांक 02)

(1) अवस्था या स्थिति के रूप में

(i) कठोपनिषद् (2.3.11) के अनुसार निम्नलिखित प्रकार से योग को परिभाषित करने का प्रयास किया गया है।

तां योगमिति मन्यंते स्थिरामिन्द्रिय धारणाम्।
अप्रमत्तस्तदा भवति योगो हि प्रभवाव्ययै ।।

अर्थात् पंच इंद्रियों मन, एवं बुद्धि की स्थिर अवस्था को योग कहते हैं। इसको प्राप्त करने पर मनुष्य संपूर्ण रीति से दोष रहित हो जाता है।

(ii) मैत्रायणी उपनिषद् के अनुसार निम्नलिखित प्रकार से योग को परिभाषित किया गया है।

एकत्वं प्राणमनसेरिंद्रियाणां तथैव च।
सर्वभाव परित्यागो योग इत्यभिधीयते।।

अर्थात योग वह अवस्था है जिसमें मन, विचारों से रहित होकर इंद्रियों,मन और प्राणों की एकता हो जाती है।

(2) साधना प्रक्रिया के रूप में

(i) महोपनिषद् में योग की व्याख्या साधना प्रक्रिया के रूप में की गई है

मनः प्रशमनोपायो योग इत्यभिधीयते।

अर्थात मन को शांत करने के लिए जो भी अन्यान्य उपाय किये जाते हैं (शारीरिक तथा मानसिक) उन सब का अन्तर्भाव योग में किया जा सकता है।

(ii) योगी याज्ञवल्कय स्मृति में योग की व्याख्या संयोग के रूप मे इस प्रकार है।

संयोगेा योग इत्युक्तो जीवात्मा परमात्मनोः ।

अर्थात जीवात्मा एवं परमात्मा के संयोग की स्थिति योग है। यह परिभाषा योगदर्शन की अपेक्षा वेदांत के ज्यादा निकट है।

(iii) श्रीमद्भगवत गीता में योग की व्याख्या संयोग तथा वियोग दोनो अर्थो में प्राप्त होती है।

तं विद्याद् दुःखसंयोग वियोगं योगसंज्ञितम् ।

स निश्चयेन योत्कव्यो योगोऽनिर्विण्ण चेतसा।।

अर्थात दुःख रूप संसार के संयोग से रहित वियोगं जिसका नाम योग है, उसको जानना चाहिये वह योग न उकताये हुए अर्थात् धैर्य और उत्साह युक्त चित्त से निश्चयपूर्वक करना कर्त्तव्य है।

(3) अवस्था एवं प्रकिया के सम्मिलित रूप में :–

(i) योगसूत्र में सर्वाधिक प्रचलित परिभाषा अवस्था एवं प्रक्रिया दोनों के सम्मिलित रूप में इस प्रकार है–

योगश्चित्तवृत्ति निरोधः।

अर्थात चित्त की वृत्तियों को रोकना (निरोध) योग है। चित्त की वृत्तियाँ जो बर्हिमुख होकर सांसारिक विषयों में लग जाती है उन्हें अर्न्तमुख करके पुनः चित्त में लीन कर देना योग है।

(ii) श्रीमद्भगवतगीता के अनुसार योग को इस प्रकार परिभाषित किया गया है।

(क) योगस्थः कुरूकर्माणि संगंत्यकत्वा धनंजय।

सिद्ध सिद्धयोः समोभूत्वा समत्वं योग उच्यते।।

अर्थात हे धनंजय (अर्जुन) आसक्ति को त्यागकर तथा सिद्धि और असिद्धि में समान बुद्धिवाला होकर योग में स्थित हुआ कर्त्तव्य कर्मो को कर, समत्व (ही) योग कहलाता है। यहाँ समत्व का अर्थ जो कुछ भी कर्म किया जाय, उसके पूर्ण होने और न होने में तथा उसके फल में समभाव रहने का नाम (समत्व) है।

(ख) बुद्धियुक्तो जहातीह उभे सुकृत दुष्कृते।

तस्माद्योगाय युज्यस्व योगः कर्मसु कौशलम्।।

अर्थात समबुद्धि युक्त (पुरूष) पुण्य और पाप दोनो को इसी लोक में त्याग देता है अर्थात उनसे मुक्त हो जाता है। इससे (तू) समत्वरूप योग में लग जा, (यह) समत्वरूप योग (ही) कर्मो में कुशलता है अर्थात कर्मबन्धन से छूटने का उपाय है।

इस प्रकार अनेक अन्य प्रमाणिक ग्रंथों में और भी योग की परिभाषायें प्राप्त होती है। यहां सम्यक् व्याख्या करने की दृष्टि से उपरोक्त महत्वपूर्ण परिभाषाओं को वर्णित किया गया है। इन सबमें एक बात स्पष्ट रूप से व्यक्त होती

है कि योग एक ऐसी प्रक्रिया है, जो साधक को अज्ञान एवं दुःखों से निवृत करा कर जीवन के परम् पुरूषार्थ की प्राप्ति

बोध प्रश्न :

टिप्पणी क : अपने उत्तर नीचे दिये गये स्थान में लिखें।

ख : इकाई के अंत में दिये गये उत्तरों से अपने उत्तर मिलाइए।

3. योग का अर्थ बतलाइये ?

_____

_____

_____

_____

_____

_____

_____

4 योग की किसी एक परिभाषा को समझाइये ?

_____

_____

_____

_____

_____

_____

_____

2.5 इकाई 6 योग की सैद्धांतिक पृष्ठभूमि

2.5.1 योग का द्वैतवाद

दार्शनिक जगत् में यह प्रश्न सदैव उठता है कि सृष्टि बनने में कितने तत्वों की आवश्यकता है ? एवं वे आवश्यक तत्व कौन कौन से है। हरेक दर्शन अपने सत्ताशास्त्र के अनुसार अपना सिद्धांत प्रस्तुत करता है। योग दर्शन का सत्ताशास्त्र सांख्य दर्शन के सत्ताशास्त्र पर अवलम्बित है। जहां वेदांत दर्शन सृष्टि के मूल में **एक तत्व** का सिद्धांत प्रस्तुत करता है तो वही **न्याय, वैशेषिक, जैन** आदि दर्शन **बहुतत्ववाद** के समर्थक है उनकी दृष्टि में यह सृष्टि अनेक तत्वों (पदार्थ) से मिलकर बनी है। इन दोनो सिद्धांतो से पृथक सांख्य एवं योग दर्शन अपना द्वैतवाद का सिद्धांत प्रस्तुत करते है। इनके अनुसार सृष्टि के दो मूल तत्व है।

ये दो मूल तत्व (1) प्रकृति तथा (2) मूल तत्व पुरूष (जीव) है। ये दोनों तत्व ''अनादि एवं ''अनन्त'' है। तथा ''नित्य'' है। अर्थात जिनका कभी क्षय नही होता है। इनमें पुरूष (जीव) नित्य तत्व है तथा असंख्य है तथा

अनादि अनन्त एवं शाशवत है। दूसरा तत्व प्रकृति या जड़ तत्व है इसे प्रधान, अव्यक्त या अलिंग नाम से भी जाना जाता है।

इन दोनो में से किसी एक तत्व से सृष्टि का निर्माण संभव नहीं है। क्योकि पुरूष चेतन तो है किन्तु अपरिणामी अर्थात परिवर्तन से रहित है तथा प्रकृति जड़ है तथा सतत् परिणामनी है। यही दो तत्व योग दर्शन को मान्य है इस कारण योग दर्शन **द्वैतवादी दर्शन** है। इसे महर्षि पतंजलि योग सूत्र में स्पष्ट कर देते है। सृष्टि प्रक्रिया में स्वशक्ति अर्थात **प्रकृति** (तथा उससे उत्पन्न बुद्धि मन इत्यादि तत्व) और स्वामी शक्ति अर्थात **पुरूष** इन दोनों मूलतत्वों को अपने स्वरूप को उपलब्ध करा देना यही संयोग का हेतु है। इस संयोग का कारण है अविद्या योग साधना से अविद्या नष्ट होने पर संयोग के कारण का ज्ञान होते ही संयोग का आभाव हो जाता है। यह आभाव के ज्ञान की स्थिति **''हान''** है। योग दर्शन हान अर्थात **''कैवल्य''** की स्थिति को दोनों मूलतत्वों के अपने स्वरूप में पृथक पृथक विद्यमान रहने को मानता है।

2.5.2 योग दर्शन और त्रिगुण सिद्धांत

योग दर्शन द्वैतवादी दर्शन है इसके दो तत्वों में से एक प्रकृति तत्व सतत् परिणामशील रहता है। मूल अवस्था में प्रकृति तीन गुणों **सत्व रज,** एवं **तम** से युक्त रहती है। ये तीन गुण जब अपनी अपनी मूल स्थिति में होते है तो इस अवस्था को प्रकृति की लय अवस्था कहते है इस अवस्था में प्रकृति अव्यक्त स्थिति में रहती है। जब प्रकृति के सान्धिय में चेतन पुरूष आता है तो प्रकृति के इन तीन गुणों की लय अवस्था भंग हो जाती है और ये तीनों विभिन्न परिणामों में व्यक्त होने लगते है यहीं से प्रकृति अपने को चेतनवत् व्यक्त करने लगती है। प्रकृति चेतन के सांन्धिय में प्रथम परिणाम के रूप में अपनी त्रिगुणात्मक प्रकृति के संतुलन को न बनाये रखने के कारण लिंगमात्र (महत्तत्व, बुद्धि या महत्) में परिवर्तित हो जाती है। इसके बाद सृष्टि का सतत् परिणाम आगे बढ़ता है और महत्त से त्रिगुणात्मक अहंकार उत्पन्न होता है। इस त्रिगुणात्मक अहंकार में से सात्विक अहंकार से पांच ज्ञानेन्द्रियां एवं पांच कर्मेन्द्रिया तथा मन ऐसे कुल ग्यारह तत्व निर्माण होते है। तामस् अहंकार से पांच तन्मात्राएँ शब्द, स्पर्श, रूप, रस एवं गंध उत्पन्न होती है। इन पांच तन्मात्राओं से क्रमशः आकाश, वायु तेज, जल एवं पृथ्वी ये पंच महाभूत निर्माण होते है।

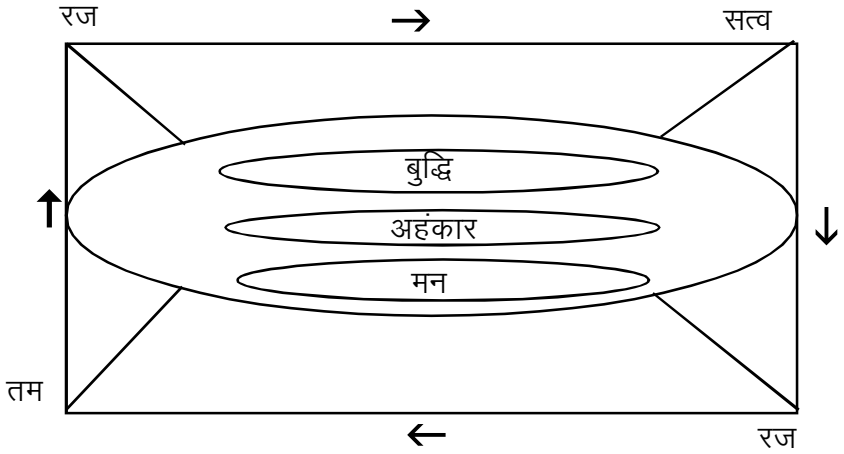
2.5.3 योग दर्शन में सृष्टि विचार

योग दर्शन द्वैतवादी दर्शन है। इस द्वैतवादी सिद्धांत के अनुसार सृष्टि में पुरूष और प्रकृति को छोड़कर अन्य कोई तत्व नहीं है। परन्तु इस पर यह प्रश्न निर्माण होता है कि यदि पुरूष अकर्त्ता है और त्रिगुणों से परे है तथा प्रकृति अचेतन है तो फिर ये दोनों मूलतत्व अपने आप में अपने स्थान पर ही रह जायेगें सृष्टि का आरंभ कैसे होगा ? इस प्रश्न के उत्तर में योग का कहना है कि यद्यपि दोनों मूलतत्व अपने आप में सृष्टि को बनाने में असमर्थ है फिर भी उनके अनादि संयोग के कारण दोनों के गुण एक दूसरे पर आरोपित हो जाते है। जैसे शीशा सूर्य की किरण परावर्तित करके स्वयं प्रकाशवान जैसा लगता है वैसे अचेतन प्रकृति पुरूष का प्रतिबिम्ब ग्रहण करके मानों चेतन जैसा बन जाती है और सृष्टि की रचना करती है इसके साथ पुरूष प्रकृति के (अर्थात बुद्धि के) अशुद्धियों से (चित्तवृत्तियों से) आरोपित होकर स्वयं अपने को सुखी दुखी मानने लगता है। इस प्रकार वह अकर्त्ता होते हुए भी भोक्ता बन जाता है। पुरूष और प्रकृति का संयोग वास्तविक नहीं बल्कि काल्पनिक होता है। इसका कारण है **अविद्या या अज्ञान** यह अनादि है। योग के अभ्यास से अविद्या नष्ट होकर विवेक ज्ञान होने से पुरूष और प्रकृति का संयोग खत्म हो जाता है तब पुरूष प्रकृति से मुक्त हो जाता है। परंतु अन्य पुरूषों के भोग एवं अपवर्ग के लिए प्रकृति संसार की रचना करती रहती है।

2.5.4 योग दर्शन में मन–शरीर संम्बन्ध

योग दर्शन में तीन अन्तिम सत्तायें मानी गई है ये हैं – (1) ईश्वर (2) पुरुष और (3) प्रकृति। इनमें पुरुष अनन्त

है, प्रकृति एक है। दोनों अनादि है, किन्तु एक चेतन है, दूसरा जड़। चेतन पुरुष निष्क्रिय, अपरिणामी, नित्य, सर्वव्यापी अनेक है, वही प्रकृति त्रिगुणात्मक एक परिणामी सक्रिय है। यह सम्पूर्ण दृश्य जगत् त्रिगुणात्मक प्रकृति का व्यक्त रूप है। ईश्वर के सान्निध्य मात्र से प्रकृति की साम्य अवस्था भंग हो जाती है और अव्यक्त प्रकृति व्यक्त (दृश्य) प्रकृति होने लगती है। बुद्धि, अहंकार, मन, इन्द्रियाँ, सूक्षम और स्थूल विषय तथा समस्त प्रपंचात्मक जगत् प्रकृति की ही अभिव्यक्तियाँ है। योग दर्शन में मन–बुद्धि–अहंकार इन तीनों को ही चित्त माना गया है। देंखें चित्र क्र. 1



त्रिगुणात्मक प्रकृति (चित्र क्रमांक–01)

मन, अहंकार एवं बुद्धि ये तीनों स्वयं में जड़ है। अतः चित्त भी स्वयं में जड़ है। चित्त में निरंन्तर परिणाम होते रहते है। पुरुष अपरिणामी, निष्क्रिय होते हुए भी जब अज्ञान के कारण चित्त के साथ तादात्मय का भ्रम हो जाने पर अपने को ही **परिणामी** समझने लगता है, तब इस अवस्था में उसे बद्धजीव कहते हैं।

चित्त त्रिगुणात्मक होते हुए भी सत्व प्रधान है, अर्थात उसमें रज और तम अल्प मात्रा में तथा निर्बल स्थिति में रहते है। सत्व प्रधान एवं आत्मा के निकट होने से चित्त आत्मा के प्रकाश से प्रकाशित होता है उदाहरणार्थ :– जैसे दीपक दर्पण में प्रतिबिम्बित होकर दर्पण को प्रकाशित तो करता है साथ ही अन्य सभी प्रतिम्बिबित विषयों को भी प्रकाशित करता हैं

ठीक इसी प्रकार सात्विक चित्त निर्मल (दर्पणवत्) होने के कारण '' पुरुष'' (चेतन) का प्रतिबिम्ब उसे प्रकाशित कर चित्त के अन्य समस्त विषयों को भी प्रकाशित करता है। इसी कारण आत्मा को विषयों का ज्ञान प्राप्त होता है। चित्त सतत् विषय –सम्पर्क के कारण विषयाकार होता रहता है। चित्त के विषयाकार होने को ही चित्तवृत्ति कहते है। ये चित्तवृतियाँ सतत् परिवर्तनशील होने के कारण निरंन्तर चित्त में धारारुप से प्रवाहित होती रहती है इस कारण अपरिणामी, निष्क्रिय अविकारी पुरुष भी प्रतिबिम्बित होने के कारण परिणामी, क्रियाशील तथा विकारी प्रतीत होने लगता है। जैसे जल तरंगों की गति के कारण स्थिर चन्द्रमा भी चंचल प्रतीत होता है। चित्त की वृत्तियों प्रमाण, विपर्यय, विकल्प एवं निद्रा को पुरुष अपने में मान उनके अनुरुप अपने को शान्त, धोर मूढ़ समझ सुखी दुःखी होने लगता है यही **अज्ञान या भ्रम** है।

प्रकृति विकास क्रम में प्रथम विकार महत, बुद्धि या चित्त है। जिससे दो अलग अलग समानान्तर प्रवाह विकसित होते रहते है।

(1) अहंकार, मन, पंच ज्ञानेन्द्रियाँ व पंच कर्मेन्द्रियाँ।

(2) महत् से पंचतन्मात्रा और पंचतन्माआओं से पंचमहाभूत तथा पंचमहाभूत से समस्त स्थूल जगत्। ये **दोनों प्रवाह प्रकृति की सतत् परिणामी** होने के गुण की ही **धारायें** है।

किन्तु अज्ञानवश पुरुष अपने आपको मन, इन्द्रिय, शरीर आदि तथा चित्त के परिणामों को अपने परिणाम समझ कर सुख–दुःख और मोह को प्राप्त होता रहता हैं। यही आत्मा का बन्धन है क्योंकि पुरुष चित्त की समस्त अवस्थाओं को अपनी अवस्था समझ बैठता है। इन्द्रियों और शरीर की क्रियाओं को स्वयं की क्रिया समझने लगता है।

चित्त और मन अचेतन और जड़ होते हुए भी अत्यन्त **सूक्ष्म** है, इसी सूक्ष्म चित्त व मन में हमारे जन्मजन्मांतरों के कर्मो की वासनाओं के संस्कार विद्यमान रहते है और जीव के साथ एक शरीर को छोड़ दूसरे शरीर में कर्मानुसार जाते रहते है। शरीर **पंच महाभूतों** से निर्मित होता है जो पंचतन्मात्राओं से उत्पन्न होते है। महत् से अहंकार से–मन–से पंच ज्ञानेन्द्रियां और पंच कर्मेन्द्रिय की अभिव्यक्ति होती है। शरीर एवं मन क्रमशः जड़ प्रकृति की स्थूल व सूक्ष्म अवस्थायें हैं। अतः मानसिक क्रियाओं द्वारा शारीरिक क्रियाएं प्रभावित होती है। इसी प्रकार शारीरिक अवस्थाओं का प्रभाव मन पर निश्चित रुप से पड़ता है।

वस्तुतः जब दोनों एक ही जड़–तत्व की अभिव्यक्तियां हैं तो उनके सम्बन्ध को समझने में कोई कठिनाई ही नहीं है। इनका पारस्परिक प्रभाव योग के द्वारा स्पष्ट ही है। इतना अवश्य है कि सूक्ष्म अधिक शक्तिशाली तथा अधिक क्षमतावान् तथा सम्भाव्यता वाला होता है। इसके कार्य बिना शरीर की सहायता के भी सम्पादित होते है। चित्त की ऐसी **विलक्षण शक्ति** मानी गई है कि वह शरीर को जिस प्रकार से चाहे उस प्रकार से चला सकता है। वैसे तो मन और शरीर का अन्योन्याश्रय सम्बंध है ही, किन्तु **मन सूक्ष्म** होने के कारण स्वतंत्र रुप से भी क्रियाशील होता है। यह सब क्रियाशीलता बिना चेतन के सान्निध्य के सम्भव नही है। स्वयं में अपरिणामी होते हुए भी वह समस्त विश्व के इस विकास का **निमित्त कारण** होता है।

बोध प्रश्न :

टिप्पणी क : अपने उत्तर नीचे दिये गये स्थान में लिखें ।

ख : इकाई के अंत में दिये गये उत्तरों से अपने उत्तर मिलाइए।

5. योग दर्शन के अनुसार द्वैतवाद क्या है ?

_____

_____

_____

_____

_____

_____

_____

_____

_____

6. त्रिगुण का सिद्धांत समझाइये ?

_____

_____

_____

_____

_____

_____

_____

2.6 सारांश

इस खंड के अध्ययन के उपरान्त आपने देखा कि योग विज्ञान की सैद्धांतिक पृष्ठभूमि क्या है। हमने देखा कि जीवन की कठिनाइयों और अशांति के उपाय स्वरुप चिन्तनशील मानव ने ऐकान्तिक एवं आत्यान्तिक शान्ति के निमित्त से जिस शास्त्र का सजृन (उद्भावन) किया उसे हम दर्शनशास्त्र के नाम से जानते है। विविध साक्षात्कारों एवं दृष्टियों के कारण कई दर्शन सिद्धांत उत्पन्न हुए उनमें योग दर्शन भी अपना दृष्टिकोण रखता है। यह दर्शन सैद्धांतिक कम व्यवहारिक ज्यादा है।

अन्य दर्शनों की भॉति योग दर्शन भी दर्शानों के प्रतिपाद्य विषयों – **हेय, हेय–हेतु, हान** और **हानोपाय** के लिए अपनी तकनीकें एवं मान्ताएं प्रस्तुत करता है। योग दर्शन सांख्य दर्शन की आधारभूमि पर खड़ा है। साथ ही वह अपनी विशेषता भी रखता है ईश्वरवाद उसकी मूल विशेषता है। योग दर्शन जीव तत्व (आत्मतत्व) ईश्वर तत्व (परमात्म तत्व) तथा प्रकृति तत्व जड़ तत्व पर अपना सिद्धांत प्रस्तुत करता है।

योगदर्शन अपने पदार्थ विचार में ''चित्त'' पर बृहत प्रकाश डालता है। उसके स्वरुप उसकी कार्यप्रणाली का पर्याप्त विवेचन योग दर्शन करता है। योगदर्शन अपने कर्मविचार के अन्तर्गत बन्धन का कारण कर्म और उनके चार भेदों पर प्रकाश डालता है। योग दर्शन अपने मोक्ष विचार के अन्तर्गत कर्माशय के निर्बोज होने तक की प्रक्रिया को प्रस्तुत करता है तथा वृत्तियों के निरोध को इस हेतु आवश्यक मानता है।

योग के अनेक अर्थ लगाये जाते है। कहीं समाधि के अर्थ में कहीं संयोग तो कहीं मिलाप के अर्थ में इसका विवेचन किया जाता है। योग के अन्तः भेद भी किये गये है। ये है – ज्ञानयोग, भक्तियोग एवं कर्मयोग। योग को समझाने हेतु उसे परिभाषित भी किया गया है। जो योग को (1) अवस्था या स्थिति (2) साधना प्रक्रिया एवं (3) अवस्था एवं प्रक्रिया का सम्मिलन रुप के अन्तर्गत परिभाषित किये जाते है।

योग दर्शन अपनी सैद्धांतिक पृष्ठभूमि को द्वैतवाद के आधार पर खड़ा करता है। तथा सांख्य के अनुरुप त्रिगुणात्मक सिद्धांत को अपने सृष्टि विचार के अन्तर्गत प्रस्तुत करता एवं मान्यता देता है। योग दर्शन बड़े ही स्पष्ट तरीके से मन–शरीर सम्बन्ध की विवेचना भी प्रस्तुत करता है जिससे जीवन व्यापार समझने में सहायता प्राप्त होती है।

सारांशतः योग दर्शन की सैद्धांतिक पृष्ठभूमि अत्यंत व्यावहारिक एवं **जीवन जीने की एक कला** के रुप में बड़े सरल ढंग से अपने सभी सिद्धांत प्रस्तुत करने में सक्षम है। तथा इसके सिद्धांत व्यवहार में अनुभव जन्य है। इस कारण आज यह दर्शन सबसे लोकप्रिय एवं सभी दर्शनों को कर्मपक्ष हेतु सहायता भी करता है।

2.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

प्र. 1 दर्शनों की प्रमुख समस्यायें क्या है ?

उ. सभी दर्शनों की प्रायः एक समान समस्यायें है। उनके निदान के रास्ते एवं साधन भले अलग है किन्तु लक्ष्य भी करीब समान ही है।

दर्शनों की निम्नलिखित प्रमुख समस्यायें है।

(1) **हेय** :– दुःख का वास्तविक स्वरुप क्या है, जो हेय अर्थात त्याज्य है।

(2) **हेय–हेतु** :– दुःख कहाँ से उत्पन्न होता है, इसका वास्तविक कारण क्या है, जो ''हेय'' अर्थात त्याज्य दुःख का वास्तविक हेतु है।

(3) **हान** :– दुःख का नितान्त अभाव क्या है, अर्थात हान किस अवस्था या स्थिति का नाम है।

(4) **हानोपाय** :– हान का उपाय हानोपाय है अर्थात् नितान्त दुःखनिवृत्ति का साधन क्या है ?

प्र.2 योग दर्शन के अनुसार कर्म की अवधारण समझाइये ?

उ. सभी दर्शनों में कर्म सिद्धांत पर विचार किया गया है। वस्तुतः कर्म हमारे जीवन का तथा दर्शन का एक बहुत

महत्वपूर्ण अंग है। संसार की प्रत्येक वस्तु में ' रजोगुण ' रहता ही है। रजोगुण का स्वभाव है क्रियाशील होना। अतः प्रत्येक वस्तु में किसी न किसी रुप में क्रिया रहती ही है।

योग दर्शन ने अपने कर्म सिद्धांत में कर्म के चार भेद किये है (1) कृष्ण कर्म (2) शुक्ल कुष्ण कर्म (3)शुक्ल कर्म तथा (4) अशुक्ल अकृष्ण कर्म। योग दर्शन की मान्यता है कि कर्म करने के उपरांत कर्म संस्कार (कर्माशय) अवश्य बनता है। उसी कर्माशय को योग साधन द्वारा निर्बीज करना कर्मयोग है।

प्र.3 योग का अर्थ बतलाइये ?

उ. योग का शाब्दिक अर्थ विभिन्न आधारों पर व्यवहृत है व्याकरण की दृष्टि से ''युज'' धातु के बाद करण और भाववाच्य में ''घञ'' प्रत्यय लगाने से बनता है। पाणिनि के गणपाठ में तीन ''युज धातु'' है। इनसे योग के तीन अर्थ समाधि, संयोग और मिलाप लिये जाते है। समाधि बोधक 'युज' धातु से ही यहां योग शब्द का उद्‌भव माना गया है। योग शब्द भारतीय संस्कृति में अपने शाब्दिक अर्थ से कहीं ज्यादा व्यापकता लिए हुये है। योग दर्शन के प्रर्वतक महर्षि पंतजलि योग को चित्तवृत्तियों के निरोध की अवस्था कहते है।

प्र. 4 योग की किसी एक परिभाषा को समझाइये ?

उ. अवस्था एवं प्रक्रिया के सम्मिलित रुप में

(1) योगसूत्र में सर्वाधिक प्रचलित परिभाषा अवस्था एवं प्रक्रिया दोनों के सम्मिलित रुप में इस प्रकार है

योगश्चितवृत्ति निरोधः

अर्थात चित्त में उठने वाली वृत्तियों का निरोध करना उन्हें शांत करना योग है।

(2) श्रीमद्‌भागवत गीता के अनुसार

योगस्थः कुरुकर्माणि संगंत्यकत्वा धनंजय।
सिद्ध सिद्धयोः समोभूत्वा समत्वं योग उच्यते।।

अर्थात् आसक्ति को त्यागकर तथा सिद्धि और असिद्धि में समान बुद्धिवाला होकर योग में स्थित हुआ कर्तव्य कर्मो को कर, यह समत्व ही योग है।

बुद्धियुक्तो जहातीह उभे सुकृत दुष्कृते।
तस्माद्योगाय युज्यस्व योगः कर्मसु कौशलम्।।

अर्थात समत्व बुद्धि युक्त कर्म कर्मो में कुशलता प्रदान करते है कर्मो में कुशलता ही कर्मबन्धन से छूटने का उपाय है।

प्र. 5 योग दर्शन के अनुसार द्वैतवाद क्या है ?

उ. योग दर्शन का द्वैतवाद का सिद्धांत सांख्य दर्शन के सिद्धांत की पृष्ठभूमि पर ही आधारित है। ये सृष्टि रचना में दो मूल तत्वों को मानते है (1) प्रकृति एवं (2) पुरुष (जीव) महर्षि पतंजलि इस द्वैतवाद को स्पष्ट करते है कि सृष्टि प्रक्रिया में स्वाशक्ति अर्थात प्रकृति (तथा उससे उत्पन्न बुद्धि मन इत्यादि तत्व) और स्वामी शक्ति अर्थात पुरुष इन दोनों मूलतत्वों को अपने स्वरुप को उपलब्ध करा देना यही संयोग का हेतु है। इस संयोग का कारण है अविद्या। अविद्या के योगसाधना द्वारा नष्ट होने पर संयोग के कारण का ज्ञान होते ही संयोग का अभाव हो जाता है। यह अभाव के ज्ञान की स्थिति **''हान''** है। योग दर्शन ''हान'' अर्थात कैवल्य की स्थिति को दोनों मूलतत्वों के अपने स्वरुप में पृथक विद्यमान रहने को मानता है।

प्र. 6 त्रिगुण का सिद्धांत समझाइयें ?

उ. योग दर्शन का तत्व विचार द्वैतवाद को मानता है। द्वैतवाद के अन्तर्गत दो तत्व प्रकृति एवं पुरुष मूल तत्वों में माने गये है। प्रकृति इस दृश्य जगत् की कारणभूता है। प्रकृति को त्रिगुणात्मिका माना जाता है, ये त्रिगुण है **सत्व रजस** एवं **तमस्।** इन तीन गुणें की **साम्यावस्था** को प्रकृति की प्रलय अवस्था कहते हैं तथा लय की स्थिति में पुरुष के सानिध्य के कारण साम्यावस्था का भंग होना प्रकृति का सृजन है। चूंकि यह सारा दृश्य जगत् प्रकृति का परिणाम हैं इस कारण जगत के प्रत्येक तत्व में तीन गुण सत्व, रज, एवं तम किसी न किसी अवस्था में अवश्य रहते है। इस कारण प्रकृति में जड़ चेतन जो कुछ भी विद्यमान है वह सब उन तीन गुणों के सम्मिश्रण का ही परिणाम होता है। यही योग दर्शन का त्रैगुण्य सिद्धांत है।

2.8 उपयोगी संदर्भ गंथ

(1) भारतीय दर्शन — **प्रो. बलदेव उपाध्याय (पद्मभूषण)**
प्रका. शारदा मन्दिर 36–13
रवीन्द्रपुरी, वाराणसी

(2) दर्शन — **डॉ. देवराज**
नेशनल पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली –2

(3) सांख्यकारिका — **डॉ0 बैजनाथ पाण्डेय**
भारतीय विद्या प्रकाशन पो. बा. नं. – 1108
कचौड़ी गली, वाराणसी – 221001

(4) श्रीमद्भागवतगीता — **गीता प्रेस,**
गीता प्रेस गोरखपुर संख्या 2052 ,273005

(5) योग एवं आयुर्वेद — **सत्येन्द्र प्रसाद मिश्रा**
चौरवम्बा संस्कृत संस्थान
पो. बाक्स – 1139 वाराणसी

(6) भारतीय दर्शन — **उमेश मिश्र**
प्रकाशन ब्यूरो
सूचना विभाग उ.प्र. सरकार, लखनऊ

(7) योग दर्शन — **डॉ. संपूर्णानन्द**
हिन्दी समिति ग्रन्थमाला संख्या – 122
सूचना विभाग उ.प्र. सरकार, लखनऊ

(8) महर्षि पतंजलि कृत योग दर्शन — **हरिकृष्ण दास गोयन्दका**
गीता प्रेस गोरखपुर (उ.प्र.)

(9) योग और भारतीय दर्शन — **वर्नियर**
मोतीलाल बनारसीदास दिल्ली

(10) तंत्र क्रिया और योगविद्या — **स्वामी सत्यानन्द सरस्वती**
बिहार योग विद्यालय, मुंगेर, बिहार

(11) भक्तिसागरादि — **स्वात्माराम योगेन्द्र**
खेमराज श्री कृष्णदास प्रकाशन बम्बई

(12) योग दर्शन — **परमहंस निरंजनानन्द**
प्रकाशक श्री पंचदशनाम पहमहंस
अलखबाड़ा पनिया पगार, रिखिया
देवधर– बिहार

खण्ड 3

इकाई 7

ज्ञान योग

राजयोग



भक्ति योग

कर्म
योग

योग विज्ञान के प्रकार

तारक
योग



मंत्रयोग

हठयोग

लययोग

इकाई 8

खण्ड – 3 योग विज्ञान के प्रकार

प्रश्न पत्र प्रथम ''योग विज्ञान का परिचयात्मक स्वरुप'' के अध्ययन हेतु खंण्ड 3 **''योग विज्ञान के प्रकार''** को दो इकाईयों में विभाजित किया गया है। इनमें (1) इकाई 7 **राजयोग** (कर्म, भक्ति, एवं ज्ञानयोग के संदर्भ में) तथा (2) इकाई 8 **हठयोग** (मंत्र लय एवं तारक योग के संदर्भ में) को सम्मिलित किया गया है।

खण्ड संरचना

3.0 प्रस्तावना 53

3.1 उद्देश्य 53

3.2 विषय प्रवेश 53

3.3 इकाई – 7 राजयोग (कर्म, भक्ति एवं ज्ञानयोग के संदर्भ में) 54

3.3.1 राजयोग का स्वरुप

3.3.2 कर्मयोग का स्वरुप

3.3.3 भक्ति योग का स्वरुप

3.3.4 ज्ञानयोग का स्वरुप

3.4 इकाई – 8 हठ्योग (मंत्र, लय एवं तारक योग के संदर्भ में) 69

3.4.1 हठयोग का स्वरुप

3.4.2 मंत्र योग का स्वरुप

3.4.3 लय योग का स्वरुप

3.4.4 तारक योग के संदर्भ में

3.5 सारांश 80

3.6 बोध प्रश्नों के उत्तर 81

3.7 उपयोगी संदर्भ गंथ 84

3.0 प्रस्तावना

प्रथम प्रश्न पत्र के अन्तर्गत इकाई – 7 एवं इकाई – 8 का अध्ययन इस तृतीय खंण्ड में किया जाना है। इसके पूर्व आपने प्रथम खण्ड में योग विज्ञान की संकल्पना एवं द्वितीय खण्ड में योग विज्ञान के सिद्धांतों का भलीभाँति अध्ययन कर लिया है।

इकाई 7 को पढ़ने के बाद आप सैद्धांतिक रुप में यह जान सकेंगे कि योग के कितने प्रकार है इसमें राजयोग का स्वरूप क्या है। राजयोग के अन्तर्गत ही कर्मयोग, भक्ति योग एवं ज्ञान योग का स्वरुप क्या हैं, यह जानकर आप योग साधना में अपने अनुरुप **योग साधना का प्रकार** चुन सकनें में सक्षम होंगे साथ ही योग के अन्य प्रकार उसमें किस प्रकार का समन्वय एवं सहायक होगे यह भी जानकारी प्राप्त हो सकेगी।

इकाई – 8 के पढ़ने के बाद आप यह जान सकेंगे कि हठ्योग का स्वरुप क्या है। हठ्योग के साथ ही साथ आप मंत्र योग, लययोग, एवं तारक योग का स्वरुप क्या है। यह जानकर आप योग साधना के व्यवहारिक पक्ष पर भी उत्तर सकने में सक्षम हो सकेंगे। तथा व्यवहारिक प्रयोग पर भी अपनी इच्छा एवं आवश्यकता के आधार पर व्यवहारिक साधना को मूर्त रुप में ला सकते है।

3.1 उद्देश्य

इकाई 7 में राजयोग (कर्म, भक्ति एवं ज्ञानयोग के संदर्भ)तथा इकाई 8 में हठ्योग (मंत्र, लय एवं तारक योग के संदर्भ में अध्ययन द्वारा निम्नलिखित बिन्दुओं को विस्तार से आत्मसात करवाना –

- योग के विविध प्रकारों का आशय एवं स्वरुप का ज्ञान प्राप्त करवाना।
- राजयोग का आशय एवं इसके अन्तर्गत कर्मयोग, भक्ति योग, एवं ज्ञान योग के स्वरुप का विस्तृत अध्ययन करवाना।
- हठ्योग का आशय एवं इसके अन्तर्गत मंत्रयोग, लययोग, एवं तारक योग के स्वरुप का विस्तृत अध्ययन करवाना
- इन दोनों इकाईयों में सभी प्रचलित महत्वपूर्ण योगों का समन्वय कर अन्य योगमार्गो का स्वयं आप में स्वयं समन्वयन कर सकने की योग्यता विकसित करवाना।
- योग साधना के मनोनुकूल मार्ग को चुनकर योग साधना के क्षेत्र में प्रवेश करने हेतु प्रेरित करवाना भी एक महत्वपूर्ण उद्देश्य है।
- इन दो इकाई के अध्ययन के माध्यम से आप में योग विज्ञान विषय के किसी भी क्षेत्र के साधकों के प्रश्नों के समाधान कर सकने की योग्यता अर्जित करवाना।

3.2 विषय प्रवेश

योग दर्शन के सैद्धांतिक विवेचन में हमने देखा कि योग दर्शन त्रिगुण के सिद्धांत को मान्यता देता है। त्रिगुण सिद्धांत के अनुसार संसार के समस्त व्यक्तियों का व्यक्तित्व भी इन्हीं तीनों गुणों (सात्विक– राजसिक एवं तामसिक) के अनुरुप होते है। तथा यह व्यक्तित्व इन गुणों की मात्रा देश, काल एवं अवस्था के अनुरुप विभिन्न स्वरुप में दिखाई देते है योग दर्शन का उद्देश्य जाति, धर्म, अवस्था आदि के भेद से दूर मनुष्य मात्र के कल्याण के लिए साधना मार्ग की प्रक्रिया का निर्देशन करना है। यह साधना मार्ग व्यक्ति के व्यक्तित्व तथा उसे प्राप्त परिस्थितियों के अनुरुप भिन्न भिन्न होना चाहिए। इसी कारण योग साधना पद्धति के विविध मार्ग विकसित हुऐ जिससे हरेक व्यक्ति अपने गुणों के अनुरुप योग मार्ग का चयन कर सकें।

जब हम योग शब्द का प्रयोग एक उपासना पद्धति के अर्थ में करते हैं तब यह प्रश्न निर्माण होता है कि क्या योग एक है कि अनेक ? क्या उसके जो विभिन्न प्रकार माने जाते है वे एक दूसरे से सर्वथा भिन्न या स्वतंत्र है ? इस प्रश्न का उत्तर यह है कि वास्तव में योग एक ही है, अनेक नहीं। अपितु उसका आरम्भ और अंतिम स्थिति सभी प्रकारों में एक समान ही है, इसके बावजूद भी व्यावहारिक साधना में तथा उपासना के प्रकारों में लोगों की प्रवृत्तियाँ भिन्न – भिन्न होने से कुछ विविधता अवश्य बन जाती है। उदाहरार्थ खाद्य पदार्थो के प्रकार अनेकानेक होने पर भी **''भूख लगना''** यही उन सबका ''आरम्भ'' होता है तथा **''भुख की शान्ति''** यही उन सब खाद्य पदार्थो के खाने का अंतिम लक्ष्य या उद्देश्य होता है। एक अन्य उदाहरण लें एक स्थान से दूसरे स्थान तक की यात्रा में पहुंचने के लिए अनेकानेक मार्ग होते हुए भी उन सबका आरम्भ स्थल और पहुंचने का इंगित लक्ष्य स्थल एक समाज ही रहता है किन्तु लक्ष्य स्थल तक पहुचनें के ''साधन एवं मार्ग'' तथा रितीयाँ अनेकानेक है।

इसी प्रकार हमारे योगियों ने जीवन के अन्तिम गन्तव्य स्थल या लक्ष्य को प्राप्त करने का मूल दुःख और अज्ञान के प्रारंभ बिन्दू से होकर इनके छुटकारे के लिये अन्तिम गन्तव्य स्थल के रुप में मोक्ष, कैवल्य निःश्रेयस, निर्वाण इत्यादि अनेक शब्दों से घोषित अन्तिम लक्ष्य को निर्धारित किया हैं इस लक्ष्य की प्राप्ति हेतु साधन एवं मार्ग अनेक है। भारतीय ज्ञान के सर्वोच्च साहित्य में वेद प्रमुख हैं वेद व्यावहारिक ज्ञान की दृष्टि से तीन काण्डों में विभक्त है

(1) कर्मकाण्ड (2) उपासना काण्ड (3) ज्ञान काण्ड

वेद के **कर्मकाण्ड** के अनुसार कर्म – सुकौशल को योग कहते है। वेदों के **उपासना काण्ड** के अनुसार चित्त वृत्तियों का निरोध को और वेद के **ज्ञानकाण्ड** के अनुसार जीवात्मा और परमात्मा के एकीकरण को योग कहते है।

3.3 इकाई 7 राजयोग (कर्म, भक्ति एवं ज्ञानयोग के संदर्भ में)

विभिन्न प्रकृति के लोग इस जगत् में रहते है। इनके दुःख निवारण के लिए तथा मुक्ति के लक्ष्य को प्राप्त करने के लिये विभिन्न धर्मों ने अपने अपने मार्ग बतलाये है। इन धर्मों के बीच **हिन्दू धर्म** ने सभी प्रवृतियों को ध्यान में रख एक आदर्श साधना विधान के द्वारा मुक्ति का संदेश प्रस्तुत किया है जिसके निम्नलिखित चार पद है –

1. राजयोग (The path of Concentration)
2. कर्मयोग (The path of Action)
3. भक्ति योग (The path of Devotion)
4. ज्ञान योग (The path of Real Knowledge)

3.3.1 राजयोग का स्वरुप (Nature of the path of Concentration)

श्री भगवान् ने उद्धवजी को तीन योगों का उपदेश दिया था। वे हैं **ज्ञानयोग, कर्मयोग और भक्तियोग।** अध्यात्म मार्ग में शीघ्र अग्रसर होने की इच्छा करने वाले व्यक्ति को अपने स्थूल, सूक्ष्म, कारण और महाकारण –इस देहचातुष्टय तथा मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार इस **अन्तःकरण** –चातुष्टय को शुद्ध करना परमावश्यक है।

स्मृति ग्रन्थों के अनुसार सृष्टि, स्थिति और लय का कारण अन्तः करण ही है। अन्तःकरण की सहायता से जिसका साधन किया जाता है, उसको राजयोग कहते है। अन्तः करण दृश्य है और आत्मा इस दृश्य का द्रष्टा है। दृश्य से दृष्टा का सम्बन्ध होने पर सृष्टि होती है। सृष्टि की उत्पत्ति का कारण चित वृत्तियों का चाचंल्य है। इस चित्त वृत्ति चांचल्य पर नियंत्रण प्राप्त करना ही स्व–स्वरुप का ज्ञान (प्रकाश) होना है और यही योगों का अन्तिम लक्ष्य होता है जिसे **राजयोग** कहा गया है।

राजयोग साधना :– राजयोग साधना में विचार बुद्धि (चिन्तन और मनन)का प्राधान्य होता है। विचारशक्ति की पूर्णता द्वारा राजयोग का साधन होता है। राजयोग के ध्यान को **''ब्रह्मध्यान''** कहते है। राजयोग के द्वारा सिद्धि प्राप्त साधक को **जीवनमुक्त** कहते है। जैसे मंत्रयोग की साधना से महाभाव समाधि होती है, **हठयोग** की साधना से **महाबोध समाधि** प्राप्त होती है, **लययोग** की साधना से **महालय समाधि** प्राप्त होती है, उसी प्रकार राजयोग की साधना से **जीवनमुक्त** की समाधि को **निर्विकल्प समाधि** कहते है। यह निर्विकल्प समाधि ही कैवल्य की प्राप्ति है। जैसे समाज में यह श्रेष्ठतम पद राजा का पद एक ही होता है उसी प्रकार विभिन्न योगों के अन्तिम लक्ष्यों के बीच साधना का चरम् लक्ष्य **''कैवल्य''** का पद प्राप्त करना अन्तिम लक्ष्य है। इस कारण इसे राजयोग कहते है। राजयोग सब योग साधनों में श्रेष्ठ है और साधन की चरम सीमा है। राजयोग के साधनों को शास्त्रों में विभिन्न अंगों में विभाजित किया गया है। ये अंगों सोलह प्रकार में विभक्त है।

राजयोग के अंग :– जैसे पूर्ण चन्द्रमा की सोलह कलाएँ होती है। उसी प्रकार योग की पूर्णता हेतु निम्नांकित सोलह अंग बताये गये है।

(1) ज्ञान की सात भूमिकाएँ

i) शुभेच्छा :– मोक्ष की इच्छा को शुभेच्छा कहते है।

ii) सुविचारणा :– गुरु के समीप श्रवण–मनन करने की अन्तःकरण की वृत्ति सुविचारणा कहलाती है। विवेक वैराग्य से अभ्यासपूर्वक सदाचार में प्रवृत रहना।

iii) तनुमानसा :– निदिध्यासन अर्थात ध्यान और उपासना के अभ्यास से मानसिक एकाग्रता को प्राप्त करने की योग्यता।

iv) सत्वापत्ति :– संशय विपर्यय रहित ब्रह्म और आत्मा के तादात्मय अर्थात उपरोक्त अनुभूति की अवस्था। यह सिद्धावस्था है।

v) असंसत्कि :– सविकल्प समाधि के अभ्यास के द्वारा मानसिक वृत्तियों के निरोध की निर्विकल्प समाधि की अवस्था।

vi) पदार्थभावनी :– गहन (प्रगाढ़) सुषुप्ति की स्थिति। नित्य समाधि की अवस्था।

vii) तुर्यगा :– केवल एक ही स्थिति ब्रह्मीभूत–स्थिति में ही सदा रमण करते रहने की अवस्था।
उपरोक्त ज्ञान की सात भूमिकाएँ विचार प्रधान है। इनके साधन भी अनेक प्रकार के है।

(2) धारणा :– यह भी दो प्रकार की होती है।

i) प्रकृति धारण

ii) ब्रह्म धारणा

(3) ध्यान :– ये तीन प्रकार के होते है।

i) विराट्ध्यान

ii) ईशाध्यान

iii) ब्रह्म ध्यान

(4) समाधि :– समाधि के दो प्रकार हैं।

i) सम्प्रज्ञात या सबीज :– इसके चार भेद है– वितर्कनुगम, विचारनुगम, आनन्दनुगम और अस्मितानुगम।

ii) असम्प्रज्ञात या र्निबीज :– इसके दो भेद है :– भवप्रत्यय, और उपायप्रत्यय।

राजयोग की प्राप्ति हेतु इन सोलह अंगों का साधन करना होता है। मन्त्रयोग, हठयोग और तारकयोग में सिद्धि

या किसी एक में सिद्धि प्राप्त होने के बाद साधक राजयोग में पूर्णाधिकार प्राप्त कर लेता है।

इस प्रकार राजयोग का अर्थ है समाधि। महर्षि पतंजलि के अष्टांगयोग का लक्ष्य भी समाधि है। इस कारण **अष्टांगयोग समाधि–अर्थयुक्त राजयोग** कहलाता है। महर्षि पतंजलि के योग के आठ अंगों में सभी अन्य योगों का अर्न्तभाव हो जाता है।

उदाहणार्थ :–

(1) राजयोग :– अष्टांगयोग का मुख्य लक्ष्य समाधि (राजयोग) की प्राप्ति ही है।

(2) कर्मयोग :– साधना के साधक अपने अन्दर साध्य के गुणों को धारण करता ही है। अतः इससे निष्कामकर्म

या अनासक्ति योग की शिक्षा स्वतः मिलती है।

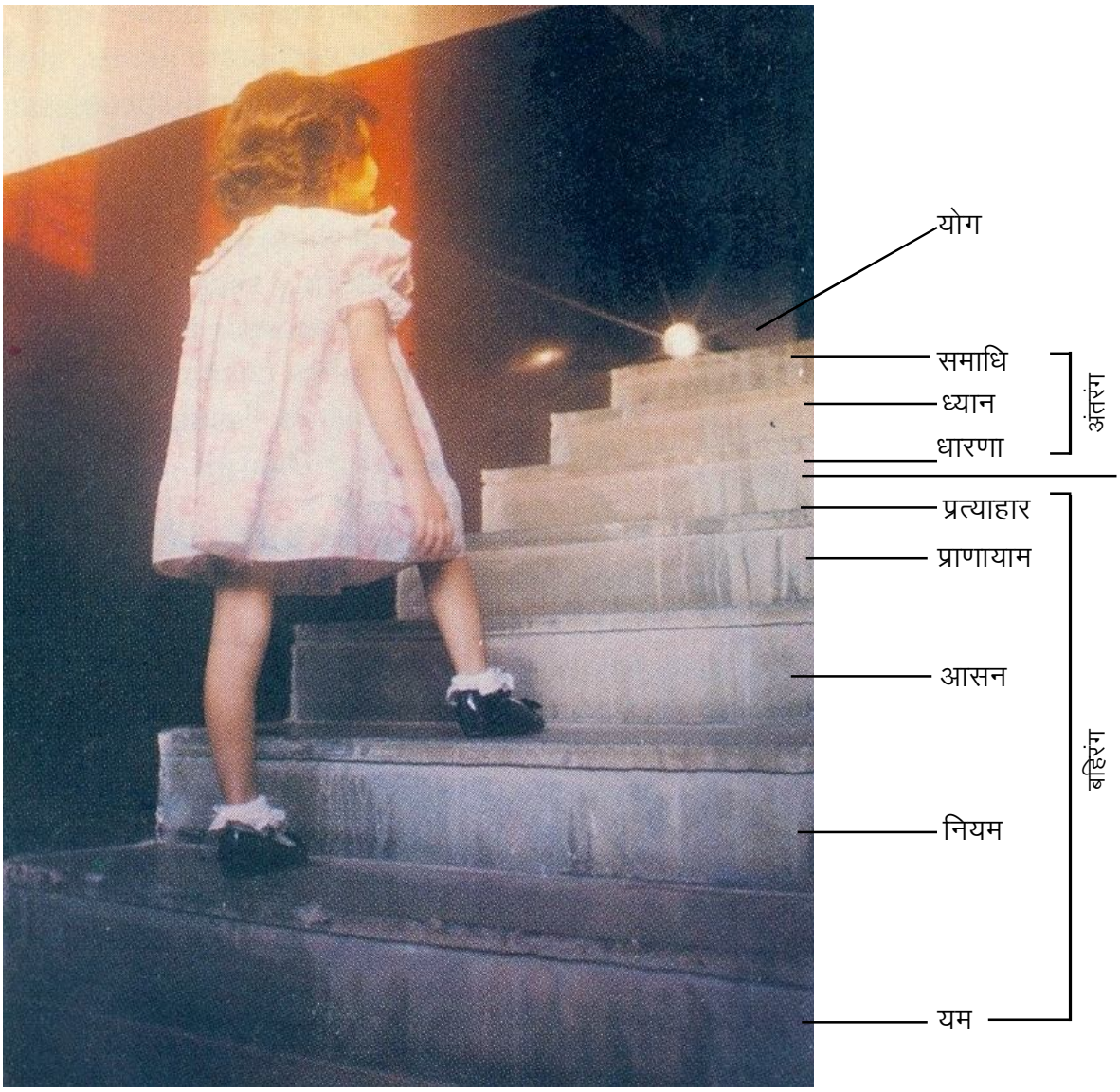
(3) भक्ति योग :– भक्ति का प्रमुख अंग है श्रद्धा। अतः ''श्रद्धावीर्य स्मृति समाधि ''तथा'' ईश्वप्रणिधानाद्वा'' सूत्र

भक्ति द्वारा योग प्राप्ति के निर्देशक है।

(4) ज्ञानयोग :– सम्मपूर्ण ज्ञेयतत्व का ज्ञान ही योग है। तथा योग सांख्य (ज्ञान) की अभिन्नता है अर्थात दोनों

एक ही आधार भूमि में प्रतिष्ठित है। यहि राजयोग का स्वरुप है।

राजयोग साधना का साधन क्रम



योग के अष्टांग पथ

मानवीय चेतना के अन्तःमुखी प्रवाह के नियंत्रण हेतु राजयोग अपने साधना क्रम में **धारणा** और **ध्यान** से प्रारंभ करता है। राजयोग की साधनभूमि प्रधानतः समाधिभूमि है ऐसा हमने ऊपर अध्ययन किया है। समाधि भूमि में पहले वितर्क रहते है और उसके बाद आगे विचार शुरु होता है। विचार की अन्तः भूमि आनन्दानुगत होती है। आनन्द ही मानवीय अस्तित्व या अस्मिता की शुद्ध अवस्था है। साधक को जब दृश्य के चार भेदों विशेष लिंग, अविशेषलिंग, लिंग, और अलिंग का ज्ञान होता है। तब वह विशेष लिंग (जड़ जगत) और अविशेषलिंग (प्रकृति) को त्यागने योग्य हो जाता है। इसके बाद लिंग मात्र **मैं ब्रह्म हूँ** की चेतना **सविकल्पक** होती है। इसे अविशेषलिंग या **निर्विकल्प समाधि** की स्थिति जिसे **तुरीय अवस्था** या **भावातीत अवस्था** कहते है इसका साधना क्रम शास्त्रों में वर्णित नहीं है। इस क्रम को जीवन्मुक्त गुरु या अपरोक्षनुभूति प्राप्त साधक द्वारा ही उपदेशित किया जा सकता है।

राजयोग के इस साधन क्रम का यदि मूल्यांकन या समालोचना की जाय तो यह सिद्धान्त प्राप्त होता है कि राजयोग के सोलह अंगों का क्रमशः पालन उसी प्रकार किया जाना चाहिये जैसे छत्त पर चढ़ने हेतु एक–एक सीढ़ी पर चढ़ना होता है, और छत्त पर पहुँचने के बाद सीढ़ी की आवश्यकता नहीं रह जाती है। साधक प्रकृति (सृष्टि) के स्वरूप को समझकर ब्रह्म, ईश या विराट्रूप में अद्वितीय बह्मसत्ता का साक्षात्कार (दर्शन) कर ध्यानभूमि की अनन्तम् गहराई (समाधि) में पहुँच जाता है और समाधि की दशाओं में प्रवेश करते हुये स्व–स्वरूप को प्राप्त कर जीवनमुक्त दशा रूपी समस्त योगों के ध्येय को प्राप्त कर लेता है। यही राजयोग की उपासना का अन्तिम पड़ाव है।

3.3.2 कर्मयोग का स्परूप (Nature of the path of Action)

साधना से साधक अपने अन्दर साध्य के गुणों को धारण करता है। ''साधना (कर्म) की प्रकृति एवं साध्य के अनुरूप प्राप्त परिणाम **कर्मयोग** कहलाता है।'' **कर्म का अर्थ** है शरीर से तथा मन से की जाने वाली क्रिया। क्रिया या कर्म के बिना किसी को भी एक क्षण के लिए भी रहना असंभव है। हम जो भी कर्म करते हैं उन सबके संस्कार मन में संचित होते जाते है। भारतीय दर्शनों की यह मान्यता है कि मन में हमेशा इस जन्म में तथा पूर्व जन्मों में किये हुए प्रत्येक कर्म के संस्कारों का एक प्रचंड समुदाय या संग्रह रहता है। इसको **कर्माशय** कहते हैं। प्रत्येक कर्म संस्कार का फल हमें कभी न कभी अवश्य मिलने वाला है, चाहे इसी जन्म में हो या आने वाले जन्मों में। अच्छे कर्म का अच्छा फल होगा, बुरे कर्म का फल दुःखदायक होगा। कर्मफल को **'कर्मविपाक'** कहा जाता है। कर्माशय से जीव संसार में बंध जाता है। जब तक सभी कर्मो के फल भोगकर समाप्त नहीं किये जाते तब तक संसार से मुक्ति नहीं हो सकती। कर्मयोग वह युक्ति या कुशलता है जो मनुष्य को कर्मबंधन से मुक्त करा देती है। यह **युक्ति है कर्मफल की इच्छा को छोड़ देना**। इसलिये उसको अनासक्त योग या **निष्काम कर्मयोग** कहते है। इसमें लाभ, हानि, सुख, दुःख, शीत, उष्ण आदि द्वन्दों के प्रति समान दृष्टिकोण रखा जाता है। इसलिए यह **समत्व बुद्धियोग** भी कहलाता है। कर्मफल की इच्छा को छोड़कर कर्म करते रहना, कर्त्तव्य को कभी नहीं छोड़ना, यह कर्मयोग का **सारांश** है। कर्मफल के प्रति आसक्ति को छोड़ने से कर्म के बंधनों से छुटकारा मिल सकता है। अर्थात् इच्छा और आसकित्त का त्याग करना तथा मन को स्थिर एवं शांत करना यही कर्मयोग का स्वरूप है।



कर्मयोगी अर्जुन

कर्म का स्परूप :– इस जगत् में अपनी–अपनी प्रकृति के अनुसार आचरण करने के लिए गीता में दो प्रकार की निष्ठाएँ बतायी गयी हैं। उनमें से **ज्ञानयोग** ज्ञानियों के लिए तथा **कर्मयोग** कर्मयोगियों के लिए है। **ज्ञान योग निवृत्ति** मार्ग तथा **कर्म योग प्रवृत्ति** मार्ग है।

कर्म योग अन्य योगों की अपेक्षा अधिक ग्राह्य है इसकी ग्राह्यता के निम्नलिखित कारण है –

1. निष्काम कर्मयोग प्रवृत्ति में **निवृत्ति** मार्ग की ओर इंगित करता है। यह ग्रहस्थ आश्रम का विशिष्ट योग है मनुष्य ग्रहस्थ आश्रम में रहकर अपने कर्त्तव्य कर्मों का पालन करते हुए तथा आश्रम का बिना त्याग किये हुए इस योग क माध्यम से परमतत्व की प्राप्ति में समर्थ हो सकता है। भगवान् ने गीता में सूर्य, मनु, इक्ष्वाकु तथा जनक आदि ग्रहस्थ राजर्षियों का नाम उद्धत करते हुए इंगित किय है कि कल्प के प्रारंभ में प्रवृत्ति मार्गियों ने इस विद्या को जानकर तथा इसके द्वारा निर्दिष्ट मार्ग पर आचरण करके सुगमतापूर्वक परमात्मतत्व की प्राप्ति की थी।
2. निष्काम कर्मयोग के आश्रय के बिना ज्ञानयोग भी सरलता से नहीं प्राप्त किया जा सकता। इसी उद्देश्य से श्रीमद्भागवत गीता 5वें अध्याय के 6वें श्लोक में **निष्काम कर्मयोग** के बिना ज्ञानयोग की प्राप्ति भी दुःखपूर्वक होनी बतायी गयी है।
3. कर्मयोग का आचरण अन्य योगों की अपेक्षा अत्यन्त सुगम तथा व्यावहारिक है। समस्त अवस्थाओं, जातियों, धर्मों एवं सम्प्रदायों में इस निष्काम कर्मयोग का आचरण निर्भयतापूर्वक किया जा सकता है। निष्काम भावना से किये जाने के कारण इसमें किसी प्रत्यवाय या विपरीत दण्ड का भी भय नहीं रहता। अतः यह सब प्रकार से उपयोगी तथा सुरक्षित योग है।
4. कर्म के विषय में अर्जुन के मोहित हो जाने से ही श्रीमदभगवत्गीता का उपदेश दिये जाने की आवश्यकता हुई थी। गीता वन में चले जाने को आतुर अर्जुन को स्वधर्म में रत रहने की प्रेरणा देकर कर्म की ओर ही प्रेरित करती है। यह संसार भी एक युद्ध है, जिसमें निष्काम कर्मयोग के माध्यम से कर्म करते हुए परम पद की प्राप्ति कराना ही गीता का मुख्य उद्देश्य है।
5. तत्वज्ञान की प्राप्ति के बाद उद्यपि ज्ञानयोगी को कर्म करना आवश्यक नहीं है फिर भी लोक संग्रह एवं लोकशिक्षा के लिए आदर्श स्थापन के लिए वह कर्मों में प्रवृत रहता है। इसी उद्देश्य की प्राप्ति के लिए गीता में स्वयं ब्रह्मा तथा भगवान के द्वारा कर्मों में प्रवृत रहने की वरीयता दी गई है।

कर्मों की कोटियाँ

निष्काम कर्मयोग में **कर्म** ही वह कार्यकारी उपादान है, जिसके माध्यम से योग रूपी भव्य भवन का निर्माण होता है। यद्यपि कर्मों की गति अत्यन्त गहन तथा कठिन है फिर भी गीता में विभिन्न सन्दर्भों के अनुरूप **कर्मों** को निम्नलिखित तालिका ''क्रमांक 01'' में निर्दिष्ट कोटियों में दर्शाया गया है

क्र.	प्रकार	प्रकार	प्रकार
1.	कर्म	अकर्म	विकर्म
2.	सात्विक राजस		तामस
3.	शारीरिक	मानसिक	वाचिक
4.	इष्ट	अनिष्ट	मिश्रित
5.	शुभ	अशुभ	शुभाशुभ
6.	संचित	प्रारब्ध	क्रियमाण

(तालिका क्रमांक – 01)

मानासिक भावना ही क्रियाओं के **कर्म, अकर्म तथा विकर्म** बनाने में मूल हेतु है। कर्म का स्परूप एक दीखने पर भी मानसिक भावना में अन्तर होने के कारण उनके स्वरूप तथा परिणामों में भी अन्तर आ जाता है। कोई भी क्रिया साधारण कामना रहने से कर्म, किसी को अनिष्ट पहुँचाने की भावना होने से विकर्म तथा कामनारहित होने से अकर्म या निष्कामकर्म बन जाता है।

कर्मयोग की परिभाषायें :–

1. मैत्रायष्युपनिषद (4/11) के अनुसार

मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयोः ।
बन्धाय विषयासत्कं मुक्त्यै निर्विषयं स्मृतम्।।

अर्थात् मनुष्य का मन ही बंधन का एवं मोक्ष दोनों का ही कारण है। विषयों में आसक्त होने से बंधन हो जाता है तथा विषयों में आसकत्त न होने पर मोक्ष हो जाता है ऐसा स्मृति कहतीं है।

2. श्रीमद्भगवद्गीता (5/11 एवं 18/15) के अनुसार

कायेन मनसा बुद्धया केवलैरिन्द्रियैरपि।
योगिनः कर्म कुर्वन्ति सगं त्यकत्तात्मशुद्धये।।
शरीरवाड.मनोभिर्यत्कर्म प्रारभते नरः।
न्याय्यं वा विपरीतं वा पच्चैते तस्य हेतवः।।

अर्थात शरीर, मन और इन्द्रियों द्वारा की जाने वाली प्रत्येक चेष्टा या व्यापार या हलचल का नाम कर्म है। इस परिभाषा में कर्म की परिधि इतनी अधिक व्यापक है कि देहधारियों के द्वारा किसी काल में संपूर्ण कर्मों का त्याग किया जाना संभव ही नहीं है।

3. निष्काम कर्मयोग के संदर्भ में गीता (2/50) के अनुसार

बुद्धियुत्को जहातीह उभे सुकृत दुष्कृते।
तस्माद्योगाय युज्यस्व योगः कर्मसु कौशलम्।।

जब देहधारी बिना कर्मों के रह ही नहीं सकता तब कर्म योग हेतु निष्काम कर्म की गीता में उपरोक्त परिभाषाओं द्वारा कर्मयोग को स्पष्ट किया गया है कि **समबुद्धि** युक्त पुरूष **पुण्य** और **पाप** दोनों को इसी लोक में त्याग देता है अर्थात् उनसे मुक्त हो जाता है अतः मनुष्य को समत्वरूप योग में लग जाना चहिये यह समत्वरूप योग ही कर्मों में कुशलता है अर्थात् कर्मबंधन से छूटने का उपाय है।

कर्मयोग की विशेषताएँ

कर्मों को करने में वह कौशल या युक्ति क्या होनी चाहिये, जिससे प्रवृत्तिमार्ग में रहते हुए निवृत्तिमार्ग का फल या परमतत्व की प्राप्ति हो जाय। अर्थात् कर्मों को भुने चने के समान अंकुरणरहित या बंधनमुक्त कैसे बनाया जाय ? इस हेतु कर्मयोग अपनी पद्धति से निम्नलिखित विशेषताओं को प्रस्तुत करता है –

1. केवल नियत कर्म का सिद्धांत

मीमांसा दर्शन में कर्म को दो प्रकारों में बाँटा गया है।

1. विहित कर्म और
2. निषिद्ध कर्म

वेदों एवं परिवर्तित शास्त्रों में विहित कर्म की निम्नलिखित चार प्रक्रियायें बतलाई गई है –

1. नित्य कर्म
2. नैमित्तिक कर्म
3. काम्य कर्म और
4. प्रायश्चित कर्म

निष्काम कर्मयोग में निषिद्धकर्म (चोरी, व्यभिचार, असत्य, कपट, हिंसा आदि) तथा काम्यकर्म (स्त्री, पुत्र, धन, यश आदि की प्राप्ति हेतु कर्म) सर्वथा त्याज्य है।

नित्य, नैमित्तिक एवं प्रायश्चित संबंधी समस्त विहित कर्मों को एक व्यक्ति द्वारा किया जाना संभव नहीं है। अपने वर्णाश्रम धर्म के अनुसार निर्धारित कर्म तथा यज्ञ, दान और तप को नियत कर्म, सहज कर्म या स्वाभाविक कर्म कहा गया है। इहलोक तथा परलोक के संपूर्ण भोगों की कामना का सर्वथा त्याग करते हुए श्रद्धा एवं उत्साहपूर्वक इन्हीं नियत कर्मों का किया जाना इस योग में आपेक्षित है।

2. फल की इच्छा का अभाव

इस योग में कर्त्तव्य कर्मों का किया जाना मानव का स्वाभाविक धर्म हैं, किन्तु उनमें फल–प्राप्ति की कामना कदापि नहीं होनी चाहिये। परिश्रम, श्रद्धा एवं निष्ठापूर्वक किये गये कर्म का फल तो अच्छा ही होगा। इसी भावना को दृष्टिगत रखते हुए निष्काम कर्मयोग के निम्नलिखित उपदेश गीता में किये गये है –

(i) कि तेरा कर्म करने में ही अधिकार है, उसके फलों में कभी नहीं इसलिए तू कर्मों के फल का हेतु कम हो तथा तेरी कर्म न करने में भी आसकित्त न हो।

(ii) जो व्यक्ति कर्मों में और उनके फल में आसत्कि का सर्वथा त्याग करके संसार के आश्रय से रहित हो गया है और परमात्मा में नित्य तृप्त है वह कर्मों में भली भाँति बरतता हुआ भी वास्तव में कुछ भी नहीं करता।

(iii) कर्मयोगी कर्मों के फल का त्याग करके भगवत्प्राप्ति रूप शांति को प्राप्त होता है और सकाम पुरूष कामना की प्रेरणा से फल में आसत्क होकर बँधता है।

(iv) और जो पुरूष कर्मफल का आश्रय न लेकर करने योग्य कर्म करता है, वह सन्यासी तथा योगी है, और केवल अग्नि का त्याग करने वाला सन्यासी नहीं है तथा केवल क्रियाओंका त्याग करने वाला योगी नहीं है।

3. आसक्ति का अभाव :–

विषयों का ध्यान करते हुए पुरूष के लिए आसक्ति ही वह प्रथम सीढ़ी है, जिस पर आरूढ़ होकर मानव पतनोन्मुख होकर नष्ट हो जाता है। श्रीमद्भगवतगीतामें उसके पतन का क्रम यह है कि प्रायः सामान्य व्यक्ति को **विषयों का चिन्तन** करते–करते उन विषयों में आसक्ति हो जाती हैं, जिससे उनकी कामना उत्पन्न होती है। **कामना** में विध्न पड़ने से **क्रोध** उत्पन्न होता है। क्रोध से **अविवेक** या मूढभाव उत्पन्न होता है, जिससे **स्मरण शक्ति भ्रमित** हो जाती है। स्मृति के भ्रमित होने से **बुद्धि का नाश** होता है तथा अन्ततः वह पुरूष अपने साधन से पतित होकर नष्ट हो जाता है।

4. समत्व बुद्धि

जिस प्रकार समुद्र में विभिन्न नदियों के जल प्रवेश करते हैं, लेकिन उसमें कोई विशेष हलचल उपस्थित नहीं होती, उसी प्रकार इस जगत् में रहते हुए निष्काम कर्मयोगी के मन में सिद्धि–असिद्धि, जय–पराजय, सुख–दुःख तथा लाभ–हानि आदि द्वन्दों में भी कोई विकार उत्पन्न नहीं होता। यही समत्व निष्काम कर्मयोग या समत्व नामक बुद्धियोग कहलाता है।

5. सर्वत्र समान व्यवहार

जिस प्रकार मनुष्य अपने शरीर के समस्त अंगों सिर, मुँह, मस्तिष्क, गुदा तथा उपस्थ के विभिन्न कर्मों को जानते हुए भी उनके सुख–दुःख में समान व्यवहार करता है, उसी प्रकार निष्काम कर्मयोगी भी समस्त प्राणियों में ब्रह्य–सत्ता का दर्शन करता हुआ उनसे यथोचित व्यवहार करता है तथा किसी से द्वेष नहीं करता।

6. काम्य संकल्पों का भी त्याग

कर्मयोग के साधक के लिए केवल काम्य कर्मों का ही नहीं, अपितु समस्त काम्य संकल्पों का भी परित्याग

कल्याणकारी है, क्योंकि जब बीजरूप संकल्प ही नहीं होगा तो काम्य कर्मरूप वृक्ष की भी उत्पत्ति नहीं होगी तथा परमतत्व की प्राप्ति में प्रारंभ से ही कोई व्यवधान भी नहीं होगा।

7. कर्मों का ईश्वरार्पण तथा शरणागति भाव

कर्मयोग की साधना में कर्मों को भगवान को ही अर्पण किया जाना अपेक्षित है। समस्त कर्म पूर्ण शरणागति तथा समर्पण भाव से करना चाहिये ताकि उन कर्मों को करने से किसी प्रकार का बंधन न हो।

साराशंतः **कर्मयोग** मानव की **शारीरिक, मानसिक** तथ **आध्यात्मिक प्रकृति** के सर्वथा अनुकूल है। इससे स्वार्थ तथा परमार्थ, व्यक्ति तथा समाज, इहलोक एवं परलोक सभी का कल्याण साधन होता है। वैयक्तिक कामना से रहित होकर विश्वात्मा की कामना से कर्म करना ही ईश्वर से तादात्म्य स्थापित करता है। कर्म योग के सभी प्रकारों को समझाने के बाद अन्त में भगवान श्री कृष्ण ने अर्जुन को **उपदेश दिया** कि वह **सभी धर्मों को छोड़कर केवल उनकी शरण में आ जावें**। वे स्वयं उसे समस्त पापों से मुक्त कर देगें। अतः **निष्काम कर्मयोग का भी प्रयोजन मानव का दैवी रूपान्तर** करके ईश्वर के कार्य का साधन बनाते हुए समग्र विश्व के वास्तविक कल्याण का मार्ग प्रशस्त करना है।

बोध प्रश्न :

टिप्पणी क : अपने उत्तर नीचे दिये गये स्थान में लिखें।

ख : इकाई के अंत में दिये गये उत्तरों से अपने उत्तर मिलाइए।

1. राजयोग के अंग बताइये ?

_____

_____

_____

_____

_____

_____

_____

_____

_____

2. गीता में कर्मों की कोटियाँ कौन–कौन सी बताई गई है लिखिये ?

_____

_____

_____

_____

_____

_____

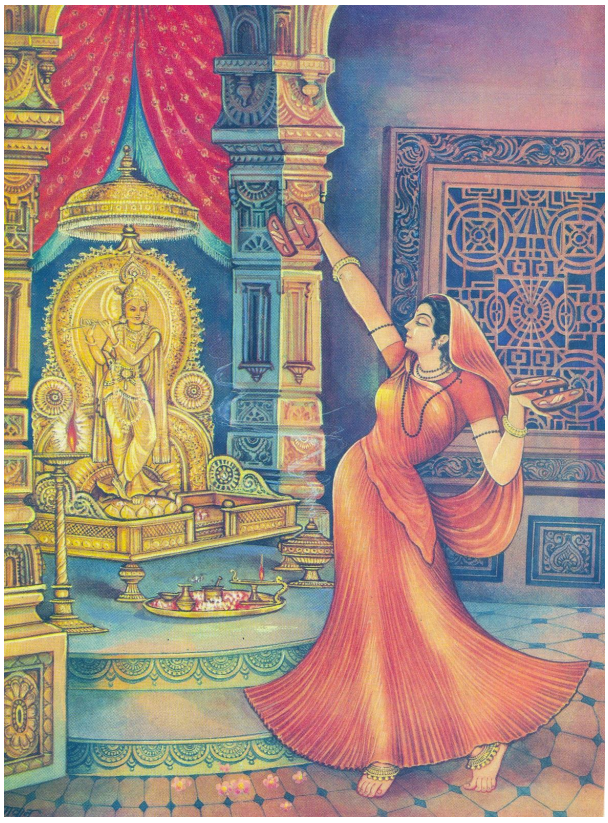
3.3.3 भक्ति योग का स्वरूप (Nature of the path of Devotion)

निष्काम कर्मयोग के विषय में जो इसके पूर्व में आपने अध्ययन किया है, उसी के अन्तर्गत ही भक्तियोग भी है। नामस्मरण, चिन्तन, धारणा, ध्यानरूप जो भक्ति है, वह भी एक मानसिक कर्म ही है। इस कारण भक्ति निष्काम कर्मयोग के अर्न्तरभूत है। जिस प्रकार निष्काम कर्म अन्तःकरण की स्थिरता का हेतु है। जब बाह्य करण शुद्ध एवं अन्तःकरण स्थिर हो जाता है। तब ब्रह्मात्मैक्य ज्ञान प्राप्त होता है। अतः साधक को **कर्मयोग** एवं **भक्ति योग** दोनों की साधना करनी चाहिये तब जाकर **ज्ञान योग** हो पाता है। भक्ति योग को अनन्य योग भी कहा जाता है।

गुरू द्वारा प्रस्तुत **''तत्वमसि''** महावाक्य का बिना कर्मयोग एवं भक्ति योग के साधन के ज्ञान युक्त (ज्ञान योग) नहीं किया जा सकता है। इस महावाक्य में **'तत्'** पद का अर्थ है ईश्वर और **'त्वं'** पद का अर्थ है जीव इन दोनों अर्थ के साथ **'असि'** पद से **ईश्वर** और **जीव** का जो एक्य ज्ञान है। वह ज्ञान व्यवहारिक हो जावें तो **ज्ञानयोग** हो जाता है।

अनुग्रह, प्रेम, भक्ति ये तीनों एक ही **स्नेह** के पर्याय है। वयोमान, गुण, योग्यतादि से किंचित न्यून रहने वाले सेवक, शिष्य, पुत्रादि पर जब इस स्नेह का भाव पहुँचता है तब उसे अनुग्रह के रूप में हम जानते है। यदि अपने समकक्ष, मित्रगणों, भार्यादि से स्नेहमय वार्तालाप अथवा पत्रव्यवहारादि किया जाता है तो यही स्नेह **प्रेमस्परूप** में प्रकट होता है और वह हम अपने से श्रेष्ठ माता, पिता, गुरू और देवादि के पास विनय, श्रद्धा, सदाचारादि अलंकारों से युक्त होकर जाते है तो यह स्नेह **राजर्षि प्रसाद**, **अम्बरीष** या **देवर्षि नारदादि** के समान हो जाता है। केवल इसी स्नेह के ऊपर समस्त विश्व का उदय और आनन्द निर्भर है। यदि यह स्नेह समस्त भूमण्डल में फैल जाये तो यही **भूलोक स्वर्गलोक** बन जायें। यही भक्ति योग का संकल्प है।

भक्ति योग का अर्थ



भक्ति (प्रेम) योगिनी मीरा

''भक्ति'' शब्द **'भज'** धातु से बना है, जिसका अर्थ होता है भजन करना या सेवा करना। इस प्रकार भक्ति या सेवा के द्वारा भगवान से संबंध स्थापित करने का नाम भक्ति येाग है। महर्षि नारद के अनुसार **'भग वान'** के प्रति उत्कृष्ट प्रेम ही भक्ति है। महर्षि शाण्डिल्य के अनुसार ''यह परमात्मा के प्रति सर्वोच्च अभिलाषा है।'' ईश्वर के प्रति तीव्र प्रेम होने पर भक्त भगवान के रंग में रंग जाता है। यह बात भगवान कृष्ण गीता में कहते है :–

नाहं व सामि बैकुण्ठे योगिनां हद्रये न च।
मद्भक्ता यत्र गायन्ति तत्र तिष्णामि नारद।।

अर्थात् मैं योगियों के हद्रय में नहीं रहता, न तो स्वर्ग में रहता हूँ। बल्कि मैं वहां निवास करता हूँ जहां मेरे भक्त मेरा गुणगान करते हैं।

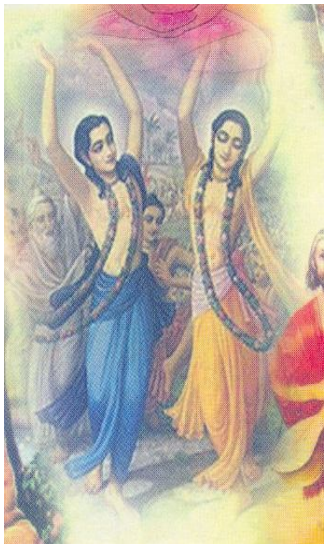
ईश्वर और भक्त जीव के **मिलन (योग)** के लिए उपाय स्वरूप गीता में भक्तियोग बतलाया गया है। भक्त द्वारा किया गया प्रत्येक कर्म ईश्वर के प्रति स्नेह या प्रेम के कारण किया जाता है इसी कारण भक्ति योग को **प्रेमयोग** भी कहा जाता है। भगवान श्री कृष्ण ने गीता में अर्जुन को शरणागति (भक्तियोग) का ज्ञान दिया है। श्री रामानुजाचार्य ने भक्ति योग की श्रेष्ठता स्थापित करते हुये बतलाया है कि गीता का **उपक्रम (प्रारंभ)** और **उपसंहार (समापन)** दोनों **शरणागति** (भक्तियोग) से है। भक्ति योग ज्ञान और कर्म से अनुप्राणित है। परम भक्त के लिए ज्ञान और निष्काम कर्म वस्तुतः एक ही है। क्योंकि तीनों का अर्थ है – निर्विकल्प, अपरोक्ष (अप्रत्यक्ष) **अनुभूति** भक्ति, ज्ञान और कर्म में अन्तर केवल लौकिक व्यवहार जगत् में ही है। क्योंकि अपनी परम अवस्था में वे सभी प्रत्यक्ष अनुभूति में परिणित हो जाते है। लौकिक ज्ञान बुद्धि विकल्प जन्य (त्रिगुणात्मक) है, और ज्ञाता इसके श्रेय के संबंध पर टिका हुआ है पर ज्ञान अद्वैत, निर्विकल्प अनुभूति है। भक्ति का अर्थ केवल भजन करना नहीं है अपितु अखण्ड ज्ञानानंद रूप भगवद् स्वरूप में भक्त और भगवान एकाकार हो जाते है। लौकिक कर्म में कामना बनी रहती है, जबकि निष्काम कर्म कामना रहित और कर्त्तापन के अभिमान से रहित होने के कारण जीवन मुक्ति की अद्वैत स्थिति का सूचक है।

भक्तियोग के साधन :– श्रीमद्भगवद्गीता में भक्ति योग के निम्नलिखित साधन बताये गये हैं –

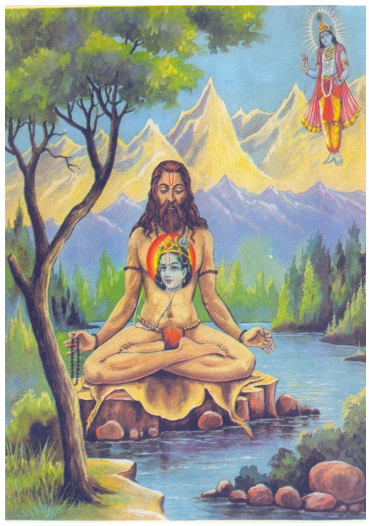
1. भगवान की प्राप्ति हेतु निरन्तर प्रयत्नशील रहना।
2. भगवान की अनन्य शरण में जाना।
3. भगवान का निरन्तर जप करना।



आत्मनिवेदन



कीर्तन



जप

भक्तों के प्रकार :– भक्ति योग के संबंध में भक्तों के चार प्रकार निम्नानुसार बतलाये गये हैं –

1. **अर्थार्थी** :– जो भक्त धन की कामना से भक्ति करता है, उसे अर्थार्थी भक्त कहा जाता है।
2. **आर्त्त** :– जो भक्त सांसारिक दुःखों से मुक्ति के लिए भगवान का भजन करता है, उसे आर्त्त भक्त कहा जाता है।
3. **जिज्ञासु** :– जो भक्त भक्ति के स्परूप को ही समझने के लिए भक्ति करता है, उसे जिज्ञासु भक्त कहा जाता है।
4. **ज्ञानीभक्त** :– जो भक्त अनन्य भाव से भगवान की प्राप्ति हेतु भक्ति करता है, उसे ज्ञानी कहा जाता है। भगवान कृष्ण ने ज्ञानी भक्त को ही सर्वोत्तम भक्त बताया है। भगवान श्री कृष्ण कहते है कि ज्ञानी मुझे अत्यन्त प्रिय है, ज्ञानी तो साक्षात् मेरा स्वरूप है।

भक्ति के प्रकार :– भक्त प्रहलाद ने भक्ति के नौ प्रकार बतलाये है। विधि से साधन होने वाली भक्ति को **''वैधी'' भक्ति** कहते है यह नौ प्रकार की है अतः इसे नवधा भक्ति भी कहते है। नवधा भक्ति को निम्नलिखित तालिका (क्रमांक 02) में स्पष्ट किया गया है।

क्र.	भक्ति का प्रकार	भक्तों के उदाहरण
1.	श्रवणम्	परीक्षित, गार्गि जनमेजय इत्यादि
2.	कीर्तनम	सनत्कुमार, नारद, शुक्राचार्य इत्यादि
3.	स्मरणम्	गजेन्द्र, अजामिल, गोपिका (काम), कंस (भय), शिशुपाल (द्वेष)
4.	पादसेवनम	हनुमानजी, बलि, विभीषण इत्यादि
5.	अर्चनम्	रूक्मणी (पत्रम्), द्रौपदी (पत्रम्), गजेन्द्र (पुष्पम्), शबरी (फलम्), बलि (तोयम्), इत्यादि
6.	वन्दनम्	राहूगण, नलकूबर, मणिग्रीव इत्यादि
7.	दास्यम्	लक्ष्मण, हनुमानजी, सात्यकि इत्यादि
8.	सख्यम्	अर्जुन, सुग्रीव इत्यादि
9.	आत्मनिवेदनम्	द्रौपदी, कुन्ती, उद्धव इत्यादि

(तालिका क्रमांक – 02)

भक्ति योग का उपदेश

भक्ति का अर्थ उपासना से लिया जाता है। उपासना का अर्थ है भगवान का निरंतर स्मरण करना। भगवान के निरंतर **नाम** एवं **जप** से भगवान प्रसन्न होकर अपने स्वरूप को प्रकाशित करते हैं। अखण्ड चित्त, आनंद की प्रत्यक्ष अनुभूति में भक्त का भगवान से एकाकार हो जाता है। इस प्रकार भक्त एवं परमात्मा में कोई भेद नहीं रह जाता है।

ज्ञानी को भगवान ने अनन्य भक्त (परमभक्त) और आत्म स्परूप (आत्मैव) बताया है। जो भक्त अनन्य भक्ति से भगवान का निरतंर चिंतन करते हुए मेरी उपासना करते हैं। उनकी भगवान प्राप्ति (योग) और उसकी क्षेम (साधना) की भगवान रक्षा करने का संकल्प लेते है। अनन्य भक्ति से ईश्वर का तात्विक ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है। ईश्वर का प्रत्यक्ष दर्शन किया जा सकता है और ईश्वर से एकाकार किया जा सकता है। गीता में भगवान भक्त को कहते मेरी सत्य प्रतिज्ञा है जो सब धर्मों (कर्मों) को छोड़कर मेरी शरण आ जाता है उसके सब पापों को दूरकर उसे

''मोक्ष'' प्रदान करूंगा। इस अर्थ में मनुष्य का परम पुरूषार्थ ईश्वर की अनन्य भक्ति है तथा भक्ति योग सभी योगों में श्रेष्ठ एवं सरल मार्ग है।

3.3.4 ज्ञानयोग का स्परूप (Nature of the path of Real Knowledge)

भौतिक पदार्थों एवं उनके कार्य व्यापारों को जान लेना अर्थात् सांसारिक ज्ञान और विज्ञान ज्ञानयोग नहीं है। बल्कि तीनों गुणों (मूल प्रकृति) और उनसे उत्पन्न हुए सारे पदार्थों से परे अर्थात् स्थूल–सूक्ष्म और कारण–शरीर तथा स्थूल, सूक्ष्म और कारण जगत् अथवा अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय और आनन्दमय कोष अथवा शरीर, इन्द्रियों, मन अहंकार और चित्त से परे गुणातीत शुद्ध परमात्मतत्व को जिसके द्वारा इन सब में ज्ञान, नियम और व्यवस्थापूर्वक क्रिया हो रही है, संशय, विपर्ययरहित पूर्णरूप से जान लेना ज्ञानयोग है। यह ज्ञान केवल ग्रंथों के पढ़ने या शब्दों के सुन लेने मात्र से ही नहीं प्राप्त हो जाता है बल्कि इसके लिए उपासना योग की आवश्यकता होती है। सम्यक् रूप से कर्मयोग एवं भक्ति योग की परिणिति ज्ञानयोग में होती है।

ज्ञानयोग या बुद्धियोग धर्म की स्पष्ट एवं सरल व्याख्या करता हैं, जो अन्ततोगत्वा बुद्धि को प्रेरणात्मक तीव्र संवेग के रूप में परिणत कर देता है। ज्ञानयोग का लक्ष्य अपने वास्तविक सत्य स्वरूप को समझने में पूर्ण सहयोग प्रदान करता है। वास्तविक स्वरूप क्या है ? तथा वास्तविक संसार क्या है ? ईश्वर क्या है ? और दैवी शक्ति या देव–तत्व क्या है ? ये सब योग के दार्शनिक पहलू हैं। ज्ञानयोग साधक को इतना बुद्धिमान, कृपालु, नम्र और सावध ाान बनाता है, जिससे इस प्रपंचात्मक जगत् की विपरीत स्थितियों में साधक घबड़ाते नहीं और न ही दुविधा पूर्ण स्थिति में किंकर्तव्य विमूढ़ ही होते है।

इस जगत का प्रत्येक अणु–सजीव या निर्जीव प्रतिक्षण उत्तरोत्तर शुद्ध होकर विकास मार्ग में गतिशील हो रहा है। इसी के अनुसार मानव प्राणी के भीतर भी अन्तिम सर्वोत्कृष्ट स्थिति, मुक्ति स्थिति प्राप्त करने की अभिलाषा ज्ञात या अज्ञात भाव से रहती ही है। भगवती श्रुति कहती हैं।

ऋते ज्ञानान्न मुक्तिः

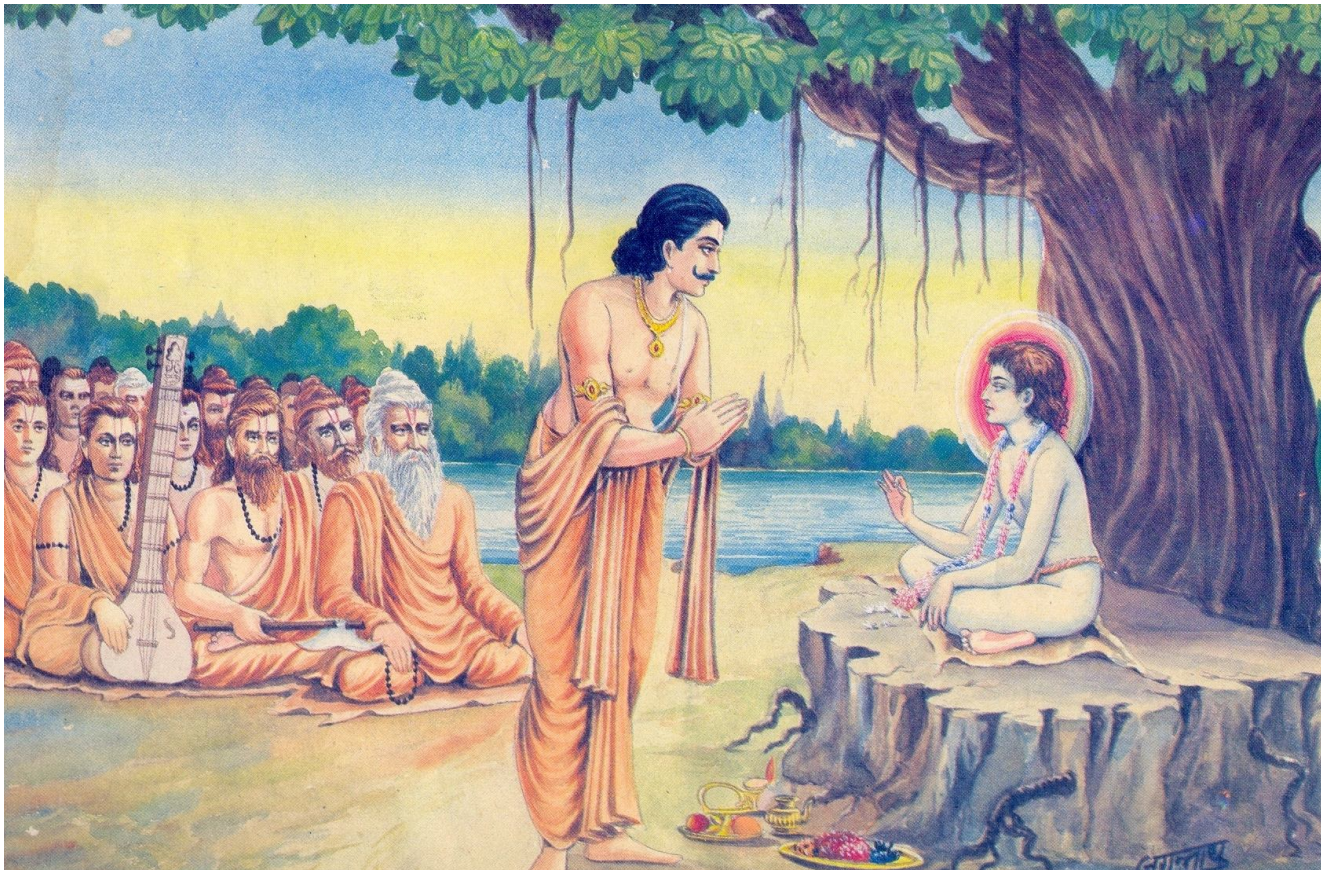
इससे यह सिद्ध है कि ज्ञान प्राप्त हुए बिना मोक्षाभिलाषी की मुक्त होने की आशा निरर्थक है। वह ज्ञान क्या है, यह जानना चहिये। इस जगत् में दिखनेवाली प्रत्येक लौकिक विद्या दुःखों की आत्यान्तिक निवृति और सुख की परावधि की प्राप्ति करवाने में सर्वथा असमर्थ है। यह बात बुद्धिमानों के लिए सुस्पष्ट है। तब वह ऐसी कौन सी विद्या है जिसके द्वारा मनुष्य **कर्त्तव्य, ज्ञातव्य** और **प्राप्तव्य** की **परमोत्तम सिद्धि** को साधकर कृतकृत्य हो सकता है ? इस विश्व में अविष्कृत तथा अन्वेषित समस्त विद्याओं में केवल **ब्रह्मविद्या (ज्ञानयोग)** ही सर्वोपरि है और उसी की सहायता से मनुष्य मनुष्यत्व से देवत्व और देवत्व से ईशत्व में प्रवेश कर सकता है।

ज्ञान योग ईश्वर से संबंध स्थापित करने का आध्यत्मिक मार्ग है। ज्ञानमार्ग के द्वारा भी जीव और शिव का, आत्मा और परमात्मा का संबंध हो सकता है। यह संबंध परमात्मा से तादात्म्य या एकीकरण है। ज्ञान योगी आत्म रूप को परमात्मा का स्परूप समझता है, वह परमात्मा से अभिन्न है। ज्ञानयोगी के लिए जगत् ईश्वरमय है, ईश्वर ही है, सृष्टि और सृष्टा में कोई भेद नहीं। जगत् परमात्मा का ही स्वरूप है। परमात्मा से भिन्न किसी भी वस्तु की सत्ता नहीं। भेद मिथ्यादृष्टि है, अभेद यथार्थदृष्टि है। भेद देखने वाला अज्ञानी और अभेद देखने वाला ज्ञानी है। गीता को अनेक विद्वान ज्ञानयोग का मुख्य ग्रंथ मानते है। **आदिशंकराचार्य** ने **गीता** को **ज्ञानयोग** का ग्रंथ माना है तथा गीता की निवृति मूलक व्याख्या की है। उनके अनुसार निवृतिमार्ग ही यथार्थ मार्ग है। निवृति मार्ग का दूसरा नाम **''कर्मसन्यास''** है। तात्पर्य यह है कि निवृत्तिमूलक ज्ञानमार्ग के द्वारा कर्म का त्याग ही आदर्श माना गया है। अपने सभी कार्यों, इच्छाओं और अपने आपको परमात्मा में मिला देना ही ज्ञानयोग है।

ज्ञानयोग की विशेषताएँ – ज्ञानयोग की निम्नांकित विशेषताएँ है

1. यह संपूर्ण दृश्यमान जगत् परमात्मा का स्परूप है, परमात्मा से भिन्न कुछ भी नहीं है।
2. दृश्यमान जगत् मिथ्या है। यह कार्य है–विकार है। इस कारण ब्रम्ह ही सत् है।

3. इस मिथ्या जगत् में ज्ञानी के लिए कोई भी कार्य नहीं। ब्रम्ह ज्ञान में सभी कार्यों का पर्यवसान है। **ब्रह्मज्ञानी** को कुछ पाना नहीं रहता। अतः वह कोई कार्य नहीं करता है।



श्री शकुदेवमुनि जी द्वारा ज्ञान योग की शिक्षा

ज्ञान योग में समत्व का स्परूप :– ज्ञानयोग की सबसे बड़ी **विशेषता समत्वयोग** है। श्री कृष्ण ने इस **समत्व** को अनेक स्थान पर उपदेशित किया है। समत्व योग के तीन स्वरूप निम्नांकित है

1. आत्मगत समत्व :– आत्मगत समत्व का गीता में स्वरूप **''स्थित प्रज्ञ''** के रूप में है। स्थित प्रज्ञ गीता का अपना पारिभाषिक शब्द है। यह वेदों उपनिषदों में प्रयुक्त नहीं हुआ है। स्थितप्रक्ष का अर्थ है जिसकी बुद्धि स्थिर हो गयी है। स्थितप्रज्ञ के तीन लक्षण गीता में बतलाये गये हैं।

(i) वह मन की सभी कामनाओं और वासनाओं को सब प्रकार से छोड़ देता है।

(ii) वह सदैव परमात्म चिंतन में ही डूबा रहता है।

(iii) वह न तो दुःखों से उद्विग्न होता और न ही सुख की लालसा करता है। ऐसा समत्व बुद्धि सम्पन्न ही कर सकने में सक्षम है सामान्य व्यक्ति नहीं।

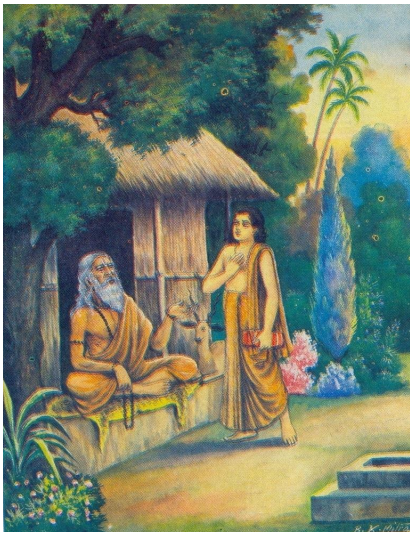
2. वस्तुगत समत्व :– वस्तुगत समत्व से आशय अच्छे–बुरे, मित्र–शत्रु में समभाव रखना ही वस्तुगत समत्व है जिसकी दृष्टि में समता है, उसका कोई शत्रु नहीं है। सम्पूर्ण पृथ्वी उसका परिवार है। वह तृष्णा क्रोधादि से मुक्त होता है।

3. गुणातीत समत्व :– यह सुख–दुःख के परे की अवस्था है। भगवान ने स्वयं कहा है जो सुख–दुःख में एक सा रहता है वही **धीर** है। शीत और उष्ण जिसे विचलित नहीं करते, वही **अमरत्व** का अधिकारी है।

इसी आशय से अर्जुन को सुख–दुःख, लाभ–हानि, जय–पराजय, को समान समझकर युद्ध करने हेतु प्रेरित करते है। सच्चा ज्ञान योगी उपलब्धि और अनुपलब्धि में समभाव रहता है। उसके लिए मृत्तिका और सोना, अनुकूल और प्रतिकूल, निन्दा और स्तुति, मान और अपमान सब समान होते है यही **''गुणातीत समत्व''** है।

ज्ञानयोग का उपदेश :–

1. संसार को असार तथा आत्मा को परमात्मा का अंश समझना ज्ञानयोग है।
2. यह दृश्य जगत् माया है, मृगतृष्णा है, स्वप्न की सृष्टि है। यथार्थ में सच्चिदानन्द ब्रह्म के अतिरिक्त कुछ भी नहीं है, जो कुछ है वह ब्रह्म ही है।
3. ब्रह्म एक ही है, शुद्ध ज्ञान स्वरूप है, संसार का नानात्व मिथ्या है। एक तत्व ही सत् है। ब्रह्म ही आत्मा है या आत्मा ही ब्रह्म है (तत्वमसि)।
4. संसार में सब कुछ आत्म रूप है, ब्रह्मस्वरूप है। यह एकतत्व दर्शन ही ज्ञानयोग का स्वरूप है। जो योगी यह ज्ञान प्राप्त कर लेता है उसे **योग युक्तत्मा** या **ब्रह्मयोग युक्तात्मा** कहते है।
5. ज्ञान योगी **''समदर्शी''** होता है। ज्ञान योगी का विषय भाव नष्ट हो जाता है तथा वह भूतों को परमात्मा में तथा परमात्मा का भूतों में विस्तार देखता है।



गुरू द्वारा परम ज्ञान तत्वमसि की शिक्षा

ज्ञानयोग के भेद – गीता के अनुसार ज्ञान योग के तीन प्रमुख स्वरूप है –

1. **ब्रह्ममयी दृष्टि** :– सारी सृष्टि ब्रह्ममय है, चराचर जगत का प्रत्येक पदार्थ परमात्मा स्वरूप है। समस्त चराचर भूतों के बाहर भीतर एकमात्र परमात्मा ही है। ऐसा ज्ञान होना **ज्ञानयोग** है।
2. **मायात्मक जगत** :– जो कुछ दृश्यमान है वह माया है, क्षणिक है, विनाशी है। यर्थाथ में केवल एकमात्र ब्रह्म की ही सत्ता है। इस प्रकार के भाव से परमात्मा में तद्रूप हो जाना ही एकीभाव की स्थिति है तथा यही **ज्ञानयोग** है।
3. **प्रतीयमान विश्व ब्रह्म** :– प्रतीयमान विश्व ब्रह्म है। ब्रह्म ही आत्मा है। अतः संपूर्ण विश्व आत्मरूप है। चराचर सब ब्रह्म है और वह ब्रह्म मैं हूँ इसलिए सब मेरा ही स्वरूप है। इस भाव के उदय होने से मनुष्य आत्मद्रष्टा हो जाता है। वह आत्मा में ही ब्रह्म के प्रकाश पुन्ज का अनुभव करता है। ऐसा योगी ज्ञानयोगी होता है।

सारांश रूप में **राजयोग कर्मयोग, भक्तियोग** एवं **ज्ञानयोग** के संदर्भ में प्रमुख प्रयोजन अन्तिमलक्ष्य को लेकर है। राजयोग का जहाँ अन्तिम लक्ष्य समाधि अर्थात स्वरूप स्थिति में प्रतिष्ठा है तो वही कर्मयोग की साधना के द्वारा साध्य के सायुज्य हो जाता है। वह भक्ति योग में भक्त का लक्ष्य अन्तिम तत्व में अपना समर्पण करना है तो ज्ञान योग का लक्ष्य समस्त दृश्य जगत् का तात्विक अध्ययन कर गुणों से परे निर्विकार गुणातीत तत्व का ज्ञान प्राप्त करना है। इस प्रकार राजयोग जिसे **अष्टांग योग** के साधनों द्वारा प्राप्त किया जा सकता है अन्य तीनों योग **कर्म, भक्ति** और **ज्ञान** भी अर्न्तभूत ही है। महर्षि पंतजलि ने इन तीनों योगों को व्यवहारिक दार्शनिक पृष्ठभूमि देकर एक व्यवस्थित क्रम में साधना की प्रक्रिया वर्तमान युग के अनुरूप प्रस्तुत कर दी थी। इस प्रकार राजयोग में कर्म भक्ति एवं ज्ञान तीनों का सम्यक् समन्वयन परिलक्षित होता है।

बोध प्रश्न :

टिप्पणी क : अपने उत्तर नीचे दिये गये स्थान में लिखें।

ख : इकाई के अंत में दिये गये उत्तरों से अपने उत्तर मिलाइए।

3. भक्तों के प्रकार कौन–कौन से है बताइयें ?

4. ज्ञानयोग की विशेषताएँ लिखिये ?

3.4 हठयोग (मंत्र, लय एवं तारक योग के संदर्भ में)

3.4.1 हठयोग

हमने पूर्व इकाई में देखा योगों में राजयोग का अधिकार सबसे बढ़कर है। **मन की क्रिया** मनुष्य को बंधन ग्रस्त करती है और **बुद्धि की क्रिया** मनुष्य को **मुक्त** करने में सहायक होती है, यही कारण है कि अज्ञान से जीव **बंधन** को प्राप्त होता है और ज्ञान से **मुक्त** होता है। अतः बुद्धिक्रिया रूपी विचार द्वारा **चित्त वृत्ति निरोध** की जो शैली है उसको हमने **राजयोग** के अन्तर्गत अध्ययन किया साथ ही राजयोग के संदर्भ में ज्ञान, भक्ति एवं कर्मयोग का भी सन्दर्भिक अध्ययन किया।

हठयोग की पद्धति कुछ अलग प्रकार की है। **स्थूल शरीर सूक्ष्म शरीर** का ही परिणाम है इस कारण स्थूल शरीर का प्रभाव सूक्ष्म शरीर पर बराबर समानरूप से पड़ता है। अतः स्थूल शरीर के अवलम्बन से सूक्ष्म शरीर पर प्रभाव डालकर चित्त वृत्तिनिरोध करने की जितनी शैलियाँ है उन सबको हठयोग के अर्न्तभूत ही समझना चाहिये। इस संदर्भ में इस खण्ड में हम इकाई 8 के अर्न्तगत हठयोग का अध्ययन मंत्रयोग, लययोग एवं तारकयोग के विशेष संदर्भ में करेगें।

हठयोग का स्वरूप –

यह योग का सर्वाधिक प्रचलित एवं लोकप्रिय प्रकार हो चला है। यह येाग का सबसे अर्वाचीन (नया) प्रकार है। इसकी परम्परा तो प्राचीन है, किन्तु विकसित स्वरूप और प्रचार की दृष्टि से इसका प्रभाव पन्द्रहवीं शताब्दी के पूर्व कम था। हठयोग का मुख्य सिद्धान्त है **''ह''** और **''ठ''** का योग करना ''ह'' का अर्थ है नाभि के पास स्थिति **सूर्य** ''ठ'' का अर्थ है तालूमूल में स्थित **चन्द्रमा**। सूर्यनाड़ी अर्थात् (दाहिनी नासिका) तथा चन्द्रनाड़ी अर्थात् (बाँयी नासिका) की समानता यह भी हठयोग शब्द का अर्थ बनता है। इस ''ह'' और ''ठ'' से प्रवाहित प्राण जब समान होकर ''सुषुम्ना'' नाड़ी या मध्यनाड़ी में से संचारित होने लगते है तो इस स्थिति को ''हठयोग'' कहते है।

हठयोग की सैद्धान्तिक पृष्ठभूमि का मूल आधार दो मूल तथ्यों पर आश्रित है –

1. शरीर और मन दोनों एक दूसरे को प्रभावित करते है, तथा
2. प्राण और मन ये दोनों परस्पराश्रित हैं।

इन दो आधार भूत तथ्यों का हठयोग में अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है। हम द्वितीय प्रश्न पत्र हठयोग विज्ञान में हठयोग प्रदीपिका के परिचय में आगे अध्ययन करेगें कि हठयोग धारा के प्रमुख योगाचार्य ''स्वात्माराम'' ने अपनी हठयोग प्रदीपिका नामक रचना में शुरू में ही स्पष्ट करते हुए बतलाया है कि हठयोग तो योग के प्रमुख प्रकार राजयोग की प्राप्ति में एक सीढ़ी के समान सहायक है जो योगों के अन्तिम लक्ष्य तक साधक को आसानी से प्रवेश करवाता है।

हठयोग के विशेष संदर्भ में **मंत्र योग एवं लययोग** को एक साथ रखकर देखे तो हमें प्राप्त होता है कि **''मंत्रयोग''** का प्रमुख आधारभूत सिद्धांत यह है कि यह समस्त दृश्य जगत् (विश्व) **स्पंदनों** से बना है। इन स्पंदनों को **मंत्रों के जप** से प्रभावित करके मनुष्य इच्छानुसार कुछ भी कर सकने में समर्थवान हो सकता है। मंत्रों में प्रमुखता से गायत्री मंत्र, प्रणव–जप, हंस–जप, आदि प्रमुखता से जानें जाते है।

लययोग अपना पृथक साधना परख अस्तित्व रखता है। जीव शरीर रूपी पिण्ड और समष्टिरूपी ब्रह्मण्ड ये दोनों समष्टि – व्याष्टि संबंध से एक ही हैं। अतः दोनों को एक समझकर अपने भीतर जो प्रकृति शक्ति है उसे अपने शरीरस्थ पुरूषभाव में लय करने की जो शैली है और उसके सहायक जितनी साधना प्रक्रियाये है, उनको **लययोग** कहते है।

तारक योग योग के विषय गूढ़ तथा व्यापक हैं। इस योग में अन्य योगों की भाँति क्रिया–प्रक्रियायें नहीं है। इसमें योग का साधक एक ऐसा दीपवत् होता है, जिसमें दीपक के समान सभी सामर्थ्य विद्यमान होता है केवल लौ लगाने की देर रहती है। जैसे एक दीपक दूसरे को प्रकाशित कर अपने समान प्रकाशवान् करते चले जाता है तथा उसका कुछ भी प्रकाश कम नहीं होता है। उसी प्रकार **तारक योग** का मुख्य साधन **'प्रेम'** है। इसे **पराब्रह्मविद्या** भी कहा जाता है। इसके उत्पन्न होने से साधक निर्भय पद पर आसीन हो जाता है तथा तत्क्षण ब्रम्हीभावना में युक्त हो जाता है।

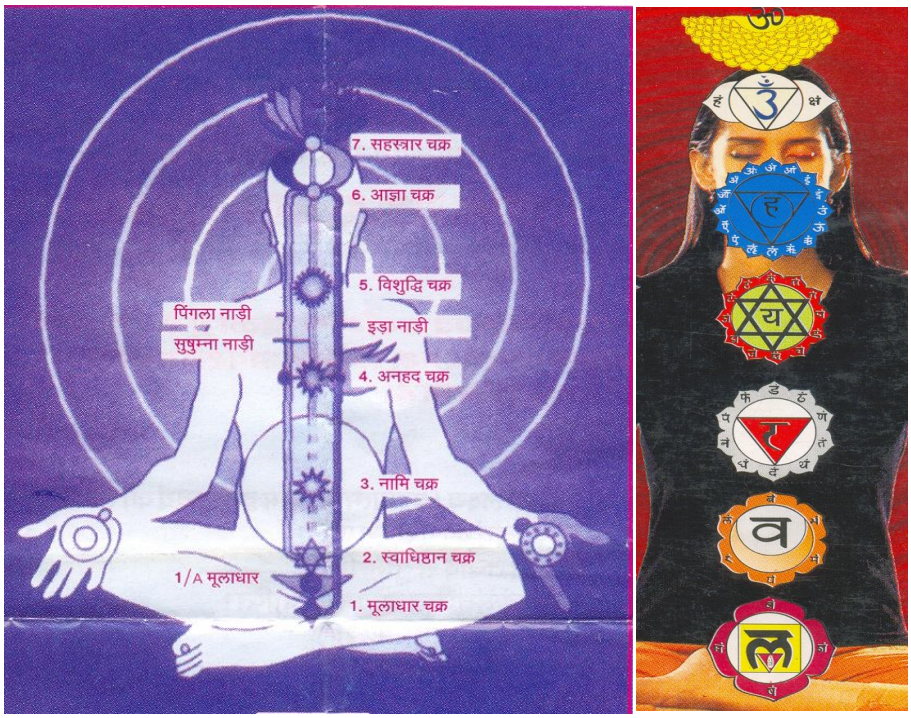
उपरोक्त तीनों योग **मंत्रयोग, लययोग** एवं **तारक योग** में साधक की चेतना सुषुम्ना में प्रवाहित होती है। इस कारण ये तीनों योग हठ्योग के विशेष संदर्भ में अध्ययन किये जावेगें।

हठयोग की सैद्धांतिक पृष्ठभूमि

हठयोग का संबंध मुख्यतया शरीर और प्राण से है। हठयोग प्राणसाधना की विद्या है। इस प्राणसाधना का अंतिम लक्ष्य राजयोग की सिद्धि प्राप्त करना है। ऐसा स्वात्माराम भी हठयोग प्रदीपिका में मत रखते है।

''केवलं राजयोगाय हठविद्योपदिश्यते''

महर्षि पंतजलि ने अपने योगानुशासन के धरातल पर चित्तवृत्तियों का निरोध करने हेतु मन और प्राण के संगम को साधने का उपदेश किया है। यह संयम करना ही हठयोग है, ''**ह**'' **प्राण** का वाचक है, तथा **''ठ'' अपान** का वाचक है। प्राण और अपान का नाभिस्थान में आकर्षण कर उनका उर्ध्वमुखीकरण ही प्राण और मन का संयम है, प्राण और मन के संयमित होने पर चित्तवृति–निरोध रूप योग ही योगी की समाधि अवस्था में राजयोग की सिद्धि करता है। अतएव स्पष्ट है कि मन और प्राण के संयम से ही स्वरूपावस्था की उपलब्धि होती है।



ह और **ठ** के मेल की विभिन्न प्रक्रियायें

हठयोग से शरीर समस्त व्याधियों से दूर होकर मन की निर्मल अवस्था को प्राप्त करता है। हद्रय की गति संतुलित होती है, चित्त की चंचलता का क्षय होता है और इस तरह साधक स्वस्थ होकर अपनी योगसाधना में तत्पर रहता है। साधनारत् योगी धीरे–धीरे इतना समर्थशाली हो जाता है कि वह जीवन्मुक्ति का आस्वादन करते हुए मृत्यु को टाल देता है, इस स्थिति को योग शब्दावली में **''कालवचन'** कहा जाता है। किन्तु मृत्यु को टालना मृत्यु को रोकना नहीं है, योगी **प्राकृतिक विधान** का उल्लंघन कर मृत्यु को रोकने का प्रयास नहीं करता, वह इसे जीवन की असंगति मानता है। मृत्यु को टालना एक दूसरी अस्थायी प्रक्रिया है। हठयोग की साधना प्रक्रिया परम्परा से प्राप्त होती आयी है, **आदिनाथ** शंकर द्वारा **माँ पार्वती** को उपदिष्ट योगज्ञानामृत की परम्परा **मत्स्येन्द्रनाथ,** से क्रमशः **गोरखनाथ** आदि की श्रृंखला में प्रज्जवलित होती आ रही है। श्रुति स्मृति आगम तथा तन्त्रादि में वर्णित योगविद्या यही **स्वसंवेद्य हठयोग पद्धति** है। अपरोक्षानुभूति ग्रंथ में **आचार्य शंकर** ने कहा है कि हठयोग उनके लिए है जिन्हें अपने शरीर और मन को मलदोषों से मुक्त और निर्मल करने की आवश्यकता है। **मनोनाश** के लिए दो **क्रम योग** और **ज्ञान** है। योग से **वृति निरोध** और ज्ञान से **वास्तविक स्वरूप** का दर्शन होता है। किसी के लिए योग असाध्य है तो किसी के लिए ज्ञान असाध्य है। हठयोग इन दोनों की सहायता करता है। **योग** और **ज्ञान** को **हठयोग** और **राजयोग** का अर्थ समझना कोई त्रुटि नहीं है। योग का तात्पर्य है जीवात्मा और परमात्मा की एकता, यही **योग विज्ञान** है। यह योग विज्ञान **श्रद्धा** से प्राप्त होता है। श्री कृष्ण ने श्रद्धा की महिमा का गीता में प्रकाशन किया है।

श्रद्धावाँल्लभते ज्ञानं तत्परः संयतेन्द्रियः

(गीता 4/39)

इस श्लोक में **'संयतेन्द्रियः'** का तात्पर्य है **हठयोग** साधना में दक्ष और **''ज्ञान''** का तात्पर्य **राजयोग** की सिद्धि है।

हठयोग के प्रमुख ग्रंथ – हठयोग के प्रमुख ग्रंथों में निम्नलिखित ग्रंथ सम्मिलित है

1. मूलग्रंथ –

(i) शिवसंहिता (ii) गोरक्षसंहिता (iii) विवेकमार्तण्ड (iv) योगबीज (v) सिद्धसिद्धान्त पद्धति

(vi) महर्षि धेरण्ड की धेरण्डसंहिता

2. उपनिषद –

(i) अद्वयतारकोपनिषद् (ii) अमृतनादोपनिषद् (iii) अमृतबिन्दूपनिषद् (iv) मुक्तिकोपनिषद्

(v) तेजोबिन्दूपनिषद् (vi) त्रिशिखिब्रह्मणेपनिषद् (vii) दर्शनोपनिषद् (viii) ध्यानबिन्दूपनिषद्

(ix) नादबिन्दूपनिषद् (x) पाशुपतब्रह्मोपनिषद् (xi) मण्डलब्रह्मणोपनिषद् (xii) ब्रह्मविद्योपनिषद् (xiii) महावाक्योपनिषद् (xiv) योगकुण्डल्योपनिषद् (xv) योगचूड़ाण्युपनिषद् (xvi) योगतत्वोपनिषद्

(xvii) योगशिखोपनिषद् (xviii)वाराहोपनिषद् (xix) शाण्डिल्योपनिषद् (xx) हंसोपनिषद्

(xxi) योगराजोपनिषद्

3. परिवर्ती ग्रंथ –

(i) हठयोग प्रदीपिका (ii) योगचिन्तामणि (iii) हठरत्नावली (iv) हठसंकेतचन्द्रिका

(v) हठतत्वकौमुदी

हठयोग साधना क्रम के मूल विषय

1. आसन, 2. षट्कर्म, 3. युक्ताहार विहार, 4. प्राणायाम, 5. बन्ध
I, 6. मुद्रायें, 7. चक्रभेदन, 8. कुण्डलीजागरण तथा 9 .
नादानुसंधान

हठयोग का परमलक्ष्य

हठयोग का परम लक्ष्य हठयोग प्रदीपिका (4/58) में स्पष्ट किया गया है कि संकल्पमात्र का त्याग ही मनोदृश्य का लय अथवा क्षय है, यही राजयोग, समाधि, उन्मनी, मनोन्मनी, अमरत्व, लय, शून्याशून्य, परमपद अमनस्क, अद्वैत निरालम्ब निरञजन, जीवन्मुक्ति, सहजाअवस्था (परमकैवल्य) है।

हठयोग के प्रमुख ऋषि

महर्षि, मार्कण्डेय, महर्षि भरद्वाज, महर्षि मरीचि, महर्षि जैमिनि, महर्षि पाराशर, महर्षि भृगु और महर्षि विश्वमित्र।

हठयोग के अंग

षट्कर्मासनमुद्राः प्रत्याहारश्च प्राणसंयामः।
ध्यानसमाधी सप्तैवाडं.ानि स्युर्हढस्य योगस्य।।

अर्थात् षट्कर्म, आसन, मुद्रा, प्रत्याहार, प्राणायाम, ध्यान और समाधि। इन **सात अंगों** से शरीर की शुद्धि **सात प्रकार** से होती है धेरडं संहिता के अनुसार – 1. शोधन, 2. दृढ़ता, 3. स्थैर्य, 4. धैर्य, 5. लाघव 6. प्रत्यक्ष, और 7. निर्लिप्त इत्यादि सात प्रकार से शरीर की शुद्धि होती है।

सारांशतः हठयोग स्थूल और सूक्ष्म प्राणिक स्पन्दनों के जागरण और सन्तुलन को निरूपित करता है। हठ शब्द वस्तुतः दो मंत्रों के योग से बना है जो **इड़ा** और **पिंगला** शक्तियों के द्योतक है। **ह** या **हं पिंगला नाड़ी** की ध्वनि है और **ठं** या **क्षं** हड़ा नाड़ी की ध्वनि है। यह आज्ञाचक्र का भी प्रतीक हैं। आज्ञाचक्र के कमल के दोनों दलों में ये ध्वनि स्पन्दन या तरंग निहित हैं। **ह प्राणिक शक्ति** को और **ठ मानसिक शक्ति** को प्रदर्शित करता है। ये दोनों एक ही शक्ति के दो रूप हैं जिससे संपूर्ण सृष्टि का सृजन एवं लय संचालित होता है हठयोग की प्रक्रिया से शारीरिक सहज विकास और मानसिक सूक्ष्म स्तरों की शुद्धि होकर व्यक्ति जीवन के चतुर्थ आयाम या तुरीय अवस्था की ओर प्रासृत होता है। जो सिद्ध होने पर राजयोग में परिणित होने के स्तरों पर बढ़ता जाता है।

3.4.2 मंत्रयोग का स्वरूप

मंत्रयोग दो शब्दों से मिलकर बना है। **मंत्र+योग** योग का विस्तृत अर्थ हम खण्ड 1, खण्ड 2 में अध्ययन कर चुके है। यहां **मंत्र** एवं मंत्रों द्वारा **योग** को प्राप्त करने पर ध्यान केन्द्रित करेगें।

मंत्र का सामान्य अर्थ हम अक्षरों या शब्दों की ध्वनियों के कम्पन से ग्रहण करते है। शाब्दिक अर्थ के अनुसार मंत्र 'वह शक्ति है जो मन को बंधन से मुक्त करती है।' **मन** के अनेक व्युत्पात्तिक अर्थ प्राप्त है, उदाहरणार्थ

''मननात् त्रायते इति मन्त्रः''

1. मननात् = मन का बंधन
2. त्रायते = मुक्त
3. इति = द्वारा या इस प्रकार और
4. मन्त्रः = कम्पन की शक्ति

अर्थात वह शक्ति जो मन को बंधन से मुक्त करती है **मंत्र शक्ति** है। **जड़ एवं चेतन** से सेतु रूप मन जो

अत्यंत चंचल एवं हठी है विषयों से जो कभी पूर्ण नहीं हो सकता है। इस मन का **निग्रह** करना अर्थात् **परिष्कार** करना। यह परिष्कार चित्त की वृत्तियों अर्थात मानस–व्यापार के निरोध से संभव है। योग उपनिषदों में योग के अनेकों प्रकार बतायें गये है उनमें एक प्रकार मंत्रयोग भी है योग के अनुसार अणु रूप सूक्ष्म मन या मानसिक प्रकृति के दो निम्नलिखित गुण हैं जो इसे बंधनग्रस्त करते है।

1. मल (राजसिक–तामसिक गुण) अशुद्धियों से है और,
2. विज्ञेप या फैलाव या विखराव।

इन दोनों गुणों से यह अर्थ निकलता है कि **व्यक्त मन** में अशुद्धियाँ रहती हैं तथा वह विखरा हुआ या फैलाव लिये (चंचलता) रहता है। मन की इस चंचलाता को मंत्रों के द्वारा एकत्र करना अर्थात् विखराव को रोकना एवं उसकी अशुद्धियों को (राजसिक–तामसिक गुणों को शांत करना) **मंत्र योग** का आशय है। **हठयोग** के विशेष संदर्भ में यहाँ अध्ययन का कारण हठयोग के अधिकांश अंग **मंत्रयोग** के अंगों के अर्न्तगत समाहित होते है। मंत्र **कम्पन** है, **तरंग** है। अन्तिम कम्पन या तंरग या अन्तिम मंत्र **अनहद नाद** है। यह एक अणु के अन्दर के **कम्पायमान केन्द्र** की ध्वनि है। यह वह **अनहदनाद** है जिसका निश्चय ही कोई अर्थ नहीं होता, क्योंकि यह **ध्वनिरहित ध्वनि** है। यह यौगिक पदार्थ विज्ञान का क्षेत्र है। जहाँ भी गति होगी वहाँ निश्चय ही कम्पन्न होगा और उससे सूक्ष्म ध्वनि उत्पन्न होगी अणु निरंतर गतिशील रहते हैं और इसलिए वे एक कम्पन–समूह की रचना करते हैं। उस कम्पन–समूह के प्रति हमारी चेतना की सजगता किस स्तर पर ग्राह हूई होती है यह हम अपने **सूक्ष्म शरीर** के स्तर की गहराईयों में प्रवेश करके प्राप्त कर सकते है। मंत्रयोग की साधना के तीन पहलू है।

1. मन 2. सूक्ष्म शरीर 3. ध्वनि कम्पन या तरंग

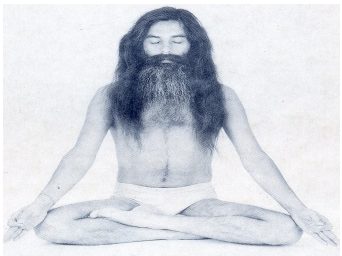
मंत्रयोग का सिद्धांत

मंत्रयोग की साधना का सिद्धांत इस तथ्य पर आधारित है कि इस सृष्टि की अंतिम सत्ता **परमात्मा** है। परमात्मा से **भाव** –**भाव** से **नाम–रूप,** और उसका विकार तथा **विलासमय** यह जगत् है।

इस कारण जिस क्रम से यह **सृष्टि** हुई है। उसके विपरीत मार्ग से ही **लय** होगा। अर्थात् **परमात्मा** से **भाव** और **भाव से नाम–रूप** द्वारा यह सृष्टि हुई है, जिससे समस्त जीव संसार बंधन में आ गये हैं तो यदि इस बंधन से मुक्त होना है तो साधना की एक प्रणाली **मंत्रयोग** है इसमें प्रथम नाम–रूप का आश्रय लेकर नाम–रूप से भाव मे और भाव से भावग्राही परमात्मा में **चित्तवृत्ति** का लय हो जाने से न चित्त रहेगा न वृत्तियाँ उठेंगी न बंधन का कारण जगत प्रंपच ही होगा। इस प्रकार मंत्रयोगी ऋषियों ने नाम और रूप के अवलम्बन से साधना की विधियों का निर्देश किया जो मंत्रयोग के रूप में जानी जाती है।

मंत्रयोग के प्रमुख ऋषि :– मंत्रयोग के प्रमुख ऋषियों मे निम्नलिखित प्रमुख ऋषि है –

1. देवर्षि नारद
2. देवर्षि पुलस्त्य
3. देवर्षि गर्ग
4. महर्षि वाल्मीकि
5. महर्षि भृगु
6. महर्षि वृहस्पति



मंत्रयोग का साधक

मंत्रयोग साधना के प्रमुख अंग :– मंत्रयोग साधना के सोलह प्रमुख अंग है जो निम्नलिखित हैं –

1.	भक्ति	2.	शुद्धि	3.	आसन	4.	पचांगसेवन
5.	आचार	6.	धारणा	7.	दिव्य देश सेवन	8.	प्राण क्रिया
9.	मुद्रा	10.	तर्पण	11.	हवन	12.	बलि
13.	याग	14.	जप	15	ध्यान और	16.	समाधि

उपरोक्त अंगों का समावेश हठयोग के अंगों के सादृश्य ही है अन्तर केवल **समाधि प्राप्त** करने की स्थिति को लेकर ही है।

मंत्रों के प्रकार

मन को **मननीय शक्ति** प्रदान (एकाग्र) करके जप के द्वारा समस्त **भयों** का विनाश करके पूर्ण **रक्षा** करने वाले शब्दों को मंत्र कहा जाता है। मन्–त्र – ये दो शब्द इसमें हैं 'मन' शब्द से मन को एकाग्र करना 'त्र' शब्द से **प्राण (रक्षा)** करना जिनका धर्म है और जप से जो अभीष्ट फल प्रदान करें, वे मंत्र कहलाते है। मंत्रों के माध्यम से परम लक्ष्य को प्राप्त करना **तंत्र आगमों** की साधना विधि का नाम **मंत्रयोग** है। मंत्रों को निम्नलिखित प्रकारों में बाँटा गया है।

1. पिण्ड मंत्र – इन मंत्रों में केवल एक अक्षर होता है
2. कर्तरी मंत्र – इन मंत्रों में दो अक्षर होते है
3. बीज मंत्र – इन मंत्रों में तीन से नौ अक्षर तक होते है
4. मंत्र – इन मंत्रों में दस से लेकर बीस अक्षर तक होते है
5. माला मंत्र – इन मंत्रों में बीस अक्षर से अधिक संख्या वाले मंत्र होते है

मंत्र – अभ्यास की प्रक्रियायें :– मंत्रों के अभ्यास की प्रक्रिया को जप भी कहा जाता है। भारतीय संस्कृति में जप या जाप से सामान्य अर्थ मंत्रों को कई बार दोहराने से भी लिया जाता है। मंत्रों के जाप या दोहराने के चार प्रकार निम्नांकित है –

1. बैखरी।
2. उपांशु या मध्यमा।
3. मनसि या पश्यन्ति और।
4. परा या भावातीत।

3.4.3 लययोग का स्वरूप

मन के विभिन्न स्तरों का **चेतना** में विलय होने को **लययोग** कहते है। जैसे कुण्डलिनी योग में प्राणशक्ति का विलय कर चेतना शक्ति को जाग्रत किया जाता है। **लययोग** का स्वरूप क्रियायोग और कुण्डलिनीयोग के सादृश्य हे। जहाँ क्रियायोग और कुण्डलिनी योग की साधना में **शक्ति केन्द्रों (चक्रों)** और नाड़ियों की जागृति प्रधानतः होती है जिनका अधिकत्तर संबंध आत्मि शरीर के अनुभवों से संबंधित रहता है। जबकि लययोग की प्रक्रिया प्रधानतः ध यानात्मक स्वरूप की है तथा चेतना की विभिन्न अभिव्यक्तियों से संबंधित होती हैं तथा शक्ति की अभिव्यक्ति के साथ उन्हें समायोजित करती है। तंत्रों के **क्रियायोग एवं कुण्डलिनीयोग** के समान ही **उपनिषदों** की साधना प्रणाली **लययोग** है। लययोग की प्रणाली में शक्ति के जागरण के साथ–साथ साधक को चेतना के क्षेत्र में हो रहे परिवर्तनों (चिन्तन–प्रक्रिया, विश्लेषण प्रक्रिया एवं सजगता से चेतना में प्रवाह) की साधना को अपनाया जाता है। सिद्धान्तः शक्ति के रूपन्तरण द्वारा (जागरण द्वारा) चेतना के स्तरों का सम्यक प्रकार से समन्वयन (उन्नयन) करना ही लययोग का लक्ष्य है।

लययोग के प्रकार

लययोग के भगवान शिव ने **सवा करोड़** प्रकार बतलायें है। इन प्रकारों में स्वात्माराम ने (हठयोग प्रदीपिका 4/66) में **नदानुसंधान** को एक प्रमुख प्रकार बतलाया है। **कुण्डलिनीयोग** भी एक प्रमुख प्रकार है।

लययोग के प्रमुख अंग :– लययोग की साधना प्रक्रिया हेतु लययोग के नौ प्रमुख अंग निम्नलिखित बतलाये गये है

1. यम 2. नियम 3. स्थूल क्रिया 4. सूक्ष्म क्रिया
5. प्रत्याहार 6. धारणा 7. ध्यान 8. लयक्रिया और
9. समाधि

लययोग के प्रमुख महर्षि :– लययोग की साधना प्रणाली को उपदेशित करने वाले प्रमुख महर्षि निम्नांकित है –

1. अगिंरा
2. याज्ञवल्कय
3. कपिल
4. पंतजलि
5. वशिष्ठ
6. कश्यप और
7. वेदव्यास

लययोग का सिद्धांत

प्रकृति और पुरूष के श्रंगार से उत्पन्न हुए **ब्रह्माण्ड** और **पिण्ड** दोनों एक ही है। समष्टि और व्यष्टि भाव से ब्रह्माण्ड और पिण्ड में केवल प्रतिकृति आकार भेद भर है। अतः पिण्ड के ज्ञान से ब्रह्माण्ड का ज्ञान प्राप्त किया जा सकता हे। साधना प्रक्रिया में **श्रीगुरू उपदिष्ट** शक्ति सहित पिण्ड का ज्ञान लाभ अर्जन करके **प्रकृति** को पुरूष में लय करने की प्रणाली **लययोग** कहलाती है, इस अर्थ में इसे ज्ञान योग (सांख्य) या राजयोग के स्वरूप में भी देखा जा सकता है। प्रकृति **(शक्ति)** और पुरूष **(शिव)** का योगांगो द्वारा कुलकुण्डलिनी नाम की महाशक्ति जो **आधारपद्म** में (मूलाधार चक्र) में प्रसुप्त अवस्था में रहती है। इस प्रसुप्त अवस्था को ही बर्हिमुखी सृष्टि क्रिया कहते है। इस प्रसुप्त शक्ति को जाग्रत कर (अन्तः मुखी कर) उर्ध्वगति से सहस्त्रार चक्र में स्थिर पुरूष (व्यष्टि चेतना का समष्टि चेतना में समाहन) से मिलाप या **संयोग** कर देना लययोग है।



कुण्डलिनी का सहस्त्रार चक्र में लय

लययोग के अंगों का स्वरूप :– लययोग के उपरोक्त वर्णित अंगों का संक्षिप्त क्रियात्मक स्वरूप निम्नांकित हैं

1. यम – बहिरिन्द्रियों को वश में (नियंत्रण) के साधन को **यम** कहते है
2. नियम – अन्तः इन्द्रियों को वश में (नियंत्रण) के साधन को **नियम** कहते है
3. स्थूल क्रिया – शरीर की विशेषस्थितियों (आसन) और मुद्राओं की साधना **को स्थूल क्रिया** कहते है।
4. सूक्ष्म क्रिया – आठ प्राणायामों और स्वरोदय की साधना को सूक्ष्म क्रिया कहते है। स्वरोदय

से सिद्धियाँ भी प्राप्त होती है

5. प्रत्याहार– मन को इन्द्रियों के आलम्बन से मुक्त कर स्थिर करने को **प्रत्याहार** कहते है।

6. धारणा – प्रकृति के सूक्ष्म से सूक्ष्म बिन्दूरूप की कल्पना करने को **धारणा** कहते है।

7. ध्यान – प्रत्याहार और धारणा का अभ्यास सध जाने पर योगी बिन्दू नाद के श्रवण में खो जाता है जिसे ध्यान कहते है।

8. लयक्रिया – मूलाधार से लेकर सहस्त्रार चक्र तक सात शक्ति केन्द्र है जिन्हें लाघता हुआ साधक जब **सहस्त्रार चक्र** में विश्रांति पाता है उस स्थिति को **लयक्रिया** कहते है।

9. समाधि – लयक्रिया से विश्रांत चित्त का स्वरूप में स्थित हो जाना **समाधि** है। इस प्रक्रिया में बिन्दु के नाद को श्रवण करने पर बिन्दू (प्रकृति) शुद्ध रूप में शेष रह जाती है इसे ही प्रकृति का **लय** या सम्यक् अधिष्ठित **समाधि** होना कहते है। इस अवस्था में **प्रकृति का स्पंदन** मूल स्पंदन हो जाता है। इसे **''महालय''** कहते है।

उपरोक्त लययोग के अंगों का स्वरूप को निम्नतालिका (क्रमांक 02) द्वारा दर्शाया गया है।

नाम	**स्थान**	**तत्व का गुण**	**रंग**	**देवता**	**दल**	**अक्षर**
मूलाधार	गुदा	गन्ध	लाल	गणेश	चार (4)	व,श,ष,स
स्वाधिष्ठान	लिंगमूल	रस	पीला	ब्रह्मा सावित्री	छः (6)	ब,भ,म,य,र,ल
मणिपूर	नाभि	रूप	नीला	विष्णु–लक्ष्मी	दस (10)	ड,ढ,ण,त,थ,द,ध,न,प,फ
अनाहत	हद्रय	स्पर्श	श्वेत	शिव–शक्ति	बारह(12)	क , ख , ग , घ ,ड,च,छ,ज,झ,ञ,ट,ठ,
विशुद्धि	कण्ठ	शब्द	श्वेत	जीव	सोलह (16)	अ,आ,ई,इ,उ,ऊ,ऋ,ॠ, ऌ ऌ,ए,ऐ,ओ,औ,अं,अः
आज्ञा	भ्रूमध्य	महत्	श्वेत	ज्योति	दो (2)	हं, क्षं
सहस्त्रार	मस्तक	–	श्वेत	सदाशिव	हजार	20X50=1000

(तालिका क्रमांक 02)

चेतना के लोक या स्तर :– लययोग में चेतना के **उर्ध्वमुखीकरण** में चक्रों के अनुरूप ही लोकों का भी संबंध है। निम्नलिखित तालिका (क्रमांक 03) के अनुसार चेतना के स्तर एवं उनके लोक दर्शित है।

क्र.	चेतना का स्तर	लोक
1.	मूलाधार	भू
2.	स्वाधिठान	भुवः
3.	मणिपुर	स्वः
4.	अनाहत	महः
5.	विशुद्ध	जनः
6.	आज्ञा	तपः
7.	सहस्त्रार	सत्य

(तालिका क्रमांक – 3)

3.4.4 तारक योग का स्वरूप

मण्डल ब्राह्मणोपनिषद् में **तारकयोग** एवं **अमनस्कयोग** नाम से दो प्रकार के योगों का उल्लेख प्राप्त होता है।

पूर्वं तु तारकं विद्यादमनस्कंतदुत्तरमिति

(मण्डल ब्रा. 1.3)

तारक योग के भेद :– मण्डल ब्रह्माण्ड उपनिषद् के अनुसार तारक योग के दो प्रमुख भेद निम्नलिखित है।

1. मूर्तितारक योग तथा
2. अमूर्तितारक योग।

तारक योग का सिद्धांत :– तारक योग के उपरोक्त दो प्रकार के भेदों में इन्द्रियान्त को **मूर्तितारक योग** कहते है। तथा भ्रूयुगातीत को **अमूर्तितारक योग** कहते है। इन दोनों योगों का अभ्यास मन सहित करना चाहिए। भ्रूयुग के मध्य ध्यान करने से तेज का आविर्भाव होता है। इस प्रकार यह **पूर्वतारक योग** कहलाता है। **उत्तर तारक योग** को **अमनस्क योग** कहते है। तालु के मूल तथा उर्ध्वभाग में महाज्योति विद्यमान है। इसके दर्शन से अणिमदि की सिद्धि होती है।

तालूमूलोर्ध्वभागे महाज्योतिर्विद्यते
तदर्शनादणिमादि सिद्धिः।

(मण्डल ब्रा. 1.3)

इन दोनों प्रकार के योगों में ध्यान को प्रमुखता दी गई है। इस कारण भ्रूमध्य आदि स्थानों में ध्यान करने का विधान इन योगों की साधना प्रक्रिया का प्रमुख अंग है। इस उपनिषद् में इन योगों की एक विशेषता यह है कि जहाँ पांतजल योग में विभिन्न स्थानों में ध्यान करने का निर्देश है तो इसमें **कर्म भी** करते रहने का उपदेश है। सूर्योदय से सूर्यास्त पर्यन्त कर्म करते रहना चाहिए किन्तु यदि नासाग्र में दृष्टि जमाकर **प्रणव का जप** करते हुए उसकी **ध्वनि** में ही मन को **लीन** कर लिया जावे तो ऐसे साधक पर कर्म के संस्कार नहीं पड़ते है।

''तस्य न कर्मलेपः
रवेरूदयास्तमयमोः किल कर्म कर्त्तव्यम्।

तारक योग में एक प्रकार से **निष्काम कर्म** करते रहने का उपदेश किया गया है। गीता में इसी निष्काम कर्म

का प्रतिपादन इतने बल से किया गया है कि इसे **निष्काम कर्मयोग** ही कहा जाने लगा।

मण्डल ब्राम्हणोपनिषद् के अनुसार उक्त दोनों प्रकार के योगों को करने का उद्देश्य मन को सर्वथा विषय रहित बना देना है क्योंकि **निर्विषय मन** ही **मोक्ष** प्राप्त कराता है तथा विषयों से युक्त मन बंधन का कारण बनता है।

सविषयं मनो बन्धाय निर्विषयं मुक्तये भवति

(मण्डल ब्रा. 4.1)

उपनिषदों में तारक योग का स्वरूप

उपनिषदों में तारक योग का वर्णन निम्नानुसार किया गया है –

1. गर्भजन्म जरामरण संसार महभ्दयात् संतारयति तस्मात् तारकम्।

(अद्वयतारकोपनिषद्)

अर्थात् इस नश्वर जगत् से बिना श्रम तारने वाला होने के कारण **''तारतम'' ज्ञान** भी इसी तारक योग का नाम है। तारक योग शक्तिसम्पन्न योगी को गर्भ, जन्म, जरा–मरण आदि सांसारिक **भय** नहीं रहते संसार जन्य कर्म क्लेश, विपाक, जन्म मरण आदि यावद् दुःख परम्परा से तारने के कारण ही **''तारक''** नाम अन्वर्थक है। इस तारतम्य से रहस्मय योग को प्राप्त कर मनुष्य कृतकृत्य हो जाता है, उसे कुछ कर्त्तव्य शेष नहीं रहता, वह **जीवन्मुक्त दशा** में विचरने लगता है तब फिर **साधने** या **कर्म** करने को शेष क्या रहेगा। इसे **''मद्भक्तियुक्तो भुवनं पुनाति''** उसकी कौन कहे, वह तो विश्व को पावन करने लगा अब उसमें और ब्रम्ह में अन्तर शेष नहीं रह जाता है। **''ब्रम्हविद् ब्रह्मैव भवति''** अर्थात् वह स्वयं ही ब्रह्य तुल्य हो जाता है।

2. तस्मादन्तर्दृष्टया तारक एवानुसंधेयः

(अद्वयतारकोपनिषद्)

अर्थात विद्वानों को **आत्मदृष्टि** द्वारा **तारक योग** का अनुसंधान करना चाहिये। ऐसा **श्रुति** कहती है इसे ही **स्मृति** भी अनुमोदित करती है। स्मृति के अनुसार –

गुरूविश्वेश्वरः साक्षात् तारकं ब्रह्य निश्चितम्

इस तारक ज्ञान के प्रदान करने वाले गुरू को साक्षात् ईश्वर स्वरूप समझना चाहिए और **तारक ज्ञान योग** निश्चय ही ब्रह्यस्वरूप है। जो तारक योग प्रदान कर अन्य को भी अपने समान शक्तिसंपन्न बना देता है, वह ईश्वरस्वरूप तो है ही, इसमें संदेह क्या ?

पातंजल योग सूत्र में तारक योग

महर्षि पतंजलि ने भी **तारक योग** की महत्ता को प्रतिपादित किया है। महर्षि पतंजलि के अनुसार क्षण (वर्तमान) और उसके क्रमों में संयम करने से **विवेकज्ञान उत्पन्न** होता है। जिस प्रकार द्रव्य का सबसे छोटा विभाग जो भागरहित है, वह **परमाणु** है, वैसे ही **समय** की सबसे छोटी विभाग रहित गति **क्षण** है। उन क्षणों के प्रवाह का विच्छेद न होना अर्थात् बने रहना **क्रम** कहलाता है। **एक वर्तमान क्षण ही सत्य है**। उसी एक वर्तमान क्षण का परिणाम यह सारा **ब्रह्याण्ड** है। ऐसा जो एक वर्तमान क्षण है और उसका जो यह कल्पित क्रम है, उसका संयम करने

से **विवेक ज्ञान** उत्पन्न होता है।

तारकं सर्वविषयं सर्वथाविषयमक्रमं चेति विवेकजं ज्ञानम्।

(योगसूत्र 3/54)

इस प्रकार विवेकज ज्ञान के चार लक्षण है –

1. **तारकम्** – बिना ब्राह्य निमित्त के अपनी प्रभा से स्वयं उत्पन्न होने वाला संसार सागर से तारने वाला है।
2. **सर्वविषयम्** –महदादिपर्यन्त सब तत्वों का विषय करने वाला।
3. **सर्वथाविषयम्** – सब तत्वों को सब अवस्था में स्थूल, सूक्ष्म आदि भेद से उनके तीनों परिणामों सहित सब प्रकार से विषय करने वाला।
4. **अक्रमम्** – क्रम की अपेक्षा से रहित होकर सबको एक क्षण में सब प्रकार से विषय करने वाला।

ये चारों **पूर्ण विवेक ज्ञान** हैं। इस ज्ञान की तुलना में **ऋतंभरा प्रज्ञा** वाली मधुमती भूमि इसका एक अंश है। यह ज्ञान की अन्तिम गति है, क्योंकि इसमें कोई वस्तु इसका अविषय नहीं रहती है।

विवेक द्वारा किया गया **'तारक योग ज्ञान'** बिना क्रम सब विषयों को प्रकाशित करता है। अर्थात् जैसे अन्य विद्या या योग क्रमशः धीरे–धीरे प्राप्त होते हैं, जबकि तारक योग तो काल से परे, अतीत–अनागत समस्त प्रपंच का प्रकाशक होते हुए **ब्रह्मसाक्षात्कार** कराने वाला है। इस कारण इसे **तारक योग** कहते है।

तारक योग की साधना

तारक योग एक मंत्र विशेष द्वारा प्राप्त ज्ञान को कहते है। जिसमें ब्रह्मसाक्षात्कार का भेद बताया गया है। इसे परा ब्रह्मविद्या भी कहते हैं। इसका मुख्य साधन प्रेम है। जब तक सच्चा प्रेम उत्पन्न नहीं होता, वहाँ तक तारक योग सिद्ध नहीं होता। इसका बल प्रेम बिना प्रकट नहीं होता। अन्य क्रियाओं द्वारा सहायता तो मिलती है किन्तु इसका प्राण तो **'प्रेम'** ही है। प्रेमपुट लगते ही तारक ज्ञान अपूर्व योग को प्राप्त हो जाता है। प्रेम में दबाव न सही किन्तु आकर्षण है। भंयकरता नहीं किन्तु तल्लीनता है, अभिमान नहीं किन्तु अपनापन है, नैराशय नहीं अपितु विश्वास है। अतएव **'तारक योग'** प्राप्त करने के लिए प्रधान साधनभूत **सच्चा प्रेम** ही माना गया है।

प्रेम द्वारा इसे प्राप्त करते विलम्ब नहीं। इस योग में एक अपूर्व विशेषता यह है कि इसका सम्यक् ज्ञान होते ही मनुष्य पद्यपलाशवत् निर्लिप्त होकर निर्भय विचरने लग जाता है और **सच्चिदानन्द** के ज्ञान का अनुभवी होकर किसी प्रकार के विक्षेप को प्राप्त नहीं होता है। **भावातीत** हो जाना इसकी प्रमुख विशेषता है।

बोध प्रश्न :

टिप्पणी क : अपने उत्तर नीचे दिये गये स्थान में लिखें ।

ख : इकाई के अंत में दिये गये उत्तरों से अपने उत्तर मिलाइए।

5. हठ्योग साधना क्रम के मूल विषय एवं अंग बतलाइये ?

6. मंत्रयोग का सिद्धांत बतलाईये ?

3.5 सारांश

इस खण्ड के अध्ययन के उपरान्त आपने जाना कि योग विज्ञान के कितने प्रकार है। **इकाई 7** में आपने **राजयोग** का विस्तृत अध्ययन किया जिसके अन्तर्गत राजयोग साधना, राजयोग साधन के अंग, राजयोग साधना का साधन क्रम, क्या है यह जाना। राजयोग के ही विशेष संदर्भ में आपने कर्मयोग भक्तियोंग एवं ज्ञानयोग का भी अध्ययन किया। **कर्मयोग** के अन्तर्गत कर्मयोग का स्वरूप, कर्मो की कोटियाँ, कर्मयोग की परिभाषाएँ, कर्मयोग की विशेषताओं में (1) केवल नियम कर्म का विधान (2) फल की इच्छा का अभाव (3) आसक्ति का अभाव (4) समत्व बुद्धि (5) सर्वत्र समान व्यवहार (6) काम्य संकल्पों का भी त्याग एवं (7) कर्मों का ईश्वरार्पण तथा शरणागति भाव के बारे में जानकारी प्राप्त की। **भक्ति योग** के स्वरूप के अन्तर्गत भक्ति योग का अर्थ, भक्ति योग के साधन, भक्तों के चार प्रकार, अर्थार्थी, आर्त्त, जिज्ञासु एवं ज्ञानके बारे में अवगत हुये। भक्ति के नौ प्रकारों की भी जानकारी प्राप्त हुई। हमने भक्तियोग के उपदेश की भी जानकारी प्राप्त की । इसके उपरांत **ज्ञानयोग** के स्वरूप का अध्ययन किया इसके अन्तर्गत ज्ञानयोग की विशेषताएँ, ज्ञान योग में समत्व का स्वरूप, जिसमें (1) आत्मगत समत्व (2) वस्तुगत समत्व, (3) गुणातीत समत्व का ज्ञान प्राप्त किया। इसके बाद ज्ञानयोग का उपदेश, ज्ञान योग के भेद, जिसके अन्तर्गत (1)

ब्रह्ममयी सृष्टि (2) मायात्मक जगत् एवं (3) प्रतीयमान विश्व ब्रह्म की जानकारी भी प्राप्त की गई।

इकाई 8 के अन्तर्गत हमने **हठयोग** का स्वरूप, मंत्रयोग, लययोग, एवं तारक योग के विशेष संदर्भ में अध ययन किया। हठयोग के अन्तर्गत हठयोग का स्वरूप हठयोग के मूलाधार, हठयोग की सैद्धान्तिक पृष्ठभूमि, हठयोग के प्रमुख ग्रंथ, हठयोग के मूलग्रंथ, हठयोग के उपनिषद, हठयोग के परिवर्ती ग्रंथ, हठयोग साधना क्रम के मूल विषयों एवं हठयोग के ऋषियों तथा हठयोग के सात अंगों का ज्ञान प्राप्त किया। **मंत्रयोग** के स्वरूप के अन्तर्गत मंत्रका अर्थ, मंत्रयोग का सिद्धांत, मंत्रयोग के प्रमुख ऋषि, मंत्रयोग साधना के प्रमुख अंग, मंत्रों के प्रकार जिसमे ंपिण्ड मंत्र, कर्तरीमंत्र, बीज मंत्र, मंत्र एवं माला मंत्र का अध्ययन हमने किया हमने मंत्रों के जप के प्रकारों में चार प्रकारों का भी अध्ययन किया। **लययोग** के स्वरूप के अन्तर्गत लययोग के प्रकार, प्रमुख अंग, सिद्धांत, अंगों का स्वरूप, जिनमें यम, नियम, स्थूल क्रिया, सूक्ष्म क्रिया , प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, लयक्रिया एवं समाधि का अध्ययन किया। लययोग के अंगों की तालिका, चेतना के लोक या स्तरों की तालिका का भी अध्ययन हमने किया। इसके उपरांत **तारक योग** का अध ययन हमने किया। जिसमें तारक योग का स्वरूप, भेद, औपनिषदिक स्वरूप, **पांतजलयोग में तारक योग** का स्वरूप, का अध्ययन हमने किया इन अध्ययनों से हम योग के विविध प्रकारों एवं **योग साधना के मर्म** को समझ सकने में सक्षम हुये।

सारांशतः योग दर्शन की संकल्पना को एवं योग दर्शन की सैद्धांतिक पृष्ठभूमि को जब आपने योग दर्शन के प्रकारों एवं भेदों के रूप में अध्ययन किया तो आप अब यह समझने के योग्य हो गये कि इन सभी योगों का महत्व क्या है एवं किस प्रवृति के व्यक्ति को कौन सा योग अपनाना चाहिए।

3.6 बोध प्रश्नों के उत्तर

प्र.1 राजयोग के अंग बताइये ?

उ. जिस प्रकार चन्द्रमा की पूर्णता के लिए सोलह कलाएँ आवश्यक है उसी प्रकार राजयोग की पूर्णता हेतु राजयोग के सभी क्रमिक अंगों की आवश्यकता होती है। इन अंगों के निम्नांकित प्रकार है –

1. ज्ञान की सात भूमिकाओं का होना। ये निम्नलिखित है –
   (i) शुभेच्छा (ii) सुविचारणा (iii) तनुमानसा (iv) सत्वापत्ति (v) असंसाक्ति
   (vi) पदार्थ भावनी और (vii) तुर्यगा
2. धारणा दो प्रकार की होती है।
   (i) प्रकृति (ii) ब्रह्म
3. ध्यान : ध्यान के तीन प्रकार होते है।
   (i) विराट्ध्यान (ii) ईशध्यान (iii) ब्रह्मध्यान
4. समाधिः समाधि के दो प्रकार है।
   (i) सम्प्रज्ञात समाधि इसके चार भेद है –
      (a) वितर्कनुगम (b) विचारनुगम (c) आनन्दानुगम(d) अस्मितानुगम
   (ii) असम्प्रज्ञात या निर्वीज : इसके दो भेद है –
      (a) भवप्रत्यय और (b) उपायप्रत्यय।

प्र.2 गीता में कर्मों की कोटियाँ कौन–कौन सी बताई गई है लिखिये ?

उ. **कर्मों की कोटियाँ**

निष्काम कर्मयोग में **कर्म** ही वह कार्यकारी उपादान है, जिसके माध्यम से योग रूपी भव्य भवन का निर्माण

होता है। यद्यपि कर्मों की गति अत्यन्त गहन तथा कठिन है फिर भी गीता में विभिन्न सन्दर्भों के अनुरूप **कर्मों** को निम्न कोटियों में निर्दिष्ट किया गया है –

क्र.	प्रकार	प्रकार	प्रकार
1.	कर्म	अकर्म	विकर्म
2.	सात्विक राजस		तामस
3.	शारीरिक	मानसिक	वाचिक
4.	इष्ट	अनिष्ट	मिश्रित
5.	शुभ	अशुभ	शुभाशुभ
6.	संचित	प्रारब्ध	क्रियमाण

मानासिक भावना ही क्रियाओं के कर्म, अकर्म तथा विकर्म बनाने में मूल हेतु है। कर्म का स्वरूप एक दीखने पर भी मानसिक भावना में अन्तर होने के कारण उनके स्वरूप तथा परिणामों में भी अन्तर आ जाता है। कोई भी क्रिया साधारण कामना रहने से कर्म, किसी को अनिष्ट पहुँचाने की भावना होने से विकर्म तथा कामनारहित होने से अकर्म या निष्कामकर्म बन जाता है।

प्र. 3 भक्तों के प्रकार कौन–कौन से है बताइये ?

उ. **भक्तों के प्रकार** :– भक्ति योग के संबंध में भक्तों के चार प्रकार निम्नानुसार बतलाये गये हैं –

1. अर्थार्थी :– जो भक्त धन की कामना से भक्ति करता है, उसे अर्थार्थी भक्त कहा जाता है।

2. आर्त्त :– जो भक्त सांसारिक दुःखों से मुक्ति के लिए भगवान का भजन करता है, उसे आर्त भक्त कहा जाता है।

3. जिज्ञासु :– जो भक्त भक्ति के स्वरूप को ही समझने के लिए भक्ति करता है, उसे जिज्ञासु भक्त कहा जाता है।

4. ज्ञानीभक्त :– जो भक्त अनन्य भाव से भगवान की प्राप्ति हेतु भक्ति करता है, उसे ज्ञानी कहा जाता है। भगवान कृष्ण ने ज्ञानी भक्त को ही सर्वोत्तम भक्त बताया है। भगवान श्री कृष्ण कहते है कि ज्ञानी मुझे अत्यन्त प्रिय है, ज्ञानी तो साक्षात् मेरा स्वरूप है।

प्र. 4 ज्ञानयोग की विशेषताएं लिखिये ?

उ. **ज्ञानयोग की विशेषताएँ** :– ज्ञानयोग की निम्नांकित विशेषताएँ है –

1. यह संपूर्ण दृश्यमान जगत् परमात्मा का स्वरूप है, परमात्मा से भिन्न कुछ भी नहीं है।

2. दृश्यमान जगत् मिथ्या है। यह कार्य है–विकार है। इस कारण ब्रम्ह ही सत् है।

3. इस मिथ्या जगत् में ज्ञानी के लिए कोई भी कार्य नहीं। ब्रम्ह ज्ञान में सभी कार्यों का पर्यवसान है। ब्रह्मज्ञानी को कुछ पाना नहीं रहता। अतः वह कोई कार्य नहीं करता है।

4. ज्ञानी की दृष्टि में **''समता''** होती है वह सबको ब्रह्मरूप या एकरूप समझता है। प्राणिमात्र में वह अभेददर्शन

करता हैं।

प्र. 5 हठयेाग साधना क्रम के मूल विषय एवं अंग बतलाइये ?

उ. **हठयोग साधना क्रम के मूल विषय**

1. आसन, 2. षट्कर्म, 3. युक्त्ताहार विहार, 4. प्राणायाम, 5. बन्ध,
6. मुद्रायें, 7. चक्रभेदन, 8. कुण्डलीजागरण, एवं 9. नादानुसंधान

हठयोग का परमलक्ष्य :–

हठयोग का परम लक्ष्य हठयोग प्रदीपिका (4/58) में स्पष्ट किया गया है कि संकल्पमात्र का त्याग ही मनोदृश्य का लय अथवा क्षय है, यही राजयोग, समाधि, उन्मनी, मनोन्मनी, अमरत्व, लय, शून्याशून्य, परमपद अमनस्क, अद्वैत निरालम्ब निरंजन, जीवन्मुक्ति, सहजाअवस्था (परमकैवल्य) है।

हठयोग के प्रमुख ऋषि :–

महर्षि, मार्कण्डेय, महर्षि भरद्वाज, महर्षि मरीचि, महर्षि जैमिनि, महर्षि पाराशर, महर्षि भृगु और महर्षि विश्वमित्र

हठयोग के सात अंग :–

षट्कर्मासनमुद्राः प्रत्याहारश्च प्राणसंयामः।
ध्यानसमाधी सप्तैवाडानि स्युर्हढस्य योगस्य।।

अर्थात् षट्कर्म, आसन, मुद्रा, प्रत्याहार, प्राणायाम, ध्यान और समाधि। इन **सात अंगों** से शरीर की शुद्धि सात प्रकार से होती है धेरड संहिता के अनुसार – 1. शोधन, 2. दृढ़ता, 3. स्थैर्य, 4. धैर्य, 5. लाघव 6. प्रत्यक्ष, और 7. निर्लिप्त इत्यादि सात प्रकार से शरीर की शुद्धि होती है।

प्र. 6 मंत्र योग का सिद्धांत समझाइये ?

उ. **मंत्रयोग का सिद्धांत :–**

मंत्रयोग की साधना का सिद्धांत इस तथ्य पर आधारित है कि इस सृष्टि की अंतिम सत्ता परमात्मा है। परमात्मा से भाव –भाव से नाम–रूप, और उसका विकार तथा विलासमय यह जगत् है।

इस कारण जिस क्रम से यह सृष्टि हुई है। उसके विपरीत मार्ग से ही लय होगा। अर्थात् परमात्मा से भाव और भाव से नाम–रूप द्वारा यह सृष्टि हुई है, जिससे समस्त जीव संसार बंधन में आ गये हैं तो यदि इस बंधन से मुक्त होना है तो साधना की एक प्रणाली **मंत्रयोग** है इसमें प्रथम नाम–रूप का आश्रय लेकर नाम–रूप से भाव में और भाव से भावग्राही परमात्मा में **चित्तवृत्ति का लय** हो जाने से न चित्त रहेगा न वृत्तियाँ उठेंगी न बंधन का कारण जगत प्रंपच ही होगा। इस प्रकार मंत्रयोगी ऋषियों ने नाम और रूप के अवलम्बन से साधना की विधियों का निर्देश किया जो मंत्रयोग के रूप में जानी जाती है।

3.7 उपयोगी संदर्भ ग्रंथ

(1) हठयोग प्रदीपिका — **रामलाल श्रीवास्तव**, प्रकाशक श्री गोरखनाथ मंदिर, गोरखपुर उ.प्र.

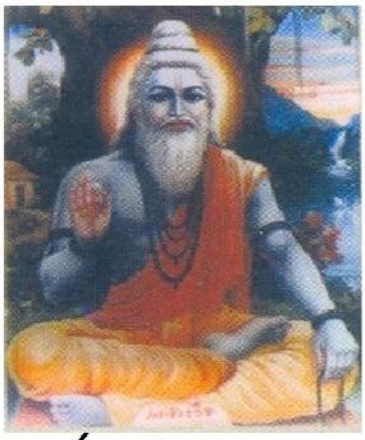
(2) भारतीय दर्शन खण्ड I ,एवं II — **डॉ. राधाकृष्णनन्**, प्रकाशक राजपाल एण्ड सन्न, कश्मीरी गेट दिल्ली – 6

(3)	संस्कृतशास्त्रों का इतिहास	**बलदेव उपाध्याय** प्रकाशक हिमालय प्रेस, वाराणसी
(4)	भक्तियोग	**स्वामी विवेकानन्द** प्रकाशक अद्वैत आश्रम, कलकत्ता
(5)	कर्मयोग	**स्वामी विवेकानन्द** प्रकाशक अद्वैत आश्रम, कलकत्ता
(6)	ज्ञानयोग	**स्वामी विवेकानन्द** प्रकाशक अद्वैत आश्रम, कलकत्ता
(7)	हठयोग – एक ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य एवं हठयोग प्रदीपिका	**सुरेन्द्र कुमार शर्मा** प्रकाशक ईस्टर्न बुक लिंकर्स, दिल्ली
(8)	योग का वैज्ञानिक रहस्य	**श्री रमणदास महात्यागी** प्रकाशक चौखम्बा ओरिएन्टालिया वाराणसी प्रथम संस्करण
(9)	श्रीमद्भागवत गीता	प्रकाशक गीता प्रेस गोरखपुर (उ.प्र.)
;10)	योग दर्शन और धर्म	**एस.एन.दास गुप्ता** प्रकाशक मोतीलाल बनारसी दास प्रा.लि. दिल्ली

खण्ड 4

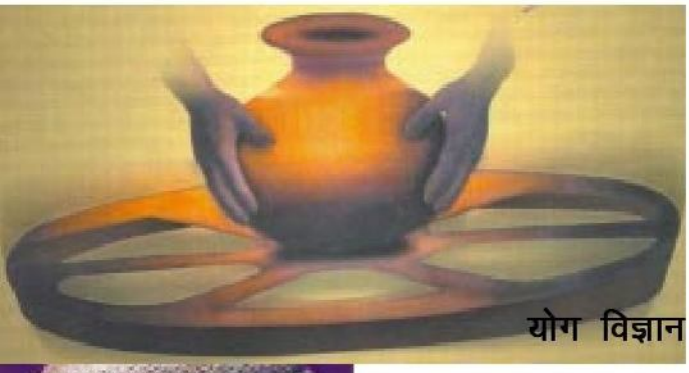
इकाई 9

इकाई 10



महर्षि पतंजलि

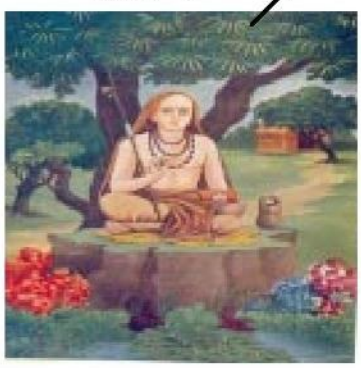
महर्षि वशिष्ट



योग विज्ञान के प्राचीन उपदेष्टा

इकाई 11

इकाई 12





आदि शंकराचार्य

गुरू गोरखनाथ

खण्ड – 4 योग विज्ञान के प्राचीन उपदेष्टा

प्रश्न पत्र प्रथम **"योग विज्ञान का परिचयात्मक स्वरुप"** के अध्ययन हेतु खण्ड 4 **"योग विज्ञान के प्राचीन उपदेष्टा"** को चार इकाईयों में विभाजित किया गया है। इनमें इकाई 9 महर्षि पतंजलि, इकाई 10 **महर्षि वशिष्ट,** इकाई 11 **आदि शंकराचार्य** और इकाई 12 **गुरू गोरखनाथ** को सम्मिलित किया गया है।

खण्ड संरचना

4.0 प्रस्तावना 87

4.1 उद्देश्य 87

4.2 विषय प्रवेश 88

4.3 इकाई 9 महर्षि पतंजलि 89

- 4.3.1 महर्षि पतंजलि की स्तुति
- 4.3.2 महर्षि पतंजलि का परिचय
- 4.3.3 महर्षि पतंजलि की रचनाएँ
- 4.3.4 महर्षि पतंजलि के उपदेश

4.4 इकाई 10 महर्षि वशिष्ठ

- 4.4.1 महर्षि वशिष्ट की स्तुति
- 4.4.2 महर्षि वशिष्ट का परिचय
- 4.4.3 महर्षि वशिष्ट की रचनाएँ
- 4.4.4 महर्षि वशिष्ट के उपदेश

4.5 इकाई 11 आदि शंकराचार्य

- 4.5.1 आदि शंकराचार्य की स्तुति
- 4.5.2 आदि शंकराचार्य का परिचय
- 4.5.3 आदि शंकराचार्य की रचनाएँ
- 4.5.4 आदि शंकराचार्य के उपदेश

4.6 इकाई 12 गुरू गोरखनाथ

- 4.6.1 गुरू गोरखनाथ की स्तुति
- 4.6.2 गुरू गोरखनाथ का परिचय
- 4.6.3 गुरू गोरखनाथ की रचनाएँ
- 4.6.4 गुरू गोरखनाथ के उपदेश

4.7 सारांश 106

4.8 बोध प्रश्नों के उत्तर 107

4.9 उपयोगी संदर्भ गंथ 110

4.0 प्रस्तावना

प्रथम प्रश्न पत्र के अंतर्गत इकाई 9, 10, 11 एवं 12 का अध्ययन इस चतुर्थ खण्ड में किया जाना है। इसके पूर्व आपने प्रथम खण्ड में योग **विज्ञान की संकल्पना,** द्वितीय खण्ड में **योग विज्ञान के सिद्धांत** एवं तृतीय खण्ड में **योग विज्ञान के प्रकारों** का भलीभाँति अध्ययन कर लिया है।

इकाई 9 को पढ़ने के बाद आप योग विज्ञान के प्राचीन उपदेष्टा एवं योग दर्शन के सूत्रकार महर्षि पतंजलि के जीवन वृत उनका काल योग सूत्र की विषय वस्तु एवं योगसूत्र का महत्व इत्यादि बातों की जानकारी हासिल कर सकेगें जिससे योग दर्शन के संदर्भ में आपकी व्यापक दृष्टि विकसित हो सकेगी।

इकाई 10 को पढ़ने के बाद आप योग विज्ञान के प्राचीन उपदेष्टा महर्षि वशिष्ठ के द्वारा उपदेशित योग एवं उनके ग्रंथ योगवाशिष्ठ में योग के निरूपण का अध्ययन कर सकेगें। जिससे योग दर्शन के संदर्भ महर्षि वशिष्ठ के योदान की जानकारी हासिल होगी। तथा योग विज्ञान के संदर्भ में आपका एक नवीन दृष्टिकोण निर्मित हो सकेगा।

इकाई 11 को पढ़ने के बाद आप योग विज्ञान के प्राचीन उपदेष्टा एवं अद्वैत वेदान्त के प्रबल सर्मथक भारत के आध्यात्मिक एकीकरण के सूत्रधार के जीवन वृत उनका काल उनकी रचनाएँ एवं उनके दार्शनिक सिद्धांतों से संबंधित जानकारी हासिल कर पायेगें। जिससे आपका योग के पूर्ण अधिकारी व्यक्ति के संबंध में विस्तृत जानकारी प्राप्त होगी।

इकाई 12 को पढ़ने के उपरांत आप योग विज्ञान के प्राचीन उपदेष्टा एवं नाथ परम्परा के सृजक गुरू गोरखनाथ जी का जीवन वृत एवं योग के इस परम्परा से जुड़े सिद्धांतों की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।

इन प्रमुख योग विज्ञान के उपदेष्टाओं के व्यक्तित्व एवं कृतित्व की जानकारी प्राप्त होने से योग विज्ञान के व्यवहारिक नये स्वरूप की जानकारी प्राप्त हो सकेगी।

4.1 उद्देश्य

खण्ड 4 के अंतर्गत इकाई 9, 10, 11 एवं 12 के अध्ययन का उद्देश्य योग विज्ञान के परिचायत्मक स्वरूप के अध्ययन में उन योग मनीषीयों के जीवन चक्र कृतित्व एवं व्यक्तित्व से अवगत करवाना है तथा अध्यताओं के लिए योग साधना हेतु आदर्श प्रस्तुत करना जिससे उनमें योग जीवनचर्या के महत्व की भूमिका निर्मित हो सकें। साथ ही साथ अन्य निम्नांकित उद्देश्यों को भी आप प्राप्त कर सकें।

- इकाई 9 के अध्ययन द्वारा महर्षि पतंजलि के द्वारा संग्रहीत योग दर्शन की रूपरेखा से अवगत करवाना।
- इकाई 10 के अध्ययन द्वारा महर्षि वशिष्ट द्वारा भारतीय जनचेतना के आधार मर्यादा पुरूषोत्तम श्रीराम को दिये गये योग उपदेश से परिचय करवाना।
- इकाई 11 के अध्ययन द्वारा हिन्दू संस्कृति के संरक्षक एवं दर्शन शास्त्र को अद्वैत के अकाट्य सिद्धांत की शिला पर आरूढ़ कर सकने वाले युवा योगी की आदर्श जीवन धारा का ज्ञान करवाना।
- इकाई 12 के अध्ययन द्वारा नाथ संप्रदाय के अवतारी व्यक्तित्व एवं हठ्योग के पुरोधा भगवान शंकर के अवतार गुरू गोरखनाथ के योग विज्ञान का परिचय करवाना।

उपरोक्त चारों योग के व्यक्तियों के अध्ययन उपरांत आप योग के अनेक सिद्धांतों उनकी दर्शनिक पृष्टभूमि एवं व्यवहारिक चेतना के धरातल को सहज ही छू सकने में समर्थ हो पायेगें।

3.2 विषय प्रवेश

खण्ड 4 में योग विज्ञान के प्राचीन उपदेष्टा शीर्षक के अंतर्गत यहाँ हम केवल उन यौगिक व्यक्तित्वों का अध्ययन करवाने की चेष्टा कर रहे हैं जिनका ऐतिहासिक इतिवृत असंदिग्ध एवं पूर्ण स्पष्टता के साथ प्राप्य है साथ ही साथ इन व्यक्तित्वों के अध्ययन के बिना योगदर्शन एवं योग साधना की सहजता बाधित होती है।

महर्षि पतंजलि योगविज्ञान के **आद्यप्रवर्तक** है। इनका विस्तृत चरित्र **''पतंजलिचरित'** और **'लधुमुनित्रिकल्पतरू''** में प्राप्त होता है। ऋषियों के नामों के अंतर्गत महर्षि पतंजलि का नाम भी बड़े आदर से लिया जाता है। व्याकरण के ग्रंथों के अनुसार ये अपने पिता की **अंजली** में अर्ध्यदान करते समय दिव्य रूप से **उर्ध्वलोक** से आ गिरे, अतः इनका नाम **पतंजलि** पडा। यह इनके योग के प्रभाव का ही मूर्त रूप था। इनकी कृतियाँ यद्यपि अनेक हैं, पर **योगसूत्र** सबसे प्रमुख है। योग दर्शन का यह आधारभूत ग्रंथ है। यह ग्रंथ सूत्रात्मक है। यह चार भागों (पादों या अध्यायों) में विभक्त हे। प्रथम भाग **समाधिपाद** में 51 सूत्र, द्वितीय भाग **साधनपाद** में 55 सूत्र, तृतीय भाग **विभूतिपाद** में 55 तथा अंतिम भाग **कैवल्यपाद** में 34 सूत्र हैं। इस प्रकार योगसूत्र ग्रंथ में कुल 195 सूत्र निबद्ध है। **व्याकरण महाभाष्य**, वैदिक उपनिदानसूत्र तथा आयुर्वेद की चरक संहिता भी इन्ही की रचना के रूप में मानी जाती है। इस संदर्भ में कहा गया है कि –

योगेन चित्तस्य पदेन वाचां मलं शरीरस्य च वैद्यकेन।
योऽपाकरोत्तं प्रवंर मुनीनां पतंजलिं प्राजंलिरानतोऽस्मि।।

महर्षि पतंजलि के योदशर्दन में स्वयं **भगवान् वेदव्यास** का भाष्य प्राप्त होता है, जो सांख्य प्रवचन भाष्य के नाम से प्रसिद्ध है। परवर्तो टीकाएँ तो अनेक हैं। योग दर्शन अत्यन्त प्राचीन दर्शन है और इससे सभी प्रकार के आध्यात्मिक, अधिभौतिक तथा आधिवैदिक सिद्धियों के लाभ प्राप्त होते हैं। साधक बड़ी सरलता से इस मार्ग पर देवताओं का सांनिध्य प्राप्त कर उनकी शक्तियों का लाभ उठा सकता है। योग सूत्र 2/44 के अनुसार –

''स्वाध्याया दिष्ट देवता सम्प्रयोगः''

महर्षि वशिष्ट ब्रह्मशक्ति के मूर्तिमान् स्वरूप तपोनिध व्यक्तित्व की धनी है। इनके कल्याणकारी दिव्य उपदेशों, चरित्र तथा उनकी योगचर्चाओं एवं सदुपदेशों से पुराणेतिहास तथा धर्मशास्त्रादि ग्रंथ भरे पड़े है। पुराणों में इनके अविर्भाव की अनेक कथाएँ हैं। सृष्टि के आरंभ में प्रथम कल्प में ब्रह्माजी के मानस पुत्र के रूप में उदभूत हुए। कही–कहीं ये मित्रावरूण के पुत्र मैत्रावारूणि तथा कहीं अग्नि के पुत्र आग्नेय कहे गये है। कल्पभेद से ये सभी बातें ठीक हैं। महर्षि वशिष्ट सप्तर्षियों में से एक हैं और इनकी पत्नी अरून्धतीदेवी पतिव्रताओं में सर्वश्रेष्ठ हैं, उनका इनसे कभी वियोग नहीं होता और सप्तर्षि मण्डल में वशिष्ठ जी के साथ माता अरून्धती भी नित्य विद्यमान रहती है।

सृष्टिकर्ता ब्रह्माजी द्वारा यह ज्ञात होने पर कि आगे चलकर सूर्यवंश में मर्यादापुरूषोत्तम भगवान् श्रीराम अवतरित होगें, इन्होंने सूर्यवंश का पौरोहित्य कर्म करना स्वीकार कर लिया। जब कभी अनावृष्टि अतिवृष्टि या कोई अन्य विघ्न आते तब ये अपने योगबल से, तपोबल से उसको दूर कर देते थे। निराश राजा भागीरथी आपकी कृपा से ही गंगाजी को लाने में समर्थ हो सके। महाराज दिलीप के संतान न होने पर उन्हें संतान प्राप्ति के लिए **गो सेवा** का **कर्मयोग** आपने बतलाया। राजा दशरथ के पुत्रोष्टि यज्ञ के संचालक एवं भगवान श्रीराम के अवतारों में आप सहयोगी बने। इनकी योग साधना अतुलनीय रही।

आचार्य शंकर अद्वैत वेदान्त के प्रतिष्ठाता तथा सन्यासी संप्रदाय के गुरू माने जाते हैं। उनकी प्रतिमा अपूर्व थी, उनकी साधना अलौकिक थी। अपनी तेजस्विता तथा दिव्यज्ञान के फलस्वरूप ही उन्होंने हिन्दू धर्म के ह्रास को रोकने में विजय पाई। आचार्य शंकर केवल अद्वैतवादी ही नहीं थे वरन् वे द्वैत तथा विशिष्टद्वैत को भी मान्यता देते थे। वास्तविकता यह है कि इन्हें वे अद्वैतवाद तक पहुँचने की सीढ़ी मानते थे। आचार्य शंकर ने हिन्दू धर्म में अनेक आवश्यक एवं निर्माणकारी सुधार किये और उसे पुष्ट नींव पर पुनरूत्थापित किया। इन्होंने भारत के चारों कोनों में चार मठों की रचना कर भारतवर्ष को आध्यात्मिक साधना, सांस्कृतिक सामंजस्य और एकता एवं अखण्डता

का बड़ा दुरूहकार्य अपने योगबल से पूर्ण किया। आचार्य शंकर का प्रमाणिक जीवन चरित्र शंकर विजय और शंकर दिग्विजय में प्राप्त होता है। इनमें मतभेद है किन्तु फिर भी उनकी अलौकिक प्रतिभा, तत्वज्ञान, चरित्रबल तथा लोककल्याणकारी कार्यो का निदर्शन काल के प्रभाव से अप्रभावित सतत् आज भी विद्यमान् है एवं योग साधना के पीपासुओं का मार्गदर्शन कर रहा है।

भारतीय योग साधना एवं योगमार्ग के उन्नायक के रूप में महायोगी गोरखनाथ का व्यक्तित्व एवं कृतित्व अप्रतिम है। गोरखनाथ जी के समय के संबध में विद्वानों में पर्याप्त मतभेद है। पारम्परिक नाथ साहित्य में उन्हें नित्यनाथ की संज्ञा दी गई है और इस प्रकार उनका व्यक्तित्व कालातीत स्वीकार किया गया है। गोरखनाथ जी के योगमार्ग को नाथयोग कहते है। इस पंथ की धारणा है कि योगमार्ग के आदि प्रवर्तक आदिनाथ स्वयं भगवान शंकर है। गोरखनाथ जी भी शिव के अवतार है। **नाथयोग** को **सिद्धमत** एवं **अवधूत मत** भी कहते है। नाथ पंथियों के अनुसार नाथ ही **सच्चे सिद्ध** है। इनके द्वारा अनेक योग के ग्रंथों की रचना की गई।

इस खण्ड में इन्ही चार योग श्रेष्ठ विद्धवतजनों के योग उपदेश का विस्तारपूर्वक अध्ययन किया जावेगा।

4.3 इकाई 9 महर्षि पतंजलि

4.3.1 महर्षि पतंजलि की स्तुति

महर्षि पतंजलि भारतीय षडदर्शन में एक **"योग दर्शन"** के प्रणेता महर्षि है। भारतीय परम्परा के अनुसार विशुद्ध मानवता को समर्पित शक्तियों को प्रणाम करके उनके चरित्र का गुणगान अवश्य किया जाता हे। लुप्त हो रही इस परिपाटी को पुनःस्थापन के उद्देश्य से सर्वप्रथम हम महर्षि पतंजलि को निम्नोक्त प्रकार से प्रणाम करेगें।



योगेन चित्तस्य पदेन वाचां मलं शरीरस्य च वैद्यकेन।
योऽपाकरोत्तं प्रवरं मुनीनां पतञ्जलिं प्राञ्जलिरानतोऽस्मि॥

जो मुनियों में श्रेष्ठ उन पतंजलि को हाथ जोड़कर प्रणाम करता हूं, जिन्होंने योग (योगसूत्र) से अन्तःकरण के, पद (व्याकरण-महाभाष्य) से वाणी के और वैद्यक (चारक ग्रन्थ के द्वारा) से शरीर के मैल को दूर किया है।

जयन्ति वाचः फणिभर्तुरान्तरस्फुत्ततमस्तोमनिशाकरत्विषः।
विभाव्यमानाः सततं मनांसि याः सतां सदानन्दमयानि कुर्वते।।

जो अन्तःकरण के अज्ञानमय अन्धकार का निवारण करने के लिए चन्द्रमा की किरणों के समान प्रकाशित हो रही हैं तथा निरन्तर अनुशीलन करने पर जो साधु पुरूषों के मन को सदा आनन्दमय करती रहती हैं, शेषावतार महर्षि पतंजलि की वे वाणियाँ सर्वोपरि विराजमान हैं।

पतंजलि मुनेरूक्तिः कात्यपूर्वा जयत्यसौ।
पुंस्प्रकृत्योर्वियोगोऽपि योग इत्युदितो यथा।।

महर्षि पतंजलि की योगदर्शन रूप ऐसी अपूर्व वाणी की जय हो, जिसके द्वारा पुरूष और प्रकृति के वियोग को भी योग कहा गया है।

योगेन चित्तस्य पदेन वाचां मलं शरीरस्य च वैद्यकेन।
योऽपाकरोत्तं प्रवरं मुनीनां पतञ्जलिं प्राञ्जलिरानतोऽस्मि॥
पतंजलि को हाथ जोड़कर प्रणाम करता हूं, जिन्होंने योग (योगसूत्र)
ण के, पद (व्याकरण-महाभाष्य) से वाणी के और वैद्यक
क ग्रन्थ के द्वारा) से शरीर के मैल को दूर किया है।

4.3.2 महर्षि पतंजलि का परिचय

समुद्रगुप्त के कृष्ण चरित में पतंजलि के भाष्य, चरकसंहिता और योग सूत्र के साथ ही योगव्याख्यान रूप उनके **महानंद** काव्य की चर्चा प्राप्त होती है। पतंजलि को **अहिपति, फणमृतां मर्ता** अथवा शेष का अवतार भी कहा गया है। शेषावतार के रूप में पतंजलि की एक प्राचीन प्रतिमा चिदम्बरम् के नटराज मंदिर के पूर्वो गोपुरम् में प्रदर्शित है। कलिंगराज पुरूषोत्तमदेव ने पतंजलि को गोनर्दीय कहा हे। अतः ऐसा जान पड़ता है कि वे गोनर्द के निवासी थे। सुत्तनिपात के पारायणवग्ग में गोनर्द को उज्जैन और विदिशा के मध्य बताया गया है। साहित्यिक, पुरातात्विक भौगोलिक तथाा सार्थपथ के औचित्य के आधार पर यह स्थल भोपाल का समीपवर्ती ग्राम गोंदरमऊ है। यहाँ बिथनखेडी (विष्णुक्षेत्र) या आचारपुरा (आर्चायपुर) जैसे तात्कालिक परिवेश के गांव भी है। यह गांव तत्कालीन दशार्ण जनपद का है, जहां राजा अग्निमित्र शुंग का शासन था। जो सेनापति पुष्यमित्र का पुत्र था, पुष्यमित्र का अश्वमेघ सम्पन्न करवाने में पतंजलि का भी सहयोग रहा था। पतंजलि को गोणिकापुत्र भी कहा जाता है। अतः उनकी माता का नाम गोणिका था। गोदरमऊ के पास गोणीपुरा गांव भी है। यह गोनर्द या गोंदरमऊ नरसिंहगढ़ मार्ग पर गांधीनगर बस अड्डे से दो किलोमीटर उत्तर में है।

4.3.3 महर्षि पतंजलि की रचनाएँ

महर्षि पतंजलि हमारी आचार्य परंपरा में एक ऐसे व्यक्तित्व हैं, जिनके माध्यम से प्राचीन भारतीय चिंतन का नवाविष्कार संभव है, तथा आधुनिक ज्ञान–विज्ञान के अनुशीलन के लिए भी वे एक कसौटी बन सकते हैं। ईसा पूर्व की शताब्दियों में भारत की वैज्ञानिक और दार्शनिक चेतना परिपक्व हो चुकी थी। षडदर्शनों में योगदर्शन को 80 ई.पू. व्यवस्थापित और शास्त्रबद्ध करने का प्रवर्तक कार्य महर्षि पतंजलि कर चुके थे। यद्यपि योगशास्त्र मे हिरण्यगर्भ का योग का आदि वक्ता माना गया है – **"हिरण्यगर्भो योगस्य वक्ता नान्यः पुरातन"** (वृहदयोगियाज्ञवल्कय स्मृति 12, 5) तथापि इस शास्त्र का सर्वांगपूर्ण रूप में प्रदर्शित करने का श्रेय महर्षि पतंजलि को है जिन्होंने सर्वप्रथम योगसूत्र की रचना करक इस शास्त्र का व्याख्यान किया। यह योगसूत्र ही **योगशास्त्र** का मूलग्रंथ है।

इस पर सबसे प्राचीन उपलब्ध भाष्य **व्यास** का है जो **व्यास भाष्य** के नाम से प्रसिद्ध है। व्यास भाष्य में पंचशिख वार्षगव्य और जैगीषव्य इन तीन सांख्य और योग के आचार्यो के प्रवचन आदर के साथ उद्घृत किये गये हैं। किन्तु इस समय इन आचार्यो के ग्रंथ अनुपलब्ध हैं। व्यास भाष्य पर वाचस्पति मिश्र की तत्व वैशारदी, विज्ञानभिक्षु का योगवार्त्तिक तथा भोजदेव की भोजवृत्ति का विद्वानों में विशेष आदर है। भोजवृत्ति को ही राजमार्तण्ड कहते हैं। भोजवृति योग के सिद्धान्तों की उत्तम व्याख्या है। इसके अतिरिक्त रामानन्द की मणिप्रभा, सदाशिवेन्द्र सरस्वती का योग सुधाकर तथा राधवानन्द सरस्वती का पातंजलरहस्य आदि टीकाएँ भी प्रसिद्ध है। ओमानन्द तीर्थ ने पातंजल योग प्रदीप नामक एक सरल और सुबोध ग्रंथ लिखकर पतंजलि के योग का सामान्य परिचय प्रस्तुत किया। अन्य प्रमुख योगसूत्र वृत्तियाँ इस प्रकार है –

(1) नागेशभट्ट कृत योगसूत्र वृत्ति (2) भावागणेश कृत सूत्रवृत्ति (3) पं. आनन्द कृत योग चन्द्रिका (4) उदयंकर कृत योगसूत्र वृत्ति (5) क्षेमानन्द दीक्षित कृत नवयोगकल्लोलवृत्ति (6) ज्ञानानन्द कृत योगसूत्रवृत्ति (7) नारायण कृत गुढ़ार्थ दीपिका अभिनवभाष्य (8) महादेव योगसूत्रवृत्ति (9) रामानुज कृत योगसूत्रवृत्ति (10) वृन्दावन शुक्ल प्रणीत योगसूत्रवृत्ति (11) शिवशंकरकृत योगसूत्रवृत्ति (12) राधवानन्द कृत पातंजल रहस्य (13) राधानन्द कृत पातंजल रहस्य प्रकाश (14) उमापतिमिश्र कृत योगसूत्रवृत्ति (15) स्वामी हरिप्रसाद लिखित योगसूत्र वैदिक वृत्ति (16) पं. बलदेव मिश्रकृत योगप्रदीपिका (17) नारायण तीर्थ कृत योग सिद्धांत चन्द्रिका (18) वल्लभाचार्य कृत किरण टीका तथा (19) ब्रम्हानंद कृत ज्योत्सना टीका महत्वपूर्ण ग्रंथ है।

4.3.3 महर्षि पतंजलि का उपदेश

महर्षि पतंजलि एक मात्र ऐसे व्यापहारिक उपदेशक है जिनके उपदेश निम्न से निम्न स्तर से लेकर उच्च से उच्च स्तर प्राप्त व्यक्तियों को **स्वरूप स्थिति** प्राप्त करवाने में सहायक है। महर्षि पतंजलि ने साधक को स्वरूप में स्थित होने की युक्ति **योग सूत्र** के व्यवस्थित एवं अनुशासित ज्ञान द्वारा उपेदिशत किया है। अन्तः साक्ष्य से अर्थात उनके ग्रंथों के प्रमाणों से स्पष्ट होता है कि वे अजर–अमर और सभी सिद्धियों से समायुक्त थे। केवल लोकोपकार के लिए ही उन्होंने ग्रंथ का प्रणयन किया, जिससे व्यास, शुकदेव, गौडपादाचार्य और शंकराचार्य एवं अन्य आचार्य भी अत्यन्त प्रभावित हुए। आचार्य व्यास ने पुराणों के अतिरिक्त **ब्रह्मसूत्र** के चौथे अध्याय में योगपाद संनिवेश किया है, जो मार्गदर्शन पर ही आधृत है। जैसे **"स्थिरसुखमासनम"** के स्थान पर 'आसीनः सम्भवात्' आदि सूत्र ठीक उसी प्रक्रिया में सभी साधनों को निर्दिष्ट करते हुए मोक्षातक ले जाते हैं, जिस पर शंकराचार्य आदि के विलक्षण भाष्य हैं।

महर्षि पतंजलि का उपदेश है कि यम नियमादि कोई एक भी साधन ठीक ढंग से आरंभ करने पर भगवत्कृपा से योग की स्वयं साधक में प्रवृत्ति हो जाती है। योग–प्रवृत्तियों के प्रथम लक्षण में भगवान पतंजलि स्वयं ज्योतिष्मती, गंधवती, स्पर्शवती, रूपवती, व रसवती इन **पाँच योगप्रवृत्तियों** में से किसी एक का लक्षण प्रकट हो जाने से योगशक्ति में उसके प्रवेश का लक्षण बतलाया तथा उसे सभी देवी देवता, दिव्य पदार्थ शास्त्र आदि के वचनों में, परलोक में पूर्ण विश्वास हो जाता है। इससे उसका शीघ्र कल्याण हो जाता है। इस प्रकार थोड़ा सा भी प्रयास इस योगचर्या में चलने पर महान् कल्याणकारी कहा गया है। श्रीमदभगवत गीता में भगवान श्री कृष्ण भी यही उपदेश करते हैं कि **"स्वल्पमप्यस्य धर्मस्य त्रायते महतो भयात्"।** इस योग का प्रभाव भारत में नहीं संपूर्ण विश्व में शनैः शनैः प्रचलति हो गया, जिसका मूलतः श्रेय महर्षि पतंजलि को है। महर्षि पतंजलि के उपदेश अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रम्हचर्य, त्याग की वृत्ति, पवित्रता (शौच) स्वाध्याय का अभ्यास तथा विश्वप्रेम की बातें सभी धर्मों के सार रूप ही है और यही योग का प्राथमिक उपदेश भी है जो सभी को मान्य है। मनुष्य जीवन की सच्ची सार्थकता योगमार्ग के आश्रय से **अखण्ड शान्ति** एवं **परम आनन्द** की प्राप्ति ही है जो बिना **पतंजलि प्रणीत राजयोग** के संभव ही नहीं है।

बोध प्रश्न :

टिप्पणी क : अपने उत्तर नीचे दिये गये स्थान में लिखें।

ख : इकाई के अंत में दिये गये उत्तरों से अपने उत्तर मिलाइए।

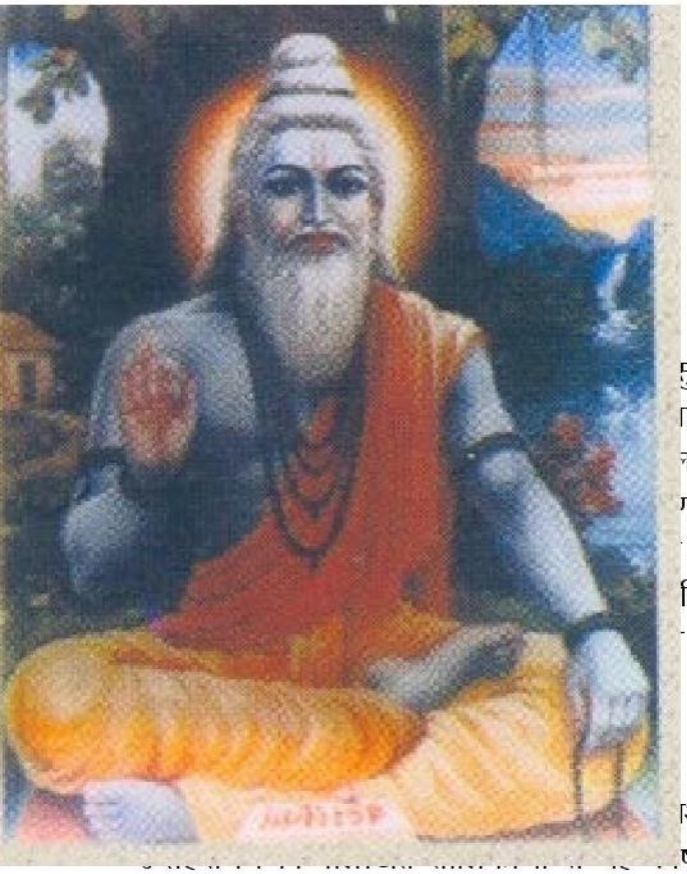
1. महर्षि पतंजलि के योगसूत्र का परिचय दीजिए ?

2. महर्षि पतंजलि का उपदेश बताईये ?

4.4 इकाई 10 महर्षि वशिष्ठ

4.4.1 महर्षि वशिष्ठ की स्तुति

भक्तियोगियों के लिए श्रीमद्भागवत और श्रीरामचरित मानस का तथा कर्मयोगियों के लिए श्रीमद्भगवद्गीता का जो महत्व है वही महत्व **ज्ञानयोगियों** के लिए **श्री योगवशिष्ठ** का है।



सुखदं केवलं ज्ञानमूर्तिं
सदृशं तत्वमस्यादिलक्ष्यम्।
मचलं सर्वधीसाक्षिभूतं
रहितं श्रीवशिष्ठं नताःस्म।।

ब्रह्मानन्द की प्राप्ति कराने वाले परम सुखद, अद्वितीय ज्ञानमूर्ति, द्वन्द्वों दि वेदान्त महावाक्यों के लक्ष्यार्थ रूप, नित्य, निर्मल, निश्चल, संपूर्ण तीनों **गुणों से रहित हैं** उन परब्रह्मास्वरूप श्रीवशिष्ठ जी के हम

ओं में महर्षि वशिष्ठ को सभी ने अपने में शामिल किया हुआ है। ष्ट हो सकेगा।

(1) शड्कर परम्परा	(2) सूत परम्परा	(3) शाण्डिल्य परम्परा	(4) महाभारत परम्परा
नारायण	महेश्वर	ब्रह्म	हिरणय गर्भ
ब्रह्मा	बृहस्पति	वशिष्ठ	वशिष्ठ
वशिष्ठ	स्कन्द	शक्ति	नारद
शक्ति	वशिष्ठ	पराशर	भीष्म पितामह
पराशर	पराशर	व्यास	
व्यास	व्यास		
शुक	सूत	ब्रह्मरात्र, शाण्डिल्य, मधु	
गौडपाद			
गोविन्द			
शड्कर			

महर्षि वशिष्ठजी जो व्यासवेद के प्रपितामह थे, एवं भगवान श्रीराम के **शिक्षा गुरू** हुये उन्होंने स्वयं अपना परिचय योगवाशिष्ठ के अनुसार श्रीरामचन्द्र जी को दिये उपदेश में इस प्रकार दिया है। महर्षि वशिष्ठ ने भगवान श्रीराम की तत्वज्ञान प्राप्ति की इच्छा का समाधान करने के हेतु बतलाया कि जब ब्रम्ह्मा इस जगत् की सृष्टि कर चुके और संसार में मनुष्य कर्म के नियमानुसार सुख दुःख के भँवर में फँस गए, तो उनको मनुष्यों की इस दीन दशा को देखकर बहुत करूणा उपजी। उन्होंने सोचा कि कोई ऐसा उपाय मनुष्यों को बताना चाहिये जिसके द्वारा वे इस संसार चक्र में निवृत होकर परमानंद की प्राप्ति और अनुभव कर सकें। यह सोचकर उन्होंने तप, धर्म, दान, सत्य और तीर्थ इत्यादि, उपायों की रचना की, किन्तु उनको यही जान पड़ा कि इनमें से कोई भी उपाय ऐसा नहीं है जिसके द्वारा मनुष्य **निर्वाण (मोक्ष)** प्राप्त कर सके। इस विचार में ध्यानस्थ ब्रम्ह्म के संकल्प से मैं अक्ष की माला ओर कमण्डलु धारण किये हुए एक सर्वज्ञ देहधारी मनुष्य के रूप में उत्पन्न हुआ।

महर्षि वसिष्ठ सप्तर्षियों (आकाश स्थित सात तारों का पुंज) में से एक हैं और इनकी पत्नी अरून्धती देवी पतिव्रताओं में सर्वश्रेष्ठ हैं, उनका इनसे कभी वियोग नहीं होता और सप्तर्षि मण्डल में वशिष्ठजी के साथ **अरून्धती माता** भी सदैव विद्यमान रहती है।

महर्षि वशिष्ठ ने सूर्यवंश में मर्यादापुरूषोत्तम भगवान् श्रीराम के अवतार होने के निमित्त ही सूर्यवंश का पौरोहित्य कर्म स्वीकार किया। कुलगुरू के रूप में जब कभी अनावृष्टि–अतिवृष्टि होती, तब ये अपने योगबल से – तपोबल से उनकों दूर कर देते थे। महर्षि वशिष्ठ राजा भागीरथी के द्वारा गंगा का अवतरण, राजा दिलीप को संतान प्राप्ति हेतु **गौ सेवा** का व्रत तथा महाराज दशरथ के पुत्रेष्टि यज्ञ तथा भगवान श्रीराम के अवतार में सहयोगी रहें। महर्षि वशिष्ठ

मनुष्यों के साथ साथ सभी देवताओं, ऋषि–महर्षि एवं योगिजनों के परम उपास्य है। अरून्धती के साथ सप्तर्षि मण्डल में स्थिर होकर ये वर्तमान में भी जगत् के कल्याण हेतु सतत् संलग्न है।

4.4.3 महर्षि वशिष्ठ की रचानाएँ

महर्षि वशिष्ठ गुरू परम्पारा से ब्रम्ह्य के **मानस पुत्र** में स्थान रखते है, अतः उनके द्वारा ज्ञान का कोई भी क्षेत्र नहीं छूटा है जिस पर महर्षि वशिष्ठ के व्याख्यान न हो। इनका काल मौखिक ज्ञान हस्तांतरण का था इस कारण परिवर्ति समय में इनके उपदेशों का संकलन मूल रूप में नहीं हो सके है।

योग वेदान्त के उपदेष्टा महर्षि वशिष्ट के उपदेश महर्षि बाल्मीकी ने महारामायण नाम से संकलित किया था यही उपदेश वशिष्ठ नामक ग्रंथ है एवं इस ग्रंथ के अंश निम्न उपनिषदों में भी प्राप्त होते है –

1.	महा उपनिषद्	: केवल पहला भूमिका अध्याय छोड़कर शेष 510 श्लोकों का यह उपनिषद योगवाशिष्ठ ही है।
2.	अन्नपूर्णा उपनिषद्	: आरंभ के 17 श्लोक छोड़कर संपूर्ण ग्रंथ
3.	अक्षि उपनिषद्	: संपूर्ण ग्रंथ
4.	मुक्तिकोपनिषद्	: दूसरा अध्याय जो मुख्य अध्याय है।
5.	वराह उपनिषद्	: चौथा अध्याय।
6.	बृहत्संन्यासोपनिषद्	: 50 श्लोक।
7.	शान्डिल्य उपनिषद्	: 18 श्लोक।
8.	याज्ञवाल्कय उपनिषद्	: 10 श्लोक।
9.	योगकुण्डली उपनिषद्	: 3 श्लोक।
10.	पैंगल उपनिषद्	: 9 श्लोक।

4.4.4 महर्षि वशिष्ठ का उपदेश

गुरूकुल में प्रवेश करने पर सबसे पहले गुरू आचार की शिक्षा देते थे। इसलिए वे **आचार्य** कहलाते थे – **'आचारं ग्राहयतीति आचार्यः'** रघुकुल के महाराज दिलीप के प्रश्नों के उत्तर देते हुये महर्षि वशिष्ट ने ग्रहस्थों हेतु निम्न आचार के नियम बतलायें थे –

(I) दिन के प्रथम भाग के कर्म :–

1. ब्रम्हमुहूर्त में उठे। हाथ–मुँह धोकर भगवान का चिन्तन करें।
2. प्रातः स्मरणीय श्लोकों को पढ़े, फिर कर्म और अर्थ का चिन्तन करें।
3. तत्पश्चात् शौच से निवृत होवे। यदि आवास वन या गाँव में हो तो नैर्ऋत्यकोण की ओर मल–मूत्र का त्याग करें। दिन और संध्या के समय उत्तर की ओर मुँह करे एवं रात को दक्षिण की ओर।
4. मल त्याग के समय थूकना या गहरी श्वास खींचना मना है।
5. माथा ढ़ँका होना चाहिये एवं मौन रहना चाहिये।
6. मल को नहीं देखना चाहिये तथा ज्यादा समय नहीं लगाना चाहिये।
7. लिंग एवं गुदा को क्रमशः एक एवं पाँच बार जल एवं मृतिका से धोना चाहिये।
8. हाथ पैर ठीक प्रकार धोकर बुल्ला करना चाहिये।
9. आचमन के समय हाथ घुटनों के भीतर रखना चाहिये।
10. दातौन का कभी कभी निषेध है किन्तु मंजन का निषेध नहीं है। मंजन के साथ जीभी अवश्य करना चाहिये। जीभी सदैव करना चाहिये।
11. शिखा बाँध कर आचमन करना चाहिये।

12. तदुपरान्त स्नान कर स्वच्छ वस्त्र धारण कर आचमन कर फिर चन्दन इत्यादि लगाना चाहिये। तथा मन को एकाग्र कर संध्योपासन (पूजा पाठ इत्यादि) करना चाहिये। पूजा पंच–पूजा करें। एवं दान प्रत्येक दिन कुछ न कुछ देना चाहिये। यह संपूर्ण विवरण दिन के प्रथम भाग का कार्य हुआ।

(II) दिन के द्वितीय भाग के कर्म

1. दूसरे भाग में स्वाध्याय करना चाहिये।
2. इसी भाग में फूल, कुश, समिधा का संग्रह करना चाहिये।

(III) दिन के तृतीय भाग के कर्म

1. इस भाग में धन का उपार्जन (जीविका का साधन) करना चाहिये।

(IV) दिन के चतुर्थ एवं पंचम भाग के कर्म

1. इस भाग में पुनः स्नान करके। ब्रह्मयज्ञ की पूर्ति के लिए स्वाध्याय करना चाहिये। फिर देवताओं, ऋषियों और पितरों का तर्पण करना चाहिये।
2. मध्यान्ह–संध्या और जप के बाद पंचमहायज्ञ करना चाहिये। इसके बाद पूर्व की ओर मुंहकर भगवान का प्रसाद (भोजन) ग्रहण करें। शास्त्र से निषिद्ध वस्तुओं (अपथ्य) का सेवन नहीं करना चाहिये।
3. भोजन के बाद आचमन कर, मुख, नाक और आँख का स्पर्श करनी चाहिये तत्पश्चात् इष्ट देव का स्मरण करना चाहिये।

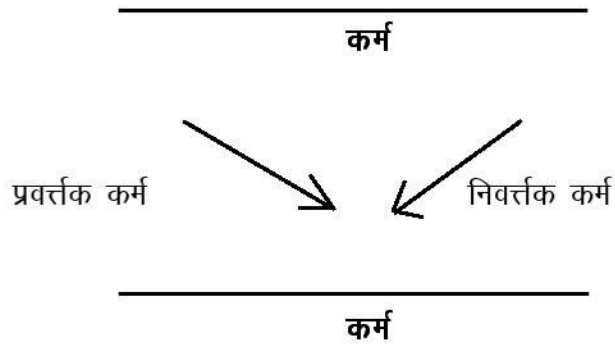
(V) दिन के छठे एवं सातवें भाग के कर्म

1. दिन के छठे या सावतें भाग में शास्त्रों का अध्ययन करना चाहिये।

(VI) दिन के आठवें भाग के कर्म

1. आठवें भाग में जीविका का उपार्जन करनी चाहिये। इसके बाद सायं–संध्या और जप करें। इसके बाद दिशाओं और दिकपालों को पृथक–पृथक नमस्कार करना चाहिये।
2. इसके बाद भोजन के समय (दोनों समय) बलि वैश्वदैव करना चाहिये।
3. इसके उपरांत पूर्व की ओर सिर कर के भगवान् का चितंन करते हुये सोना चाहिये।

वशिष्ठ जी वैदिक आचार के परिपालन को मुमुक्षु के लिए **अत्यन्त आवश्यक** मानते है। वशिष्ठ संहिता के अनुसार कर्म निम्नलिखित प्रकार के है –



ब्राह्य शारीरिक — आभ्यन्तर (मानसिक) (यह श्रेष्ठ कर्म है)

(1) **प्रवर्त्तक कर्म** :– आकांक्षा से प्रेरित होकर किये जाने वाला कर्म जो जगत् में बंधन के कारण होते है। **प्रवर्त्तक कर्म** कहलाते है।

(2) **निवर्त्तक कर्म** :– बिना किसी आकांक्षा के स्वाभाविक धर्म समझ कर किये जाने वाले कर्म **निवर्त्तक**

कर्म कहलाते है।

महर्षि वशिष्ठ जी ज्ञान योग का उपदेश करते हुऐ सार रूप में यह कहना चाहते है कि हद्रय से वासनाजाल के सर्वथा उच्छिन्न हो जाने पर प्राण अपने आप नियमित और शांत होकर समाधि की ओर प्रवृत हो जाते है अथवा यदि विधि पूर्वक **प्राणायाम** किया जाय तो वासनाजाल क्षीण होकर समाधि तथा **ब्रम्हा–साक्षात्कार** की स्थिति होने लगती है। विचार और मनन के द्वारा संसार ब्रह्मरूप से परिवर्तित दिखाई देता है यदि मन मनन करना छोड़ दे और मनोरथों से सर्वथा दूर हट जाय तो मोक्ष अपने आप उपस्थित हो जाता है। मन के द्वारा विषयों का चिन्तन मनन ही **महान क्लेश** है। अतः आत्मा के अवलोकन के लिए प्राणायाम और **मनोनिरोध** का आश्रय ग्रहणकर वासनाजाल का सर्वथा परित्याग कर देना चाहिये।

जब तक मन विलीन नहीं होता तब तक वासना का सर्वथा विनाश नहीं होता और जब तक वासना विनष्ट नहीं होती तब तक चित्त शांत नहीं होता। जब तक परमात्मा के तत्व का यथार्थ ज्ञान नहीं होता, तब तक चित्त को शांति कहाँ और जब तक चित्त की शांति नहीं होती तबतक परमात्मा के तत्व का यथार्थ ज्ञान नहीं होता। जब तक वासना का सर्वथा नाश नहीं होगा, तब तक तत्वज्ञान कहाँ से होगा और जबतक तत्व ज्ञान नहीं होता, तबतक वासना का सर्वथा विनाश नहीं होगा। इसलिए

(1) परमात्मा का यथार्थ ज्ञान (2) मनोनाश और (3) वासनाक्षय

ये तीनों ही एक दूसरे के कारण हैं। ये दुःसाध्य है किन्तु असाध्य नहीं हैं। इस संसार की स्थिति सैकड़ों जन्म जन्मान्तरों से मनुष्यों के द्वारा अभ्यस्त है, अतः चिरकाल तक योगाभ्यास किये बिना वह किसी तरह नष्ट नहीं हो सकती। इसलिये चलते–फिरते, श्रवण करते, स्पर्श करते, सूँघते, खड़ेरहते, जागते, सोते सभी अवस्थओं में परम कल्याण के लिए इन तीनों के अभ्यास में लगे रहना चाहिये। तत्वज्ञों का मत है कि वासनाओं के परित्याग के समान ही प्राणायाम भी एक उपाय है, इसलिए वासन परित्याग के साथ–साथ प्राण निरोध का भी अभ्यास करना आवश्यक है। चिरकाल तक प्राणायाम के अभ्यास से योगाभ्यास में कुशल गुरू प्रदत्त युक्ति से स्वास्तिक आदि आसनों की सिद्धि से और उचित भोजन से प्राण स्पन्दन का निरोध हो जाता है। अध्यात्मविद्या की प्राप्ति, साधु, संगति, वासना का सर्वथा परित्याग और प्राणस्पन्दन का निरोध ये ही युक्तियाँ चित्त पर विजय पाने के लिए निश्चित रूप से दृढ़ उपाय है इनसे तत्काल ही चित्त पर विजय प्राप्त हो जाती है और साधक को परम तत्व का साक्षात्कार हो जाता है।

4.5 इकाई 11 : आदि गुरु शंकराचार्य

4.5.1 आदि गुरु शंकराचार्य की स्तुति

आचार्य शंकर ने भारत वर्ष में अनेक आवश्यक एवं निर्माणकारी सुधार किये और उसे पुष्ट नींव पर पुनरुत्थापित किया। भारत वर्ष की चारों दिशाओं में आचार्य शंकर ने चार मठों (पीठों की) स्थापना की जिनका मुख्य उद्देश्य है वेदान्त का प्रचार एवं प्रसार। इन मठों के माध्यम से आचार्य ने भारत वर्ष में आध्यात्मिक तथा सांस्कृतिक सामंजस्य एवं ऐक्य संस्थापन का महान कार्य किया। इस प्रखर दूरदर्शिता का भारतीय इतिहास में अद्वितीय स्थान है। इस महान कार्य के पीछे आचार्य शंकर का योग अध्यात्मबल और उनका निर्मल लोकल्याण का संकल्प था। निम्ननोक्त श्लोक में आदि गुरु परम्परा का स्तवन वर्णित है।

नारायणं पद्मभवं वशिष्ठं शक्तिं च तत्पुत्रपराशरं च।
व्यस शुकं गौडपदं महान्तं गोविन्दयोगीन्द्रमथास्य शिष्यम् ।
श्री शंकर्राचार्यमथास्य पद्म–पादं च हस्तामलकं च शिष्यम्।
तं त्रोटकं वार्तिक कारमन्यान् अस्मद् गुरुन्सन्ततमान तोऽस्मि।
श्रुति–स्मृति–पुराणानां आलयं करुणालयम।
नमामि भगवत्पादं शंकरं लोकशंकरम्।।
शंकरं शंकराचार्यं केशवं बादरायणम्।
सूत्रभाष्यकृतौ वन्दे भगवन्तौ पुनः पुनः।।

4.5.2 आदि गुरु शंकारचार्य का परिचय

भारत के पश्चिमी तट पर केरल प्रान्त में प्राचीन मलावार जिले की पेरियार नदी के तट पर बसे कालड़ी नामक ग्राम में एक नम्बूद्री ब्राह्मण परिवार में वैशाख शुक्ल तृतीया, सन् 686 ई. के दिन इनका अवतरण हुआ। इनके पिता श्री शिवगुरु एवं माता श्रीमती सुभद्रा विद्वान एवं धर्मनिष्ठ ब्राह्मण थे। सन्तानहीन होने पर दोनों ने भगवान शंकर की आराधना की फलस्वरुप स्वयं भगवान शंकर ने प्रकट होकर सर्वगुणसम्पन्न पुत्र होने का आर्शीवाद दिया और ऐसी मान्यता है कि लोककल्याण के लिए स्वयं भगवान शंकर ने अवतार लिया। इस आर्शीवाद के फलस्वरुप माता –पिता ने इनका नाम भी इसलिये शंकर रखा था।

जगत् गुरु शंकराचार्य बालक शंकर के रुप अपनी विशिष्टता के प्रमाण अत्यंत छोटी सी उम्र से ही देनें लगे थे। एक वर्ष की अवस्था होते –होते बालक शंकर अपनी मातृभाषा में अपने भाव प्रकट करने लगे और दो वर्ष की अवस्था में माता से पुराणादि की कथा सुनकर कण्ठस्थ करने लगे। तीन वर्ष की अवस्था में उनका चूड़ाकर्म करके उनके पिता स्वर्गवासी हो गये। पाँचवें वर्ष में यज्ञोपवीत करके उन्हें गुरु के घर पढ़ने के लिए भेजा गया और केवल सात वर्ष की अवस्था में ही वे वेद वेदान्त और वेदांगो का पूर्ण अध्ययन करके घर वापस आ गये। उनकी असाधरण प्रतिभा देखकर उनके गुरुजन भी आश्चर्य चकित रहते थे।

शिक्षा पूर्ण होने के उपरांत शंकर ने संन्यास मार्ग में प्रस्थान हेतु माता से आज्ञा मांगी किन्तु माता ने मातृ स्नेह वश इसे कठोर मार्ग समझकर एवं वशंवृद्धि में बाधक जानकर आज्ञा प्रदान नहीं की। प्रखर मेघा सम्पन्न मानवीय मनोभावों के विश्लेषक शंकर माता के बड़े भक्त एवं स्नेह रखने वाले थे। उनकी भावनाओं को ठेस पहुंचाकर वे सन्यास नही लेना चाहते थे। अतः उन्होनें बड़ी युक्ति से काम लिया एक दिन माता के साथ वे नदी में स्नान करने गये उन्हें नदी में एक मगर ने पकड़ लिया। इस स्थिति में पुत्र को संकट में देख माता व्याकुल होकर हाहाकार करने लगी इस अवसर पर शंकर ने माता को आवाज दी की हे माता यदि आप मुझे सन्यास लेने की आज्ञा दे दोगी तो यह मगर मुझे छोड़ देगा। माता ने तुरंत सन्यास हेतु आज्ञा दे दी। इस प्रकार शंकर को मगर ने छोड़ दिया। और माता की आज्ञा प्राप्त कर वे आठ वर्ष की बाल उम्र में घर से ज्ञान प्राप्ति की खोज में निकल पड़े जाते समय माता के कारुणमय नेत्रों को देख उन्हें वचन दिया कि हे माता मैं तुम्हारी अन्तिम अवस्था में तुम्हारे याद करने पर तुम्हारे पास अवश्य पहुँच जाऊँगा और हे माता मैं सिद्धियाँ प्राप्त कर तुम्हे तुम्हारे इष्ट का भी दर्शन करवाऊँगा।

घर से प्रस्थान करके शंकर गुरु की खोज में नर्मदा नदी के उद्गम स्थल अमरकंटक आये और वहाँ **स्वामी गोविन्द भगवत्पाद** से दीक्षा ली। गुरु ने इनका नाम **भगवतूज्यपादाचार्य** रखा। शंकर दीक्षित होकर गुरुपदिष्ट मार्ग से साधना में जुट गये और तीन वर्ष तक **ज्ञान, भक्ति**, और **कर्मयोग** की साधना एवं ज्ञान प्राप्त करने में जुटे रहें। इस अल्पकाल में ही योग की समस्त सिद्धियाँ प्राप्त कर एक महान् योगसिद्ध महात्मा हो गये। इनकी सिद्धि की परीक्षा कर गुरु ने प्रसन्न होकर **इन्हें काशी (वाराणसी)** जाकर वेदान्तसूत्र पर भाष्य लिखने की आज्ञा दीऔर इस आज्ञा का पालन करते हुऐ शंकर वाराणसी आ गये। यहाँ उनकी ख्याति दिनों दिन बढ़ने लगी लोग इनकी महान् प्रतिभा से आकर्षित होकर इनका शिष्यत्व प्राप्त करने लगे। इस क्रम में उन्हें इनका प्रथम योग्य शिष्य **सनन्दन के अवतार पद्यपादाचार्य** प्राप्त हुये। काशी में शिष्यों को पढ़ाने के साथ साथ ये ग्रन्थ भी लिखते रहते थे।

एक दिन भगवान विश्वनाथ ने चांण्डाल के रुप में गंगा स्नान को जाते वक्त मार्ग रोककर दर्शन दिये आचार्य शंकर भगवान के इस रुप को पहचान गये और स्तुति करने लगे। भगवान शंकर ने इन्हें ब्रह्मसूत्र पर भाष्य लिखने और सनातन धर्म के प्रचार करने का आदेश किया।

शंकर द्वारा वेदान्त सूत्र पर भाष्य पूर्ण करने के बाद एक दिन एक ब्रह्मण ने गंगातट पर इनसे एक सूत्र का अर्थ पूछा ? इस सूत्र के अर्थ को लेकर वहाँ आठ दिन तक शस्त्रार्थ हुआ। शास्त्रार्थ पूर्ण होने पर इन्हें ज्ञात हुआ कि स्वयं भगवान **वेदव्यास** ब्राह्मण के रुप में प्रकट होकर शास्त्रार्थ कर रहे थे। तब आचार्य शंकर ने इस धृष्टता हेतु क्षमा प्रार्थना की भगवान वेदव्यास ने प्रसन्न होकर इन्हें अद्वैतवाद का प्रचार करने का निर्देश दिया और इनकी सोलह वर्ष की आयु को इस निमित्त बत्तीस वर्ष कर दिया।

आचार्य शंकर अद्वैत वेदांत के प्रसार हेतु काशी से कुरुक्षेत्र फिर बदरिकाश्रम की ओर विभिन्न मत्तावलम्बियों से शास्त्रार्थ कर उन्हें परास्त करते हुए सतत् भ्रमण करने लगे। प्रयाग आकर महान उद्भट विद्वान कुमारिलभट्ट से शास्त्रार्थ किया तथा उनकी सलाह से नर्मदातट स्थित महिष्मती नगरी मण्डला के प्रसिद्ध आचार्य **मण्डन मिश्र**, से उनकी पत्नी भरती देवी की मध्यस्थता में शास्त्रार्थ कर विजयी होकर उन्हें अपना शिष्य स्वीकार कर उनका **नाम सुरेश्वाराचार्य** रखा। इसके उपरान्त सम्पूर्ण भारत का भ्रमण एवं **चार मठों** के निर्माण का कार्य किया। और इन मठों के माध्यम से **औपनिषदिक् सिद्धांतों** की शिक्षा–दीक्षा की परम्परा की नींव रखी जिसकी धारा आज भी अविरल प्रवाहित है।

4.5.3 आदि गुरु शंकराचार्य की रचनायें

वेदान्त के प्रचार में शकराचार्य द्वारा स्थापित चार मठों **गोर्वधन मठ** (जगन्नाथपुरी) **ज्योर्तिमठ** (बदरी नारायण के पास) **शृंगेरी मठ** (शृंगेरी –मैसूर) तथा **शारदा मठ** (द्वारिकापुरी) का विशेष योगदान रहा है तथा इन मठों पर आसीन होने वाले शिष्यों को भी शंकराचार्य की पदवी से अभिषिक्त किया जाता है। इनके द्वारा भी अनेक उच्च ग्रंथों का प्रणयन किया गया है।

आचार्य शंकर के प्रमुख ग्रन्थों में अपरोक्षानुभूति, विवेकचूड़ामणि–सर्ववेदान्त सिद्धांतसारसंग्रह, पंजरिकास्त्रोत, मनीषापंचक, आनन्दलहरी, सौन्दर्य लहरी, दक्षिणामूर्ति स्त्रोत, दृकदृश्य विवेक (वाक्यसुधा) और सर्वसिद्धांत संग्रह विशेष उल्लेखनिय है। इनमें अन्तिम ग्रंथ दर्शनों का इतिहास है उसमें क्रमशः लोकायतवाद, आर्हतमत, माध्यमिकमत, योगाचारमत, सोत्रान्तिमत, वैभाषिकमत, वैशोषिक मत, नैयायिक मत, प्रभाकर मत, गुरुमत, साख्यमत, पातंजल योग, वेदव्यासमत, तथा वेदान्त मत का वर्णन जिसकी पराकाष्ठा वेदान्त में बताई गई है। **चिन्तन की एक गति है** जिसका उद्भव **लोकायतवाद** से होता है और जिसकी विकास अन्य दर्शनों से होता हुआ अन्त **वेदान्त** में प्राप्त होता है। इनमें भाष्यों की बड़ी लम्बी सूची है इनमें **ब्रम्हसूत्र शरीरिक भाष्य, उपनिषदों** पर **भाष्य,** गीता एवं विष्णु सहस्त्रनाम भाष्य ललितात्रिशती–भाष्य आदि प्रमुख है।

4.5.4 आदि शंकराचार्य का उपदेश

आदि शंकराचार्य का वेदान्त में योग एवं योग साधना का बड़ा महत्व प्रतिपादित किया गया है। आचार्य शंकर का मंत्र है कि आत्मबोध होने पर भी **आत्मनिष्ठता** के अभाव में वयक्ति जीवनमुक्त के आनंद से वंचित रह जाता है। **आत्मनिष्टता** ध्यान से प्राप्त होती है। क्योंकि **"तंत्र प्रत्येकतानताध्यानं"** अर्थात ध्यान से वासन का क्षय भी धीरे धीरे क्रमशः हो जाता है। यम नियमादि के पालन से योग साधनारुप ध्यान की योग्यता प्राप्त होती है। **ज्ञाता, ज्ञान–ज्ञेय** अथवा **घ्याता, ध्यान, ध्येय** की त्रिपुटी युक्त **सविकल्प–समाधि** एवं त्रिपुटी रहित ध्येयैक गोचर **समाधि–विर्विकल्प** हैं विज्ञानमय ज्ञाता मानोमय ध्यान का विषय है। ध्याता, ध्यान, ध्येय के अभाव में निर्वातदीपवत् चित्त समाधि प्रस्थ कहा जाता है। इस योग समाधि के आश्रय से अन्तःकरण के समस्त मलों का अपनयन हो जाता हैं। आत्मा में योगाभ्यास से शुद्ध हुए **चित्त को** निवेशित करने के उपरान्त साधक को अलभ्य सुख की प्रप्ति होती है। जिस काल में द्वैत की प्रतीति नहीं होती एवं विक्षेप निद्रा आदि का भी अभाव होता है, उस समय समाधि के दिव्य सुख का अनुभव होता है। उसी अवस्था को **ब्रह्मनन्द** कहा जाता है।

योगाभ्यास मन को प्रशान्त करता है। इस प्रकार कल्मषरहित योगी उत्तम आनंद प्राप्त करता है ऐसा साधक समाधि के अभ्यास द्वारा परिशुद्ध अन्तःकरण से स्वप्रकाश –स्वरुप चैतन्य को देखता हुआ अपने में संतुष्ट रहता हैं आत्म तत्व में स्थित हुआ (आत्मनिष्ठ) महान् दुःखों से भी विचलित नहीं होता है। ऐसी ही स्थिति में ब्रम्हाकारवृति स्थिर हो जाती है। आचार्य शंकर **विवेक, वैराग्य, षटसम्पत्ति** तथा **मुमुक्षुत्व** आदि को **ज्ञान के साधन** बतलाते है। वहीं **श्रवण मनन** और **निदिध्यासन ज्ञान के हेतु** है। ग्रन्थिरूप वासनाओं का पुनः उदय न होना ही ज्ञान का फल है। अर्थात् कूटस्थ के साथ अहंकारादि तादात्म्य वृत्तिका उदय न होना यह **ज्ञान का फल** है। **निदिध्यासन** समाधि के अभ्यास से वृत्ति जब प्रगाढ़ हो जाती है, तब **तादात्म्याध्यास** रूप ग्रन्थि का उदय नहीं होता है। योग से प्राप्त ब्रम्हज्ञान के द्वारा भ्रान्ति की निवृत्ति होती है। ध्यान–योग में **ब्रम्हाकार–वृत्ति** "सत्यं ज्ञानम्, अनन्तम् ब्रम्ह" रहती है। इस ब्रम्हाकार–वृत्ति की विशेषता यह है कि इसमें लक्ष्य की आवृत्ति भी होती है तथा **ध्याता, ध्यान** और **ध्येय** की **त्रिपुटी** भी नहीं रहती, ज्ञान प्राप्ति के बाद भी योगभ्यास की आवश्यकता बनी रहती हैं, क्योंकि ज्ञान होने पर ज्ञाननिष्ठा की प्राप्ति योग के बिना स्थिर नहीं हो सकती। इस कारण योग का महत्व **योगज्ञान–निष्ठा** में हैं।

ज्ञान होने पर केवल भ्रान्ति की निवृति होती है, वासना का क्षय नहीं होता। अतः अन्तःकरण की विशुद्ध प्रशान्त एवं विक्षेपशून्यावस्था योगाभ्यास के बिना नहीं हो पाती है। अद्वैत ज्ञान में चित्तवृत्तियों का निषेध होता है। मन–बुद्धि आदि सूक्ष्म एवं स्थूल नाम–रूप सभी प्रपंचों का निषेध करने पर निषेध रहित निर्विशेषवृत्ति **ब्रम्हाकारवृति** कहलाती हैं। इस वृत्ति के उदय होने पर कर्त्ता का निषेध रहता है इस कारण यह कर्मों की उत्पादिका नहीं होती है। इस कारण आनन्द को भी त्यागकर आत्मस्थिति प्राप्त करने पर ही **निर्विकल्प समाधि** की प्राप्ति की जा सकती है। आचार्य शंकर का मत्त था आत्मा के विषय में सभी विशेषण यहां तक कि **सत् चित् और आनन्द** भी ब्रम्ह वर्णन में अपूर्ण हैं, क्योंकि ब्रम्ह या आत्मा **वाणी** और **बुद्धि** से ऊपर है। ब्रम्ह को जानने के लिए स्वयं ब्रम्ह बनना पड़ेगा। 'जो व्यक्तित्व सविकल्प बुद्धि के जाल में ब्रम्ह को फंसाने की चेष्टा करता है वह अवश्य ही आकाश को धर्म समान लपेटना चाहता है या आकाश

में सीढ़ी लगाकर चढ़ना चाहता है या आकाश में पक्षियों के और जल में मछलियों के चरण चिन्हों को खोज रहा है। 'अन्त में बुद्धि की इस मौलिक विफलता को बताने के लिए **श्रुति नेति नेति** कहकर चुप हो जाती है। **नेति नेति** ब्रम्ह के विषय में कहे गये वर्णनों का निषेध करता है, **स्वयं ब्रम्ह का नहीं**। इस प्रकार शंकराचार्य ने अपने उपदेश में आत्मा और ब्रम्ह का तादात्मय "**आत्मा ही ब्रम्ह है", ब्रम्ह ही आत्मा** है बतलाया है।

जीवन का अन्तिम लक्ष्य **मुक्ति** है और मुक्ति जीव का **ब्रम्ह दशा** की प्राप्ति का नाम है।

शंकराचार्य ने मुक्ति के दो प्रकार बतलाये

1) जीवन मुक्ति। 2) विदेह मुक्ति।

जब जीव को परब्रम्ह का अनुभव हो जाता है तब उसे शरीर ग्रहण करने की आवश्यकता नहीं पड़ती (श्री भाष्य)। यह जीवन मुक्ति है। तथा अविद्या निवृति के फलस्वरूप आत्मबोध होने पर जीव को तब तक शरीर धारण करना पड़ता है, जब तक प्रारब्ध कर्मो का भोग समाप्त नहीं हो जाता। उसे विदेह मुक्ति कहते है।

बोध प्रश्न :

टिप्पणी क : अपने उत्तर नीचे दिये गये स्थान में लिखें ।

ख : इकाई के अंत में दिये गये उत्तरों से अपने उत्तर मिलाइए।

3. महर्षि वशिष्ट का परिचय दीजिए ?

_____

_____

_____

_____

_____

_____

_____

_____

_____

_____

_____

4. शंकराचार्य की स्तुति लिखिए ?

_____

_____

_____

_____

_____

_____

_____

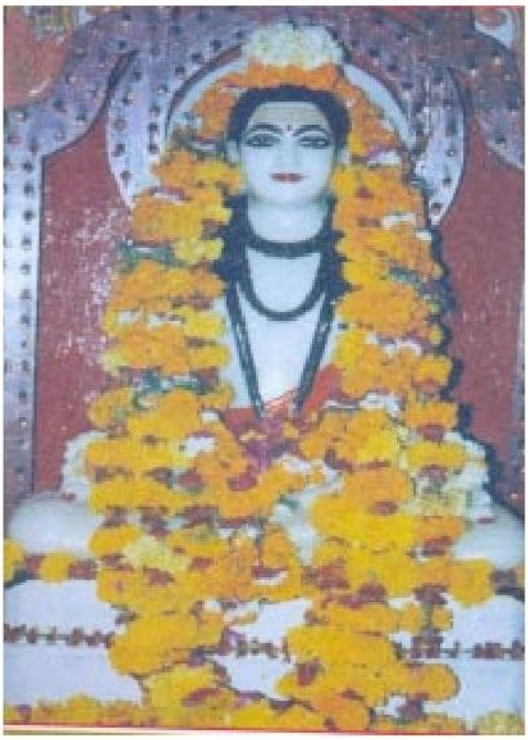
_____

_____

4.6 इकाई 12 : गुरू गोरखनाथ

4.6.1. गुरू गोरखनाथ की स्तुति

आदिनाथ भगवान् शिव ने **तत्व–जिज्ञासु भगवती पार्वती** के प्रश्नों का उत्तर देते हुए सर्वप्रथम योग–विषयक जो गुप्त–ज्ञान प्रकाशित किया था उसे **दैवयोग** से मछली के पेट में स्थित **महायोगी मत्स्येन्द्रनाथ** जी ने ग्रहण कर अपने शिष्य **महायोगी गोरखनाथ** को प्रदान किया। शिव अवतार महायोगी **गुरू गोरखनाथ** और उनकी शिष्य परम्परा के योगेश्वरों के द्वारा लोक कल्याण हेतु यह ज्ञान सतत प्रकाशित हो रहा है। ऐसे गुरू गोरखनाथ की हम स्तुति करते हैं।



प्रशान्तं निरहंभाव निर्मानं मुत्कमत्सरम्।
प्रसन्नवदनं सौम्यं योगिराजं नमाम्यहम्।।
संसारऽम्बराः सर्वे यस्यान्तवर्त्तिदृष्टिषु।
स्वप्नवदास मानास्तं योगिराजं नमाम्यहम्।।
अनाथा बहवो नाथ नाथवन्तस्त्वया विभो।
अनाथा मन्नाथ नाथयोगिन् नमोऽस्तु ते।।
कायेन मनसा वाचा नमस्कारं बिना प्रभो।
साधनं नैव जानामि भूयो भूयो नमोऽस्तुते।
सर्वगं सच्चिदानन्दं योगिराजं नमाम्यहम्।।
लब्धवापि ब्रम्हनिर्वार्ण भक्तचिते प्रकाशितम्।

4.6.2 गुरू गोरखनाथ का परिचय

ई. सन् 925 के आसपास श्री गुरू मत्स्येन्द्रनाथ अपनी मौज में (लहर या चेतन प्रवाह) में घूमते हुए अयोध्या के पास **जयश्री** नामक नगर में गये। वहाँ भिक्षा के निमित्त एक ब्राम्हण के द्वार पर **'अलख'** जगाया ब्राम्हणी ने योगी बाबा की झोली में भिक्षा डाल दी। पतिव्रत तेज से युक्त अपूर्व सुन्दरी उस स्त्री के मुख में उदासी के एक भाव ने **मत्येन्द्रनाथ जी** के हृदय को झकझोरा उन्होंने उस ब्राम्हणी से उसका कारण पूछा। ब्राम्हणी ने कहा संतान न होने से संसार फीका जान पड़ता है। मत्येन्द्रनाथजी ने झोली से तुरंत थोड़ी सी भभूत उस महिला को देकर कहाँ इसे खा लो, तुम्हें पुत्र प्राप्त होगा ऐसा आर्शीवाद देकर वे चले गये।

ब्राम्हणी ने यह बात अपनी पडोसिन से बतलाई तथा उस पडोसिन ने उसे कई तरह के भय बताकर भ्रम में डाल दिया। फलस्वरूप ब्राम्हणी ने उसे कई तरह के भय बताकर भ्रम में डाल दिया। फलस्वरूप ब्राम्हणी ने वह भभूत एक गोबर के गड्ढे में फेंक दी। 12 वर्ष बाद मत्स्येन्द्रनाथ उसी गांव में पुनः गुजरे तथा उस ब्राम्हणी के द्वार पर जाकर **"अलख"** जगाया। ब्राम्हणी के बाहर आने पर उन्होंने कहा कि अब तो तेरा बेटा बारह वर्ष का हो गया होगा, देखूँ तो वह कहाँ है? यह सुनते ही वह ब्राम्हणी घबरा गयी और उसने सब हाल कह दिया। मत्स्येन्द्रनाथ उसे साथ लेकर उस गड्ढे के पास गये और वहां 'अलख' जगाया सुनते ही उस गड्ढे से एक बारह वर्ष का तेजपुंज बालक बाहर निकल आया और मत्स्येन्द्रनाथ के चरणों पर सिर रखकर प्रणाम करने लगा। यही **"गुरू गोरखनाथ"** का प्राकट्य था। उन्हें मत्स्येन्द्रनाथ साथ लेकर चले गये और **योग विज्ञान** में पारंगत कर दिया। गोरखनाथ ने गुरूपदिष्ट मार्ग से साधना पूरी की और स्वानुभव से योगमार्ग में उन्नति प्राप्त की। योगसाधन और वैराग्य से योगबल द्वारा चिरंजीव–स्थिति प्राप्त की एवं लोक कल्याण के लिए योग साधना को जनहिताय प्रचारित किया। मध्ययुग में जैसे ज्ञानसाधना की वैजन्ती लेकर वेदान्ताचार्य शंकर ने ज्ञानसाधना और ज्ञानी सम्प्रदाय को नवजीवन प्रदान किया उसी प्रकार योगाचार्य गोरक्षनाथ ने योग साधना और योगी सम्प्रदाय को नवजीवन प्रदान किया। योगि सम्प्रदाय का पुनर्गठन कर उसे कई शाखाओं में विभक्त किया, विभिन्न स्थानों पर आश्रमों की प्रतिष्ठा करके योग शिक्षा के केन्द्र स्थापित किये एवं अपने अलौकिक प्रभाव विस्तार तथा शिष्य प्रशिष्यों के माध्यम से समग्रभारत में योग धर्म प्रचार की व्यवस्था की। जिस प्रकार आदि गुरू शंकराचार्य ने मोक्षाभिलाषी संसार विरागी साधुओं के लिए शंकर ने जिस प्रकार अन्तरंग ज्ञान साधना का विधान किया, उसी प्रकार गोरक्षनाथ ने भी अन्तरंग योग साधना की व्यवस्था की। ये दोनों ही साकार देवोपासना के विरोधी न थे। इन्होंने साधारण गृहस्थों के कल्याण के लिए एवं निम्नाधिकारी साधुओं के लिए साधना के उच्च सोपान पर आरोहण करने के लिए अनेक ग्रहों और आश्रमों की स्थापना एवं मूर्तियों की प्राणप्रतिष्ठा की। भक्ति और आचारनिष्ठा के साथ देवता की उपासना करते करते ही देहेन्द्रियमन विशुद्ध हो जाते हैं, हद्रय सरस और धर्मानुरागी हो जाता है, धर्म के निगूढ़ रहस्यों को जानने का आग्रह उत्पन्न होता है एवं अंतरंग योगसाधना और ज्ञान साधना का अधिकार प्राप्त होता है ऐसी इनकी धारणा थी। गुरू गोरखनाथ जी के दो प्रधान शिष्य हुए (1) गैनीनाथ या गैबीनाथ तथा (2) चार्पटी नाथ। इनकी इस परंपरा में नाथ संम्प्रदाय में निवृतिनाथ ज्ञानेश्वर आदि और भी कई सिद्ध महात्मा हो गये हैं।

4.6.3 गुरू गोरखनाथ की रचनाएँ

योगिराज गुरू गोरखनाथ द्वारा रचित अनेक संस्कृत और हिन्दी पुस्तकों का नामोल्लेख मिलता है। संस्कृत भाषा में निम्नलिखित पुस्तकें उनके द्वारा रचित बतलाई जाती है।

(1) अमनस्क योग (2) अमरौध (3) अवधूत गीता (4) गोरखकल्प (5) गोरख कौमुदी (6) गोरखगीता (7) गोरख चिकित्सा (8) गोरख पंचक (9) गोरख पद्धति (10) गोरख शतक (11) गोरख शास्त्र (12) गोरखसंहिता (13) चतुरशीत्यासन (14) ज्ञानप्रकाश शतक (15) ज्ञान शतक (16) ज्ञानामृत योग (17) नाड़ीज्ञान प्रदीपिका (18) महार्थ मंजरी (19) योग चिंतामणि (20) योगमार्तण्ड (21) योग बीज (22) योगाशास्त्र (23) योगसिद्धांत पद्धति (24) विवेक मार्तण्ड

(25) श्री नाथ सूत्र (26) सिद्ध सिद्धांत (27) हठयोग (28) हठ संहिता (29) गोरख सहस्त्रनाम (30) गोरखपिष्टिका।

इन 28 ग्रंथों में विशेष महत्वपूर्ण ग्रंथों के अंतर्गत (1) गोरख संहिता (2) सिद्धसिद्धांत पद्धति (3) अमरौध एवं (4) गोरखपद्धति को जाना जाता है। इनके अतिरिक्त एक ग्रंथ गोरख संहिता भी है जो कि पं. गोपीनाथ कविराज द्वारा संपादित **"गोरख सिद्धांत संग्रह"** नामक ग्रंथ का आरंभिक अंश है।

हिन्दी में प्रचलित गोरखनाथ जी के नाम से चालीस रचनाएँ प्राप्त होती है। उनमें निम्नलिखित चौदह ग्रंथों का एक संकलन **"गोरखबानी"** नाम से संपादित हुआ है।

(1) सबदी (2) पद (3) शिष्या दरसन (4) प्राण संकली (5) नखैबोध (6) आत्मबोध (7) अभै मात्रा जोग (8) पंद्रह तिथि (9) सदाचार (10) मछीन्द्र गोरखबोध (11) रोमावली (12) ग्यान तिलक (13) ज्ञान चौतीसा (14) पंच मात्रां (यह संकलन से छूट गया है)।

इसी संदर्भ में ''गोरख दर्शन'' नामक एक अत्यंत महत्वपूर्ण ग्रंथ लेखक श्री अक्षय कुमार बंद्योपाध्याय जो भारतीय संस्कृति एवं दर्शन के लब्धप्रतिष्ठत विद्वान है ने इस ग्रंथ में गोरखनाथ एवं उनके तत्वदर्शन का विवेचन प्रस्तुत किया है। डा. हजारी प्रसाद द्विवेदी ने नाथ सिद्धों की बानिया नाम से एक अन्य ग्रंथ रचा।

4.6.4 : गुरू गोरखनाथ जी का उपदेश

महायोगी गुरू गोरखनाथ जी ने उपरोक्त वर्णित अपने ग्रंथो में आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा ध्यान एवं समाधि का सम्यक प्रतिपादन किया है। विशेषरूप से षडंग योग और उसके अंतर्गत कुण्डलिनी–जागरण, मुद्रा–बंध, अभ्यास, आसन, प्राणायाम, षट्चक्र भेदन, नाड़ीशोधन, नादानुसंधान तथा नाद–बिन्दू उपासना पर अपने सिद्धांत का उपदेश किया है। सिद्धसिद्धांत पद्धति में गोरखनाथ जी के वचन उपदेश के रूप में उपलब्ध होते हैं। गोरखनाथ जी ने स्पष्ट किया है कि कैसे गत्यात्मक आध्यात्मिक परमसत्य से वैविध्यपूर्ण तथा अनेक भौतिक पदार्थो से युक्त विश्व प्रपंच उद्भूत है तथा इस सिद्धांत का स्पष्टीकरण है कि किस प्रकार दिक्काल निरपेक्ष भेदातीत, शाश्वत, परमात्म अलखनिरंजन परमशिव अपनी स्वरूप शक्ति के द्वारा दिक्काल परिसीमित वैविध्यपूर्ण ब्रह्माण्ड एवं असंख्य व्यष्टिपिण्डों के रूप में अभिव्यक्त होता है। इसके आरंभ में **अजातवाद** और तत्पश्चात् **सत्कार्यवाद की रीति से आदिनाथ** की सत्ता से पृथक जगत अण्ड और पिण्ड की उत्पत्ति का वर्णन किया गया है। अण्ड–पिण्ड की उत्पत्ति प्रमाण सिद्ध नहीं हैं, क्योंकि आदिनाथ अलखनिरंजन की सत्ता से भिन्न जगत् की सत्ता नहीं है। **नाथदर्शन में अजातवाद का ही** सिद्धांत यद्यपि मान्य है तथापि इस मान्यता की पुष्टि के लिए शरीर में ही संपूर्ण विश्वब्रह्माण्ड और जीवन्मुक्त अमरकाय योगियों ने परमात्मा की अखण्डता, अभिन्नता और निरंजनता (निर्मलता) का बोध प्राप्त किया। सत्कार्यवाद अथवा परिणामवाद पर यही अजातवाद की विजय है। जब तक साधक की परमात्म स्वरूप में स्थिति और संपूर्ण निष्ठा नहीं हो जाती है, तब तक जन्म–मरण का दुःख नहीं छूट सकता और साधक की दृष्टि में विश्वप्रपंच की अहंकार के स्तर पर रागद्वेषादि द्वन्द्वात्मक मन या अविद्या के धरातल पर सत्ता बनी रहेगी। अण्डपिण्ड के रूप का ज्ञान होने पर उसकी आधारशिला परमार्थिक सत्ता का जीवात्मा साधक को बोध हो जाना सरल हो जाता है।

यह निर्विवाद है कि इस विश्वप्रपंच की गत्यात्मकता के मूलकण के रूप में कोई स्वयंसत्य, स्वयंप्रकाशित सत्ता है जो हमारी इंद्रिय, मन, बुद्धि से परे अतीन्द्रिय, अतिमानसिक और अतिबौद्धिक स्तर पर अभिव्यक्त है। गोरखनाथ जी ने इस शाश्वत चेतना को **परासंवित्** कहा है, यही परमसत्ता है। सिद्धसिद्धांत पद्धति के छः उपदेशों में **पिण्डोत्पत्ति, पिण्डविचार, पिण्डसंक्ति, पिण्डाधार, पिण्डपद समरस भाव,** और **नित्यावधूतलक्षण** आदि का निरूपण करते हुये नित्यानिर्विकार परमसत्ता को ही जीवात्मा योगसाधक के लिए प्रतिपाद्य स्वीकार कर उसके स्वरूप बोध अथवा अंतर्लय की विधि उपदेशित की है। समष्टि ब्रह्म, व्यष्टिब्रह्म, विशिष्टब्रह्म सभी का मूल निरंजनता हैं, निरंशता, निस्पंदता और अभिन्नता तथा निश्चयता है। शिवगोरख की दृष्टि में अद्वैत आत्मा (परमात्मा) अपनी निजशक्ति से युक्त होकर स्वरूपतः अभिन्न है। निजस्वरूप में निहित शक्ति की जागृति के स्तर पर परमात्मा शाश्वत, अनंत परपिण्ड है। यह परब्रह्मशिव अपरंपर, परमपद, शून्य या निरंजन परमात्मा है। **"अपरम्परं परमपदं शून्यं निरंअजनं परमात्मेति"** (सि.सि.प.1/6)

गुरू गोरखनाथ जी ने हठयोग पर अपने उपदेश में कहा है कि हठयोग की साधना वास्तव में प्राणसाधना है और प्राणायाम की सिद्धि होना इस **साधना** का परिणाम या फल है

पवन ही जोग पवन ही भोग, पवन की हरै छत्तीसौ रोग।

या पवन कोई जांणौ भव, सो आपै करता आपै देव।।

हद्रय में प्राणवायु उच्छवास और निःश्वास रूप में **हकार** तथा **सकार ध्वनि** करती आती जाती हैं। यही हठयोग की आधारशिला है। हकार सूर्य हैं, ढकार चंद्रमा है। सूर्य और चंद्रमा का योग ही हठयोग है।

हकारः कीर्तितः सूर्यष्ठकारश्चंद्र उच्चते।

सूर्याचंद्रम सोर्योगाद्हठयोगो निगद्यते।।

पंचभौतिक पिण्ड का अधिष्ठाता जीवात्मा, निराकार, चिन्मय सच्चिदानन्दस्वरूप शिव होता हैं, ईश्वर होता है, निराकार की साकार अभिव्यक्ति का यही यौगिक रहस्य है कि पंचशक्तियों, **निजा, परा, अपरा, सुक्ष्मा** और **कुण्डलिनी** में स्वरूपतः अंतलीन परब्रम्हा परमेश्वर इन्हीं के गुणों में आत्मप्रकाशन करता है। यौगिक दृष्टि से पिण्डविचार अंर्तदर्शन और ध्यान पर आधारित है। हमारा शरीर शिवशक्ति की अभिव्यक्ति का पवित्र माध्यम है और इसमें लोकलोकान्तर, समस्त ब्रम्ह्माण्ड का रहस्य भरा पड़ा है। हमारे शरीर में **नवचक्र, सोलह आधार, त्रिलक्ष्य** और **पंचव्योम** स्थित है। शरीर में सुषुम्ना नाड़ी ब्रह्ममार्ग कहलाती है। जीवात्मारूपी साधक के लिए इस मार्ग में स्थित नौचक्र (सिद्धसिद्धांत पद्धति) अथवा षट्चक्रों (गोरक्षशतक) ही विश्राम स्थल है। सभी चक्रों का भेदन होने पर सुषुम्ना का प्रवाह सीधा हो जाता है और जीवात्मा (योग–साधक) ब्रह्मरंध्र में प्राणसिद्धि के सहारे **शिवस्वरूप** हो जाता है। वह व्यावहारिक अथवा लोकचेतना से ऊपर उठकर समाधि स्तर पर पारमार्थिक चेतना में विहार करता है। चक्रों के भेदन से महाकुण्डलिनी का प्रबोधन होता है कुण्डलिनी शक्ति की अभिव्यक्ति का स्थान **मूलाधार** है इसके ध्यान से चूंकि यह शक्ति साक्षात् गौरीस्वरूपिणी है अतः साधक की मनोकामनाएँ पूर्ण होती है। द्वितीय चक्र स्वाधिष्ठानचक्र में लाल रंग के शिवलिंग की स्थिति है इसके जागरण से (ध्यान से) योगशक्ति प्राप्त होती है। मणिपूर (नाभिचक्र) में कुण्डलिनी मध्यमा कहलाती है जो सत्विक प्रवृत्तियों की प्रदात्ता हैं, **अनाहत चक्र** में हंसकला ज्योति है जो जल, स्थल, पाषाण में प्रतिघात सहन क्षमता देती है तथा संकल्प सिद्धि प्राप्त होती है तथा ऊँ कार रूप परमेश्वर के नादस्वरूप का साक्षात्कार होता है। **आज्ञाचक्र** में सुषुम्ना अंगुष्ठमात्र दीपशिखाकार हो जाती है, यही **ज्ञाननेत्र** है। इसके ध्यान से साधक शाश्वत चैतन्य ज्योति से एकाकार हो जाता है। आठवे चक्र को गोरखनाथ ने **निर्वाणचक्र** और नौवे चक्र को **आकाश चक्र** कहा है। इन दोनों के ध्यान से क्रमशः **मोक्ष** और अलख–निरंजन में स्वरूप–स्थिति प्राप्त होती है, ब्रह्ममार्ग से जीवात्मा की यात्रा पूरी होती है। यही शाश्वत विश्राम कहा गया है।

गोरखनाथ जी ने स्वयं अपना अनुभव **सिद्धसिद्धांत** पद्धति में बतलाया है कि –

यत्सुखं तत्स्वर्ग, यद्दुःखं तन्नरकं, यत्कर्मतद्बंधन, सन्निर्विकल्पं तन्मुक्तिः, स्वरूपदशायां निद्रादौ स्वात्मजागरः शन्तिर्भवति। एवं सर्वदेहेषु विश्वरूप परमेश्वरः परमात्मा खण्डस्वभावेन घटे घटे वित्स्वरूपो तिष्ठति एवं पिण्डसंवित्तिर्भवति।

इस शरीर में जो सुख है, वही स्वर्ग है और जो दुख है, वही नरक है। सकाम कर्म ही बंधन का कारण है। संकल्प रहित और निर्विकल्पना ही मुक्ति है। यद्यपि अज्ञानी इस निर्विकल्पना को निद्रारूप मानते हैं, तथापि वह अखंड आत्मबोध स्थिति हैं, इस बोध–स्थिति में जागते रहना ही **जीवन्मुक्ति** है। योगी इस जीवन्मुक्ति में निरंतर रमण कर समष्टि–पिण्ड–ब्रह्मण्ड और व्यष्टिपिण्ड–शरीर में तात्विक एकात्मकता का रसास्वादन करता है। जड़–पदार्थो का **योग नही** होता है, जड़ और चेतन का **संयोग** होता है, जीवात्मा द्वारा परमात्मा में अभिन्नता की अनुभूति ही **योग** है।

श्री मत्स्येन्द्रनाथ की तरह श्री गोरखनाथ को भी नेपाल के लोग बड़े आदर की दृष्टि से देखते हैं और इन्हें **श्री पशुपतिनाथ जी** का अवतार मानते हैं। गोरखनाथ जी के शिष्य होने के कारण ही नेपाली **"गोरखा"** कहलाते है। प्रायः संपूर्ण भारत में नाथ सिद्ध योगी बाबा गोरखनाथजी के आश्रम, टीला आदि मिलते है। उनमें से गोरखपुर महासिद्ध हठयोगी **बाबा गोरखनाथ** की प्रसिद्ध तपःस्थली एवं साधना स्थली रही है। आज भी उस स्थान पर योग सिद्ध बाबा गोरखनाथ का एक विशाल एवं भव्य मंदिर सुप्रतिष्ठित है।

बोध प्रश्न :

टिप्पणी क : अपने उत्तर नीचे दिये गये स्थान में लिखें।

ख : इकाई के अंत में दिये गये उत्तरों से अपने उत्तर मिलाइए।

5. आदि गुरू शंकराचार्य के उपदेश में ब्रम्ह्यानंद की अवस्था बतलाइयें ?

_____

_____

_____

_____

_____

_____

_____

_____

6. गुरू गोरखनाथ की रचनाएँ लिखिए ?

_____

_____

_____

_____

_____

_____

_____

_____

3.5 सारांश

इस चतुर्थ खण्ड के अध्ययन के अंतर्गत आपने चाार योग के उपदेशकों का अध्ययन किया। **ईकाई 9** में महर्षि पतंजलि की स्तुति उनका परिचय उनकी रचनाएँ एवं उनकी व्याख्यायें तथा योग विज्ञान के संदर्भ में साधनाात्मक उपदेशों का वृहद अध्ययन आपने किया। इस अध्ययन के उपरांत आप इस योग्य हो गये कि महर्षि पतंजलि के योग दर्शन के संकलन कर्ता के स्वरूप उनके जीवन उनकी रचनाओं और उपदेशों क तथा उनके भारतीय अध्यात्मिक एकीकरण के महान् कार्य से आप परिचित हो सकें। महर्षि पतंजलि के विश्व प्रसिद्ध ग्रथ **योगसूत्र** की विषयवस्तु का भी आपने परिचय प्राप्त किया जिससे भारतीय षड्दार्शनों में एक योगदर्शन की सैद्धांतिक जानकारी का ज्ञान आपको प्राप्त हुआ।

इकाई 10 में महर्षि वशिष्ट का स्तुति उनका परिचय, उनकी रचनाएँ एवं उनकी विषयवस्तु तथा उनके उपदेशों का वृहद अध्ययन आपने किया। इस अध्ययन के उपरान्त आप इस योग्य हो गये कि महर्षि वशिष्ट के ग्रंथ योगवशिष्ट की सैद्धांतिक पृष्ठभूमि समझ सकें।आपने जाना कि महर्षि वशिष्ठ ब्रह्म के मानसपुत्र माने जाते है। वे **सप्तर्षियों** में स्थान रखते है। उनकी **पत्नी अरुन्धती** भी आकाश मण्डल में सदैव उनके साथ रहती है। महर्षि वशिष्ट तपोबल की मूर्तिमान संज्ञा है। विश्वजन हिताय विश्वजनसुखाय सतत् उनका तपोबल आज भी मानव कल्याण में रत है। मर्यादा पुरुषोत्तम राम को **अज्ञ** के **विज्ञ** तक की यात्रा में ज्ञानयोग के उपदेष्टा के रुप में आप सदैव गुरु पूज्य स्थान में असीम है। सद्य ज्ञानयोग की प्राप्ति में योगवशिष्ट योग साधकों का मार्गदर्शक रहा है। इन सद्य बातों की विस्तृत जानकारी इस इकाई में आपने प्राप्त की।

इकाई 11 में आदि शंकराचार्य की स्तुति, उनका जीवन परिचय, उनके द्वारा लिखित, व्याख्यायित गंथ और मानव के लिए उनके उपदेशों का अध्ययन आपने किया। इस अध्ययन के उपरान्त आप यह समझ सकने के योग्य हो गये कि भारतीय आध्यात्मिक एकीकरण की नींव में आदि शंकराचार्य की दूरदर्शिता कितनी महान् एवं युगांतकारी निष्ठा थी। भारत के चारों कोनों में चार मठों की स्थपना के द्वारा औपनिषदिक ज्ञान का गंगा संम्पूर्ण भारत में प्रवाहित कर स्नातक धर्म का ध्वज फहराने की शक्ति इस अल्पआयु प्रकाण्ड विद्वान के अवतारी स्वरुप के कारण ही संभव हुआ है। अद्वैत सिद्धांत की आधारभूमि आज भी विद्वानों के मध्य अकाट्य स्थान प्राप्त किये हुए है। ज्ञान भक्ति –कर्म की त्रिवेणी का ऐसा संगम भारत में दूसरा नही हैं अज्ञ से विज्ञ तक सभी को इनके उपदेशों के अमृतपान का लाभ मिलता हैं इस प्रकार आपने इस युगान्तकारी उद्भट् दार्शनिक के ज्ञानयोग का परिचय प्राप्त किया।

इकाई 12 में नाथयोग के प्रवर्तक गुरु गोरख नाथ की स्तुति, उनका जीवन परिचय, उनकी रचनाऐं एवं उनके उपदेशों का विस्तृत परिचय आपको प्राप्त हुआ। इस परिचय में आपने देखा की गोरखनाथ जी अवतारी योगी थे। शंकराचार्य की तरह उन्होनें योगसाधना के योगी सम्प्रदाय की आधारशिला रखकर उसका पुर्नगठन किया गुरु गोरखनाथ जी द्वारा संस्कृत में रचित वृहत साहित्य से योगी, साधकों को पर्याप्त मर्गदर्शन प्राप्त हो रहा है। गोरख संहिता, सिद्धसिद्धांन्त पद्धति में गोरखनाथ जी के स्वानुभव योग साधको की **श्रद्धा के प्राण** ही है। इस प्रकार आपने गुरु गोरखनाथ जी के उपदेशों में योग ओर संयोग का अच्छी तरह ज्ञान प्राप्त कर लिया।

इन चारों योगाचार्यो के अध्ययन से आप के मस्तिष्क में योग की संकल्पना का एक स्पष्ट और विस्तृत खाका तैयार हो गया। इस स्तर पर आप योग साधना प्रणाली के चयन करने एवं करवा सकने में अवश्य सक्षम हो सकेंगे इसी उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए इस खण्ड विशेष को आपके इस पाठ्यक्रम में सम्मिलित किया गया था। इस खंड के अध्ययन से आप योग साहित्य के श्रेष्ठतम भाग से भी परिचित हो चुके है।

4.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

प्र.1. महर्षि पतंजलि के योगसूत्र का परिचय दीजिये?

उ. महर्षि पतंजलि द्वारा योगसूत्र की रचना लगभग 80 ई.पू. के आसपास की गई है। योग दर्शन का यह आधारभूत ग्रन्थ है। यह ग्रंथ सूत्रात्मक है। यह ग्रंथ चार भागों में विभक्त है। प्रथम भाग समाधिपाद में 51 सूत्र है। द्वितीय भाग साधनपाद में 55 सूत्र है। तृतीय भाग विभूतिपाद में 55 सूत्र है तथा अंतिम भाग कैवल्यपाद में 34 सूत्र है। इस प्रकार योगसूत्र ग्रंथ में कुल 195 सूत्र निबद्ध है। महर्षि पतंजलि के योग दर्शन में स्वयं भगवान वेदव्यास का भाष्य प्राप्त होता है, जो सांख्य–प्रवचन भाष्य के नाम से प्रसिद्ध है। योग दर्शन अत्यंत प्राचीन दर्शन है और इससे सभी प्रकार के आध्यात्मिक, अधिभौतिक तथा अधिदैविक सिद्धियों के लाभ प्राप्त होते हैं। साधक बड़ी सरलता से इस मार्ग पर देवताओं का सांनिध्य प्राप्त कर उनकी शक्तियों का लाभ उठा सकता है। उदाहरणार्थ योग सूत्र 2/44 में इस संबंध में निर्देश है।

"स्वाध्यादिष्ट देवता सम्प्रयोगः"

प्र.2. महर्षि पतंजलि का उपदेश बतलाइये?

उ. महर्षि पतंजलि ने साधक को स्वरूप में स्थिति होने की युक्ति योग सूत्र के व्यवस्थित एवं अनुशासित ज्ञान द्वारा उपदेशित किया है। महर्षि का उपदेश है कि यम–नियमादि आठ अंगों में से कोई एक भी साधन ठीक ढंग से आरम्भ करने पर भगवत्कृपा से योग की स्वयं साधक में प्रवृत्ति हो जाती है। योग–प्रवृत्तियों के प्रथम लक्षण में भगवान पतंजलि स्वयं ज्योतिषमती, गन्धवती, स्पर्शवती लक्षण प्रकट हो जाने से योगशक्ति में उसके प्रवेश का लक्षण बतलाया है। इस स्थिति में उसे सभी देवी देवताओं, दिव्य पदार्थो शास्त्र आदि के वचनों में, परलोक में पूर्ण विश्वास हो जाता है। इससे उसका शीघ्र कल्याण हो जाता है। महर्षि पतंजलि के उपदेश अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रम्हचर्य, त्याग की वृत्ति, पवित्रता (शौच) स्वाध्याय का अभ्यास तथा विश्वप्रेम की बातें सभी धर्मो के सार रूप ही है और यही योग का प्राथमिक उपदेश है। जो सभी को मान्य हैं।

प्र.3. महर्षि वशिष्ट का परिचय दीजिये?

उ. महर्षि वशिष्ट गुरूपरम्पराओं में कई परम्पराओं में गुरू पद पर आसीन रहे है। इनमें शड्कर परम्परा, शाण्डिल्य परम्परा, सूत परम्परा एवं महाभारत परम्परा प्रमुख है। महर्षि वशिष्ट व्यासदेव के प्रपितामह थे तथा भगवान श्रीराम के शिक्षा गुरू थे।

महर्षि वशिष्ट सप्तर्षियों (आकाश स्थित सात तारों का पुंज) में से एक है। इनकी पत्नी अरून्धती देवी पतिव्रताओं में सर्वश्रेष्ठ हैं, उनका इनसे कभी वियोग नहीं होता और सप्तर्षि मण्डल में वशिष्ट जी के साथ अरून्धती माता भी सदैव विद्यमान रहती है। महर्षि वशिष्ट जी सदैव अपने तपोबल का उपयोग मनुष्यों के साथ ही साथ देवताओं, ऋषि–महर्षियों यहा तक जड़ चेतन सभी के उद्धार के लिए करते रहे है। उन्हें ब्रम्ह्य का मानस पुत्र कहा जाता है। भागीरथी गंगा के अवतरण और श्रीरामचन्द्र जी के अवतार में भी महर्षि की भूमिका सर्वविदित है ही।

प्र.4. महर्षि वशिष्ट का परिचय दीजिये?

उ. आदि गुरू शंकराचार्य, गुरू परम्परा के गुरू रहे हैं। इन्हें शंकर का अवतार माना जाता है इनका स्तवन निम्नलिखित प्रकार से किया गया है –

नारायणं पद्यभवं वशिष्ट शक्तिं च तत्पुत्रपराशरं च।
व्यासं शुकं गौडपदं महान्तं गोविन्द योगीन्द्रमथास्यशिष्यम्।
श्री शंकराचार्यमथास्य पद्य–पादं च हस्तामलकं च शिष्यम्।
तं त्रोटकं वार्तिककारमन्यान् अस्मद् गुरून्सन्तत मानतोऽस्मि।

श्रुति–स्मृति–पुराणानां आलयं करूणालयम्।
नमामि भगवत्पादं शकंरं लोकशंकरम्।।
शंकरं शंकराचार्यं केशवं बादरायणम्।
सूत्रभाष्यकृतौ वन्दे भगवन्तौ पुनः पुनः।।

प्र.5. आदि गुरू शंकराचार्य के उपदेश में ब्रम्ह्यनंद की अवस्था बतलाइये ?

उ. आदि शंकराचार्य का वेदान्त में योग एवं योग साधना का बड़ा महत्व प्रतिपादित किया गया है। आचार्य शंकर का मंत्र है कि आत्मबोध होने पर भी **आत्मनिष्ठता** के अभाव में व्यक्ति जीवनमुक्त के आन्नद से वंचित रह जाता है। **आत्मनिष्टता** ध्यान से प्राप्त होती है। क्योंकि **तत्र प्रत्येकतानताध्यानं** अर्थात ध्यान से वासना का क्षय भी धीरे धीरे क्रमशः हो जाता है। यम नियमादि के पालन से योग साधनारुप ध्यान की योग्यता प्राप्त होती है। ज्ञाता, ज्ञान–ज्ञेय अथवा घ्याता, ध्यान, ध्येय की त्रिपुटी युक्त **सविकल्प–समाधि** एवं त्रिपुटी रहित ध्येयैक गोचर **समाधि–निर्विकल्प** हैं विज्ञानमय ज्ञाता मानोमय ध्यान का विषय है। ज्ञाता, ध्यान, ध्येय के अभाव में निर्वातदीपवत् चित्त समाधिस्थ कहा जाता है। इस योग समाधि के आश्रय से अन्तःकरण के समस्त मलों का अपनयन हो जाता है आत्मा में योगाभ्यास से शुद्ध हुए चित्त को निवेशित करने के उपरान्त साधक को अलभ्य सुख की प्रप्ति होती है। जिस काल में द्वैत की प्रतीति नहीं होती एवं विक्षेप निद्रा आदि का भी अभाव होता है, उस समय समाधि के दिव्य सुख का अनुभव होता है। उसी अवस्था को **ब्रह्मनन्द** कहा जाता है।

प्र.6. गोरखनाथ की प्रमुख रचनायें लिखिये ?

उ. योगिराज गुरू गोरखनाथ द्वारा रचित अनेक संस्कृत और हिन्दी पुस्तकों का नामोल्लेख मिलता है। संस्कृत भाषा में निम्नलिखित पुस्तकें उनके द्वारा रचित बतलाई जाती है।

(1) अमनस्क योग (2) अमरौध (3) अवधूत गीता (4) गोरखकल्प (5) गोरख कौमुदी (6) गोरखगीता (7) गोरख चिकित्सा (8) गोरख पंचक (9) गोरख पद्धति (10) गोरख शतक (11) गोरख शास्त्र (12) गोरखसंहिता (13) चतुरशीत्यासन (14) ज्ञानप्रकाश शतक (15) ज्ञान शतक (16) ज्ञानामृत योग (17) नाड़ीज्ञान प्रदीपिका (18) महार्थ मंजरी (19) योग चिंतामणि (20) योगमार्तण्ड (21) योग बीज (22) योगाशास्त्र (23) योगसिद्धांत पद्धति (24) विवेक मार्तण्ड (25) श्री नाथ सूत्र (26) सिद्ध सिद्धांत (27) हठयोग (28) हठ संहिता (29) गोरख सहस्त्रनाम (30) गोरखपिष्टिका।

इन 28 ग्रंथों में विशेष महत्वपूर्ण ग्रंथों के रूप में (1) गोरख संहिता (2) सिद्धसिद्धांत पद्धति (3) अमरौध एवं (4) गोरखपद्धति को जाना जाता है। इनके अतिरिक्त एक ग्रंथ गोरख संहिता भी है जो कि पं. गोपीनाथ कविराज द्वारा संपादित **"गोरख सिद्धांत संग्रह"** नामक ग्रंथ का आरंभिक अंश है।

4.9 उपयोगी संदर्भ ग्रंथ

(1) पातंजल–योग–शास्त्र — **श्री शंकर–भगवत्–कृत**
प्रकाशक केन्द्रीय योग एवं
प्राकृतिक चिकित्सा अनुसंधान परिषद्
पंखा रोड़ नं. 61–65 जनकपुरी
नई दिल्ली – 110058

(2) भारत के महान योगी भाग 1–10 — **विश्वनाथ मुखर्जी**
अनुराग प्रकाशन चौक
वाराणसी – 221001

(3) योग प्रकाश — **रामरूप पटेल**
शीलकला प्रकाशन, प्रयाग
143 –बी आलोपी बाग
इलाहाबाद – 211006

(4) गोरख दर्शन — **अक्षय कुमार बनर्जी**
प्रकाशक श्री महन्त
दिग्विजयनाथ न्यास
गोरखनाथ मन्दिर, गोरखपुर (उ.प्र.)

(5) योग वाशिष्ट और उसके सिद्धांत — **डॉ. भीखन लाल आत्रेय**
प्रकाशक श्री कृष्ण जन्मस्थान सेवा संस्थान
मथूरा – 281001

(6) योग रहस्य — **रघुनाथ शुक्ल**
प्रकाशक श्री महन्त
दिग्विजयनाथ न्यास
गोरखनाथ मन्दिर, गोरखपुर (उ.प्र.)

(7) हठयोगयोग स्वरूप एवं साधना — **योगी आदित्यनाथ**
प्रकाशक श्री गोरखनाथ मंदिर
गोरखपुर (उ. प्र.)

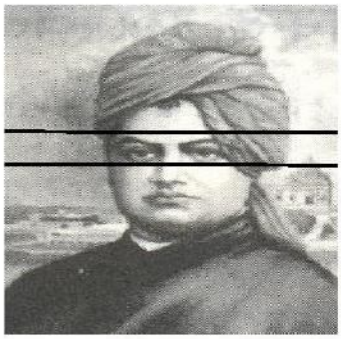
(8) योग दर्शन — **परमहंस निरंजनानन्द**
प्रकाशक श्री पंचदशनाम परमहंस
अलखबाड़ा पनियापगार, रिखिया
देवधर, बिहार

(9) वशिष्ट संहिता (योगकाण्ड) — **स्वामी दिगम्बर जी**
कैवल्यधाम श्रीमन्माधव योग, मंदिर समिति
लोनावाला – पूना,
महाराष्ट्र – 410403

(10) कल्याण (योगांक) दसवें वर्ष का विशेषांक — **प्रकाशन कल्याण कार्यालय**
गीता प्रेस, गोरखपुर (उ.प्र.)

खण्ड 5

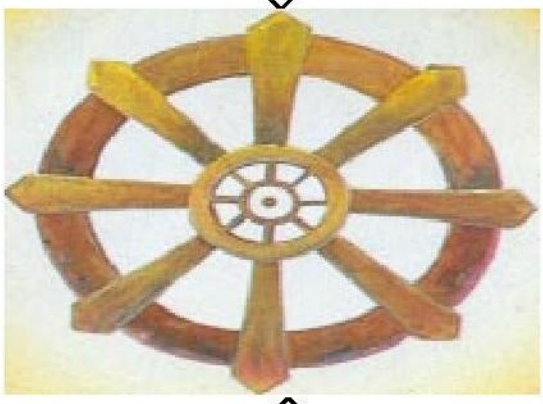
इकाई 13



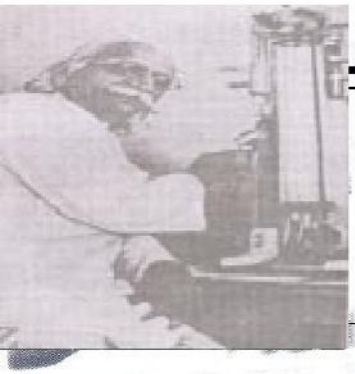
स्वामी विवेकानन्द

इकाई 14

श्री अरविंद



योग विज्ञान के समसामयिक चिन्तक



इकाई 15

स्वामी कुवलयानन्द

इकाई 16

स्वामी शिवानन्द

खण्ड 5 योग विज्ञान के समसामयिक चिन्तक

प्रश्न पत्र प्रथम **''योग विज्ञान का परिचयात्मक स्वरूप''** के अध्ययन हेतु खण्ड 5 ''योग विज्ञान के समसामयिक चिन्तक को चार इकाईयों में विभाजित किया गया है। इनमें इकाई 13 स्वामी विवेकानंद, इकाइ 14 श्री अरविंद इकाई 15 स्वामी कुवल्यानन्द और इकाई 16 स्वामी शिवानंद को सम्मिलित किया गया है।

खण्ड संरचना

5.0 प्रस्तावना 113

5.1 उद्देश्य 113

5.2 विषय प्रवेश 114

5.3 इकाई 13 स्वामी विवेकानन्द 116

5.3.1 स्वामी विवेकानन्द का परिचय

5.3.2 स्वामी विवेकानन्द का अध्यात्मिक चिन्तन

5.3.3 स्वामी विवेकानन्द की शिक्षायें

5.4 इकाई 14 श्री अरविंद 126

5.4.1 श्री अरविंद का परिचय

5.4.2 श्री अरविंद का आध्यात्मिक चिन्तन

5.4.3 श्री अरविंद की शिक्षायें

5.5. इकाई 15 स्वामी कुवलयानन्द 136

5.5.1 स्वामी कुवलयानन्द का परिचय

5.5.2 स्वामी कुवलयानन्द का अध्यात्मिक चिन्तन

5.5.3 स्वामी कुवलयानन्द की शिक्षायें

5.6 इकाई 16 स्वामी शिवानंद 142

5.6.1 स्वामी शिवानंद का परिचय

5.6.2 स्वामी शिवानंद का अध्यात्मिक चिन्तन

5.6.3 स्वामी शिवानंद की शिक्षायें

5.7 सारांश 150

5.8 बोध प्रश्नों के उत्तर 152

5.9 उपयोगी संदर्भ ग्रंथ 156

5.0 प्रस्तावना

प्रथम प्रश्न पत्र के अंतर्गत इकाई 13, 14, 15 एवं 16 का अध्ययन इस **पंचम खण्ड** में किया जाना है। इसके पूर्व आपने प्रथम खण्ड में **योग विज्ञान की संकल्पना**, द्वितीय खण्ड में **योग विज्ञान के सिद्धांत** एवं तृतीय खण्ड में **योग विज्ञान के प्रकार उपदेष्टाओं** एवं चतुर्थ खण्ड में **योग विज्ञान के उपदेष्टाओं** का भलीभांति अध्ययन कर लिया है।

इकाई 13 को पढ़ने के बाद आप योग विज्ञान के समसामयिक चिन्तक स्वामी विवेकानन्द के जीवन वृत उनके कार्यों योग विज्ञान के स्वरूप, दार्शनिक एवं शिक्षा सम्बन्धी विचारों से अवगत होगें जिससे योगदर्शन के वर्तमान स्वरूप एवं विकास के संदर्भ में आपकी दृष्टि व्यापक रूप से विकसित हो पायेगी।

इकाई 14 को पढ़ने के बाद आप योग विज्ञान एवं चेतना के चितंक श्री अरविंद के जीवन वृत उनके कार्यों योग विज्ञान के स्वरूप, दार्शनिक एवं शिक्षा सम्बन्धी विचारों से अवगत होगें जिससे योगदर्शन के वर्तमान स्वरूप एवं विकास के संदर्भ में आपकी दृष्टि व्यापक रूप से विकसित हो सकेगी।

इकाई 15 को पढ़ने के बाद आप योग विज्ञान के तथ्यों के वैज्ञानिक विधियों द्वारा अन्वेषण कार्य के प्रेरक स्वामी कूवलयानंद के जीवन वृत उनके कार्यों योग विज्ञान के स्वरूप, दार्शनिक एवं शिक्षा सम्बन्धी विचारों से अवगत होंगे जिससे योग विज्ञान के वर्तमान स्वरूप में वैज्ञानिक विधियों के माध्यम से अन्वेषण तथा विकास के संबंध में आपकी दृष्टि व्यापक रूप से विकसित हो सकेगी।

इकाई 16 को पढ़ने के बाद आप योग विज्ञान में सन्यास साधना के प्रेरक एवं योग विज्ञान के जनजागरण के सहायक स्वामी शिवानंद के जीवनवृत उनके कार्यों योग विज्ञान के स्वरूप, दार्शनिक एवं शिक्षा सम्बन्धी विचारों से अवगत होंगे जिससे योग दर्शन के सन्यास साधना के वर्तमान स्वरूप में विकास के संदर्भ में आपकी दृष्टि व्यापक रूप से विकसित हो सकेगी।

उपरोक्त योग विज्ञान के समसामयिक योग चिन्तकों के संबंध में अध्ययन करने के उपरांत आप इस योग्य हो सकेंगे तथा अपनी समझ विकसित कर सकेंगे कि योग विज्ञान का क्षेत्र वर्तमान में किस स्वरूप में है तथा किस दिशा में प्रगतिशील हो रहा है।

5.1 उद्देश्य

खंड 5 के अन्तर्गत इकाई 13,14,15 एवं 16 के अध्ययन का उद्देश्य योग विज्ञान के परिचयात्मक स्वरुप के अध्ययन में उन योग मनीषीयों के जीवन चक्र, कृतित्व एवं व्यक्तित्व से अवगत करवाना है एवं अध्येताओं के लिए योग साधना हेतु आदर्श प्रस्तुत करना जिससे उनमें योग जीवन चर्चा के महत्व की भूमिका निर्मित हो सके। साथ ही साथ योग विज्ञान के क्षेत्र में उनके विशिष्ट क्षेत्रों का विस्तारपूर्वक अध्ययन किया जा सके जिससे योग विज्ञान की विविध शाखाओं ओर बृहत क्षेत्रों की जानकारी प्राप्त हो सके। साथ ही साथ अन्य निम्नांकित उद्देश्य भी प्रमुख है।

इकाई 13 के अध्ययन द्वारा स्वामी विवेकानंद को योग विषयक दार्शनिक अवधारणाओं का ज्ञान करवाना।

इकाई 14 के अध्ययन द्वारा श्री अरविंद के चेतना के विकास और योग विज्ञान पर समग्र दृष्टिकोण का ज्ञान करवाना

इकाई 15 के अध्ययन द्वारा स्वामी कुवलयानंद के वैज्ञानिक दृष्टिकोण से प्रयोग मूलक योग प्रयोगों के अध्ययन की जानकारी प्रदान करवाना।

इकाई 16 के अध्ययन द्वारा स्वामी शिवानंद के योग विज्ञान संबंधी कार्यो एवं सन्यास योग की शिक्षा के सबंध में जानकारी से अवगत करवाना।

उपरोक्त योग दार्शनिकों के अध्ययन के उपरान्त आप योग के समसामयिक स्वरुप से अवगत हो सकेंगे जिससे आप योग विज्ञान की वर्तमान स्थिति एवं दिशा से अवगत होकर योग के वर्तमान स्वरुप को अचछी तरह से समझकर अपना दृष्टिकोण विकसित कर सकेंगे।

5.2 विषय प्रवेश

खण्ड 5 में योग विज्ञान के समसामयिक चिन्तकों को चार इकाईयों में विभाजित किया गया है। समसामयिक चिन्तकों के योग विज्ञान विषयक मतों एवं निर्देशों के अध्ययन से योग दर्शन का विस्तृत पक्ष प्रस्तुत होता है। तथा विभिन्न दृष्टिकोणों से योग जैसे गूढ़ विषय का सहज उपयोगिता निर्मित होती है।

स्वामी विवेकानंद को उनकी बौद्धिक खोज उन्हें तरुण अवस्था में ही **श्री रामकृश्ण परमहंस** की ओर खींच लाई। श्री रामकृष्ण की सेवा और धार्मिक सहिष्णुता के संदेश से वे अत्यंत प्रभावित हुए। उनकी इच्छा और गुरुतरदायित्व को पूर्ण करने हेतु उन्होनें स्वामी विवेकानंद का नाम अपनाया। उन्होनें एक सच्चे कर्म योगी के रुप में सम्पूर्ण भारत का भ्रमण बड़ी कठिनाइयों के बीच पूर्ण किया। उन्होनें भारतीय समाज की जो दशा देखी उससे उनको गहरा आघात लगा। ग्रामीण भारत अज्ञान, अंधविश्वास और जतीय अत्याचार के चुंगल में था। वे समाज की इन बुराइयों को हटाने के लिए रामकृष्ण मिशन के माध्यम से दृढ़संकल्पित हुऐ। इस उद्देश्य को पूर्ण करने हेतु जन–समूह को जोड़ने के लिए उन्होनें शिक्षा का महत्व समझा क्योंकि केवल थोड़े से शिक्षित स्त्री पुरुष राष्ट्र की समस्याओं का समाधान नहीं कर सकते थे।

स्वामी विवेकानंद भारत के लिए एक नई सामाजिक प्रथा, एक नया समाज रचना चाहते थे जिसमें सर्वोच्च प्राचीन **आध्यात्मिक परम्परा** और आधुनिक विज्ञान तथा तकनीक के विकास का सुन्दर सम्मिश्रण हो। एक ऐसा भारत जो **सांसारिक और आध्यात्मिक** दोनों स्तरों पर समृद्ध हो। वे जानते थे कि केवल सांसारिक समृद्धि ही काफी नही है, साथ ही व्यक्ति को **मानवीय चेतना** युक्त भी होना चाहिए। **संस्कृति की पहचान, सेवा का कर्मयोग** और **धार्मिक सहिष्णुता की भावना** के तीन अस्त्र लेकर उन्होंने भारत में वैचारिक क्रांति का शंखनाद किया। **शिकागो के विश्व–धर्म संसद** में उन्होंने विशेषतया स्पष्ट किया कि '' यह प्रमाणित हो चुका है कि पवित्रता, शुद्धता और दानशीलता के गुण दुनिया के किसी चर्च की केवल संपत्ति नहीं है विश्व की हरेक संस्था ने अनेक चरित्र–सम्पन्न व्यक्तित्व दिये है। इस प्रमाण को देखकर भी यदि कोई स्वयं के धर्म की वृत्ति और दूसरो के धर्म का नाश का स्वप्न देखे, तो मै अपने अन्तरस्तल से उस पर करुणा करता हूँ। मैं उन्हें बताना चाहता हूँ कि कोई कितना भी विरोध करे, प्रत्येक धर्म के पताके पर शीघ्र ही लिखा जाएगा **'' मैत्री चाहिए, युद्ध नहीं, समावेश चाहिए नाश नही संवाद और शांति चाहिए, कलह नहीं**। उनके योग पर दार्शनिक विचार उनके तीन ग्रन्थों राजयोग, कर्मयोग एवं भक्ति योग पर स्पष्ट हुए है।

श्री अरविंद ने कहा **'' सम्मपूर्ण जीवन ही योग है।''** श्री अरविंद ने मौलिक वर्ण–व्यवस्था को सराहा और बाद में उसका जो विकृत रुप हुआ, उसकी आलोचना की। उन्होनें कहा ''मानवीय संस्था का पतन होना स्वाभाविक है''। इसमें कोई शक नहीं कि जाति –व्यवस्था का पतन हुआ है, वर्ण व्यवस्था का आधार उच्च आध्यात्मिक गुण नही रहे, जो कि एक समय आवश्यक थे, अब उनका महत्व गौड हो गया है, वरन् रहा ही नही है, जाति का निर्धारण अब सिर्फ जन्म से होता है। उनका मत था कि नीची जाति में जन्मा आध्यात्मिक व्यक्ति, अनाध्यात्मिक व बौद्धिक मन के

ब्राह्मण से श्रेष्ठ है। जीवन में चेतना का विकास ही सार है। इस सार तत्व को शिक्षा के माध्यम से प्राप्त किया जा सकता है शिक्षा का सम्पूर्ण ध्येय आपके बहुमुखी व्यक्तित्व का निर्माण होना चाहिए। बौद्धिक शिक्षा के साथ–साथ उन्होंने शारीरिक शिक्षा पर भी बल दिया है। तत्कालीन स्वास्थ्य शिक्षा से वे संतुष्ट नहीं थे। उनका मानना था कि न केवल प्राथमिक वरन् उच्च शिक्षा संस्थानों में दी जा रही स्वास्थ्य शिक्षा दोषपूर्ण एवं नैतिक शिक्षा शून्य है। श्री अरविन्द शक्ति के पोषक थे। किन्तु वे सर्वप्रथम विद्यार्थियों की आन्तरिक शक्ति को बढ़ाना चाहते थे। इस संबंध में उनका विचार था **"अंतः स्थिर शक्ति को बढ़ाने की और उसे ऐसे उद्योग में लाने की जिससे उसे धारण करने वाले की चेतना का उन्नयन हो ।"** इस हेतु सबसे प्राथमिक एवं आवश्यक शर्त है, **ब्रह्मचर्य का अभ्यास**। ब्रह्मचर्य में अमोद्य शक्ति है, तथा इस शक्ति को पूर्णता की ओर बढ़ाने में योग विज्ञान की साधना सर्वश्रेष्ठ कर्म है। यह कर्म मानव को अतिमानव के परिवर्तन की सर्वश्रेष्ठ विद्या है।

स्वामी कुवलयानन्द जी अलौकिक प्रतिभा संपन्न पुरूष थे। इस दिव्य पुरूष की दिव्यता का स्त्रोत भगवान श्री कृष्ण की भक्ति में निहित था। बौद्धिक रूप से वे संस्कृत के प्रकाण्ड पंडित और उत्कृष्ट कोटि के विद्वान थे। अपनी प्रवृत्ति से वे एक वैज्ञानिक थे और विज्ञान की कसौटी पर खरी न उतरने पर वे किसी भी बात को तत्काल निरस्त कर देते थे। इससे भी अधिक वे एक महान् दृष्टा थे, जिन्होंने आधुनिक जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में योग के प्रयोग के लिए एक वृहत् क्षेत्र का अवलोकन किया था। वर्तमान काल में योग को वैज्ञानिक स्वरूप प्रदान करने में **श्रीगणेश** का श्रेय र्निविवाद रूप से स्वामी कुवलयानन्द जी को जाता है। उनका मूल योगदान योग चिकित्सा की नई विद्या को आधुनिक तकनीकी उपकरणों के साथ शोध मूलक रूप में प्रस्तुत करना था जिससे अधिकाधिक जनकल्याण संभव हो सकें। इस संदर्भ में उनकी कर्मस्थली **कैवल्यधाम लोनावाला** पूना देश की ख्याति लब्ध योग विज्ञान की प्रयोगशाला है। जहाँ सैद्धांतिक शोध के साथ ही साथ व्यवहारिक एवं तकनीकि शोधों का लम्बा इतिहास उनके बाद से सतत् गतिमान् है। योग शास्त्रों में वर्णित शोधन क्रियाओं मुद्राओं बन्धों, प्राणायाम तथा ध्यान के ऊपर वैज्ञानिक मापदण्डों के आधार पर शोध का सिलसिला यही से प्रारम्भ होकर अविरल चला आ रहा है। साहित्यानुसंधान भी यहाँ की अपनी एक विशेषता है।

स्वामी शिवानंद ने ईश्वरीय आदेश से वृत्तिक पेशा छोड़कर भारत लौटकर जनकल्याण का मार्ग चुना। योग विज्ञान में उनकी अध्यात्मिक आस्था थी। इनके योगगुरू ऋषिकेश के एक **योगी स्वामी विश्वानन्द** सरस्वती थे। इन्हीं से दशनामी (सरस्वती) परम्परा के अंतर्गत सन्यास आश्रम में दीक्षित हुए। स्वामी शिवानंद ने योग की सन्यास परम्परा को अत्याधिक गति प्रदान की। इनका उपदेश था **"सेवा, प्रेम, दान, शुद्धि, ध्यान, ज्ञान–प्राप्ति"** समसामयिक योग विज्ञानियों में ये अपना विशिष्ट स्थान रखते थे। विशुद्ध योग विज्ञान को प्रचारित प्रसारित करने का श्रेय इन्हें तथा इनके शिष्यों को जाता है। इनके एक शिष्य स्वामी सत्यानंद जी बिहार स्कूल ऑफ योग मुंगेर के संस्थापक है। जहाँ आज एक विश्वविद्यालय स्थापित हो चुका है। सन्यास और साहित्य उस आश्रम की एक बड़ी विशेषता है। स्वामी शिवानन्द योग को एक ऐसी समग्र प्रक्रिया के रूप में मानते थे जो न केवल बुद्धि वरन् सम्पूर्ण व्यक्तित्व को बदलने का एक प्रक्रम है जिससे मानव जीवन पूर्णता की ओर क्रमशः अग्रसर होता है तथा अपने लक्ष्य प्राप्त कर सकता है।

इस पंचम खण्ड में इन्हीं चार योग के समसामयिक चिन्तकों के योगविज्ञान विषयक मत्तों का अध्ययन किया जाना है।

5.3 इकाई 13 स्वामी विवेकानन्द

5.3.1 स्वामी विवेकानंद का परिचय



ई. स. 1863–1902

स्वामी विवेकानन्द का जन्म 12 जनवरी 1863 को कलकत्ता में हुआ था। मूल नाम नरेन्द्रदत्त था। वे बचपन से ही निर्भीक बुद्धिमान और स्पष्ट युवक वक्ता थे जो राजनीति, धर्म व सामाजिक विषयों पर किसी से भी विद्वतापूर्ण चर्चा करने में समर्थ थे। उनकी बौद्धिक खोज और तरूण अवस्था में ही **श्री रामकृष्ण** की सेवा और धार्मिक सहिष्णुता के संदेश से वे अत्यंत प्रेरित हुए। 16 अगस्त 1886 को श्री रामकृष्ण के अवसान के पश्चात उन्होंने अपने गुरू का संदेश समस्त विश्व में पहुँचाने का बीड़ा उठाया। वे **भारतीय नवजागरण** के अग्रदूत बन गये। देश में नवजागरण लाने के लिए उन्होंने सम्पूर्ण भारत का भ्रमण किया तथा देश के पतन के कारणों एवं जीवन के सभी पक्षों और समस्याओं पर गहराई से विचार किया।

नवजागरण के उद्देश्य से सर्वप्रथम उन्होंने सम्पूर्ण देश की विस्तृत यात्रा की, तथा इस प्रकार देश की वर्तमान सामाजिक एवं आर्थिक परिस्थितियों की जानकारी प्राप्त की। इस यात्रा में उन्हें महसूस हुआ कि देश की समृद्ध संस्कृति तथा आध्यात्मिक परम्परा की जड़े तो भारतीय जनमानस पर प्रबल और सुदृढ़ थी, किन्तु उन्होंने इस सत्य का भी साक्षात्कार किया कि देश में गरीबी, निर्धनता, द्रारिद्रय तथा इनके कारण उत्पन्न सामाजिक बुराइयां एवं निर्बलता भी व्यापक रूप में विद्यमान है। इस कारण उनका दृढ़ विश्वास हो गया कि आध्यात्मिक प्रगति तब तक संभव नहीं होगी जब तक भौतिक स्तर की कमजोरियाँ दूर न हो। इसलिए वे एक व्यापक आध्यात्मिक क्रान्ति की आवश्यकता महसूस करने लगे, साथ ही उन्हें ऐसा लगा कि इसके लिए एक सबल आध्यात्मिक नेतृत्व की भी आवश्यकता है। उनका यह विचार इसी दिशा में उनके योगदान के दृढ़ संकल्प में बदल गया।

इस वैचारिक मंथन के काल में जब वे आध्यात्मिक नेतृत्व की योजना बना रहे थे एक महत्वपूर्ण घटना घटी कि जिस आध्यात्मिक नेतृत्व की योजना में वे विचार कर रहे थे उस नेतृत्व की बागडोर सहज रूप में उनके हाथ में आ गयी। उन्हें ज्ञात हुआ कि शिकागो में **"विश्व–धर्म–सम्मेलन पार्लियामेन्ट ऑफ रिलीजन्स"** के रूप में आयोजित होने जा रहा है।

उन्होंने उसमें भाग लेने का निश्चय किया और भारतीय आध्यात्मिकता की शक्ति को विश्व के सामने प्रस्तुत करने की योजना बनाई। शिकागो विश्व धर्म–सम्मेलन में इस युवा सन्यासी की प्रभा सबको चकाचौंध कर गई। इस सम्मेलन का सबसे महत्वपूर्ण परिणाम यह रहा कि स्वामी विवेकानन्द को भारतीय आध्यात्मिकता का नेतृत्व सहज रूप में प्राप्त हो गया। इसी संदर्भ में विदेशों में भी उन्होंने अनेक यात्रायें की और वहाँ की अच्छी बातों को समझने और सीखने का प्रयास भी किया ।

विदेश प्रवास से वापस लौटकर स्वामी विवेकानन्द एक प्रमुख विचारक तथा भारतीय आध्यात्मिकता के प्रमुख चिन्तक के रूप में प्रतिष्ठित हुए। अपनी योजना को विस्तार रूप देने उन्होंने कलकत्ता के निकट बेलूर में **स्वामी रामकृष्ण आश्रम** की स्थापना की, तथा उस आश्रम के माध्यम से जनकल्याण, सेवा तथा सामाजिक सुधार का कार्य बड़े मनोयोग एवं लगन से पूर्ण आत्मिक शक्ति के बल से सम्पन्न करने लगे। सन् 1899 में उन्होंने पुनः पश्चिम की यात्रा की तथा भारतीय आध्यात्मिकता का सन्देश विदेशों में भी फैलाया। 4 जुलाई 1902 का इस समसामयिक भारतीय दार्शनिक चिन्तक का अवसान हुआ। किन्तु उनका सबल नेतृत्व आज भी दिशा निर्देश देते हुए प्रतीत हो रहा है। उन्होंने स्वामी रामकृष्ण आश्रम तथा उस आश्रम में सेवव्रत लेने वाले अनेक सन्यासियों की परम्परा इस रूप में स्थापित कर दी, कि सेवा, सामाजिक सुधार तथा आध्यात्मिक चिन्तन की अविरल धारा आज भी उसी वेग से प्रवाहमान होकर भारतीय समाज का व्यवहारिक रूप में बौद्धिक सिंचन कर रही है।

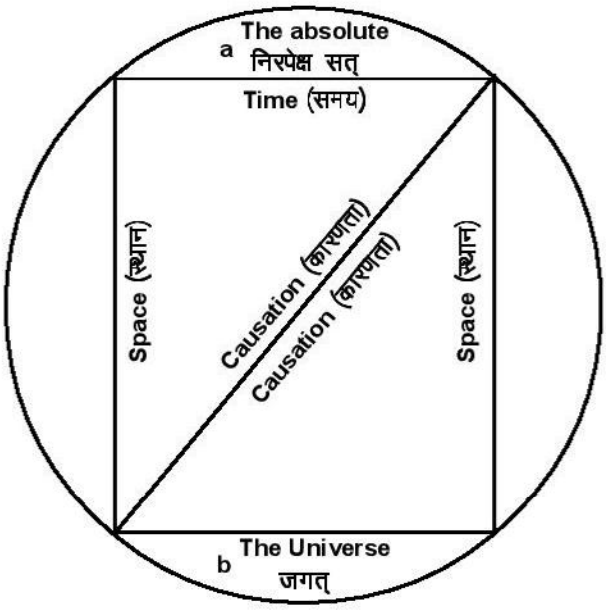
5.3.2 स्वामी विवेकानंद का आध्यात्मिक चिन्तन

स्वामी विवेकानंद ने भारत के जन–समुदाय की सामाजिक, धार्मिक एवं आर्थिक परिस्थितियों को निकट से देखा और समझा तथा इसी अनुभव की पृष्ठभूमि में उनका दार्शनिक चिन्तन का उद्भव एवं विकास हुआ। उन्होंने देखाा कि समाज में फैली कुरीतियां समाज में फैले अंधविश्वास एवं अबौद्धिक रूढ़िवाद के कारण ही उत्पन्न हैं, और इसका मूल कारण आध्यात्मिक मूल्यों का ह्रास है। इस कारण आध्यात्मिक मूल्यों की पुनः स्थापना एवं आध्यात्मिक जागरण भारतीय समाज के उत्थान का मूल उपाय है। इस हेतु उन्होंने विभिन्न धर्मों के आध्यात्मिक तत्वों को खोजने का प्रयास किया। उनके इस प्रयास में उनके विचारों को सबसे अधिक प्रभावित **प्राचीन भारतीय दर्शन** ने किया इसमें भी विशेषकर **अद्वैत एवं योग दर्शन** ने। ऐसा माना जाता है कि विवेकानंद अपने ढंग के वेदान्ती थे। उनके दार्शनिक विचार मूल प्राचीन भारतीय शास्त्रों मूलतः उपनिषदों तथा वेदान्त एवं योग दर्शन पर आधृत हैं। वेदान्त के अतिरिक्त किन्हीं–किन्हीं बिन्दुओं पर बौद्ध–दर्शन का प्रभाव भी उन पर पड़ा है। इनमें (1) सर्वमुक्ति का विचार (2) सम्यक् कर्मान्त तथा (3) सम्यक् आजीव का विचार। महायान बौद्ध विचार से भी वे प्रभावित थे कि व्यक्ति को उस नाव को इस प्रकार छोड़ना चाहिये (कबीर के शब्दों में जस की तस धर दीन्हीं चदरियाँ) कि अन्य भी उसका उपयोग कर सकें। **इसाई धर्म** में भी उन्हें एक तत्व मिला जिसमें सलीब पर टंगे ईसा की **आत्म–शक्ति** तथा **चरित्र–बल** से ये प्रभावित हुए बिना न रह सके कि ''ईसा का यह रूप उन्हें प्रबल आध्यात्मिक शक्ति का सूचक प्रतीत हुआ जहाँ वे भयानक शारीरिक यातना सहते हुए भी ईश्वर से उन लोगों के लिए क्षमा की प्रार्थना करते हैं, जिन लोगों ने उन्हें यह यातना दी। इस धर्म से उन्हें **सेवा और प्रेम** का संदेश मिला। अंधविश्वास तथा रूढ़िवादी कुरीतियों के विरूद्ध जो उनका प्रतिवाद था वह उन्हें ब्रम्ह समाज से जुड़ने से प्राप्त हुआ था। स्वामी दयानन्द से निर्भयता का गुण उन्हें मिला साथ ही सत्य के या ईश्वर के **अनिर्वचनीय** रूप का भी यही से परिचय उन्हें प्राप्त हुआ। गीता से **निष्काम–कर्म** कर्म की शिक्षा ने उन्हें विस्तार से भर दिया। सबसे ज्यादा प्रभाव उन पर उनके **गुरू रामकृष्ण** का था जिन्होंने उन्हें आत्मा के ईश्वरीय रूप, ईश्वर के अद्धैत–रूप, सत्ता का एकत्व स्वरूप तथा सभी धर्मों में निहित सामंजस्य एवं सार्वभौमता की शिक्षा दी। स्वामी विवेकानंद के विभिन्न दार्शनिक दृष्टिकोण निम्नांकित थे।

(1) सत् एवं ईश्वर का स्वरूप :– दर्शनशास्त्र के अंतर्गत **'सत्'** को एक तत्व मीमांसीय अवधारणा के रूप में जाना जाता है तथा **'ईश्वर'** को धर्मदर्शन के **'अंतर्गत'** किन्तु विवेकानंद इन्हें दो भिन्न सत्तायें नहीं मानते है। उनके अनुसार निरपेक्ष सत् को सत्, चित्त–आनन्द (existence, consciousness and bliss) के रूप में समझाा जा सकता

है। यहाँ सत् और चित्त को वे अद्धैत वेदान्त के आधार पर मान्यता देते है वो आनन्द को ईसाई स्वरूप के साथ यह मानते है कि आनन्द के मूल में प्रेम (Love) है। उन्होंने कई जगह कहा **'प्रेम में ही आनन्द है'** परम सत् ही हमारी **भावना, आराधना** और **भक्ति** का विषय भी है। उनका दृढ़ विश्वास था कि स्वामी रामकृष्ण को ईश्वर से साक्षात्कार की स्पष्ट अनुभूति थी अतः अपने मन में वे यह श्रद्धा एवं विश्वास रखते थे कि ईश्वर – अस्तित्व की स्थापना के लिए तर्क, युक्तियाँ, बौद्धिक निर्देश आदि की वस्तुतः आवश्यकता नहीं है, क्योंकि ईश्वर की साक्षात् **अनुभूति** सम्भव है। उनका यह भी मानना था कि जगत् की विभिन्न वस्तुयें जो एक दूसरे से सर्वथा भिन्न प्रतीत होती है, वस्तुतः तथा मूलतः एक रूप ही हैं। इस आधार पर मनुष्यों, जीवों सभी में एक ही तत्व का **स्पंदन** है। अतः गरीब, अमीर, ऊँच–नीच आदि मानवीय भेद मिट जाना चाहिये।

(2) जगत् या ब्रम्हाण्ड का स्वरूप :– इस संदर्भ में विवेकानंद जी का यह विचार है कि यह जगत् **सृष्टिकर्ता** (ईश्वर) की सीमित रूपों में अभिव्यक्ति है। ईश्वर असीम जगत् ससीम कैसे बन जाता है? इसे विवेकानंद अपने ज्ञान योग में समझाते है।



निरपेक्ष सत् (a) जगत् (b) में व्यक्त होता है। यहाँ जगत् के अंतर्गत केवल **भौतिक जगत** ही नहीं, बल्कि **मानसिक जगत् आध्यात्मिक जगत, धरती, आकाश** वस्तुतः सभी अस्तित्ववान तत्वों से है। एक परिवर्तन को मन कहा जाता है दूसरे को शरीर। इन्हीं सभी परिवर्तनों से जगह संरचित है। निरपेक्ष सत् (a) जगत् (b) में परिवर्तित होता है, तथा यह परिवर्तन स्थान काल एवं कारणता (c) के माध्यम से होता है।

यह स्पष्ट है कि निरपेक्ष सत् (a) में स्थान, काल कारणता आदि नहीं हैं। इसमें **'स्थान'** के लिए कोई स्थान नहीं है। क्योंकि निरपेक्ष सत् में कोई स्थान परिवर्तन नहीं होता। निरपेक्ष सत् में **'काल'** के होने का भी प्रश्न नहीं उठता क्योंकि काल वहीं होता है जहाँ काल की गणना की जा सकें, तथा उस गणना के लिए ''विचार'' की आवश्यकता होती है। ऐसी संभावनायें निरपेक्ष सत् के लिए अनर्गल है। उसी प्रकार **निरपेक्ष सत् तो ''एक''** ही है। अतः उसके साथ कारणता का प्रश्न उठाना भी अप्रासंगिक है। अर्थात्, स्थान, काल तथा कारणता की सार्थकता निरपेक्ष सत् के लिये नहीं है बल्कि सृष्टि प्रक्रिया के लिए है।'' अर्थात् **'जगत'** अंतिम रूप में पूर्णतया निर्मित नहीं है, सृष्टि कोई ऐसा निर्मित पदार्थ नहीं है जिसे अंतिम रूप दे दिया गया हो। स्वामी विवेकानन्द जी तो सृष्टि की नहीं बल्कि सतत् चलती रहने वाली सृष्टि प्रक्रिया की बात करते हैं। सृष्टि तो सदा होती रहती है। इस अर्थ में सृष्टि भी **'काल'** से परे है। सृष्टि का वस्तुतः न कोई निश्चित आदि है और न कोई निश्चित अन्त। यह प्रक्रिया तो सदा चलती रहती है। सृष्टि ईश्वर

की अभिव्यक्ति है, अतः सृष्टि को **'काल'** में स्थित करने का प्रयत्न अनुपयुक्त हैं। और ऐसा भी नहीं कि अमुक दिन या अमुक काल में सृष्टिकर्ता ने सृष्टि की है, तथा उसके बाद उस समय से वह पूर्णतया अकर्मण्य हो सोया हुआ है। ऐसा विचार ईश्वर के स्वरूप को नहीं समझने जैसा है। ईश्वर की सर्जनात्मक शक्ति सदा कार्यरत रहती है, वह सदा निर्माण करता रहता है। स्वामी विवेकानन्द जगत की उत्पत्ति की व्याख्या सृष्टिवाद के आधार पर करते है तथा सृष्टि के हो जाने पर उसके विकास की व्याख्या विकासवादी ढंग पर करते है। उनके अनुसार विकास का अर्थ है **"सूक्ष्म से स्थूल से परिणत होना"**।

(3) माया (प्रकृति) सिद्धांत :– माया से जगत् का एक विशेष तथ्य सूचित होता है। "**माया**" जगत् की व्याख्या का कोई सिद्धांत नहीं है, बल्कि जगत का एक **तथ्यात्मक विवरण** है – तथ्य जिस रूप में है उन्हें सूचित करने का एक ढंग है। स्पष्टतः जगत में हमारे अस्तित्व का आधार विरोधों तथा व्याघातों में है जगत में **विरोध अथवा व्याघात** भरे पड़े है। जहाँ शुभ है, वहाँ अशुभ भी है तथा जहाँ अशुभ है वहां कुछ शुभ भी है। जीवन है, तो जीवन का अन्त–मृत्यु अनिवार्य है। जो हंसते हैं, उन्हें रोना भी पड़ता है, जो रोते हैं, उन्हें हंसने का भी अवसर मिलता है। इस प्रकार जीवन में, अस्तित्व में, जगत में विरोधी तत्व भरे पड़े है। **'माया'** नाम से जगत में स्थित इन्हीं विरोधों अथवा व्याघातों का बोध होता है।

हम अपने जीवन को ही देखें, यह भी स्पष्टतः 'संत्–असत्' है, नहीं हैं, होने–नहीं होने के मध्य झूलता रहता है। कभी कभी हमें ऐसा प्रतीत होता है कि हम सब कुछ जान सकते हैं, और उसी क्षण कुछ ऐसा अवरोध उत्पन्न हो जाता है कि हमारी सारी ज्ञान–प्रक्रिया कुण्ठित हो जाती है। एक प्रकार से हमारे सारे कार्य सभी क्रियायें एक चक्र में घूमती (क्रम बद्ध पर्याय) रह जाती है। और उस चक्र से हम निकल भी नहीं पाते । यही तो जीवन की वास्तविकता है और यही माया है। हम किसी वस्तु को **जड़तत्व** कहते हैं, किसी को **मन** (चेतनवत्) कहते हैं तो किसी को **"आत्म"** (चेतन) कहते हैं हम अपनी ओर से जो नाम दे लें, वह वस्तु जो है, वह है, हम निश्चित रूप में नहीं कह सकते कि वे हैं, या नहीं हैं। जगत में व्यक्त यही **"विरोध"** तो माया है। माया की इसी विशिष्टता के कारण उसे अनिवर्चनीय (ब्रम्ह के समान) कहा गया है। न उसे सत् कहा जा सकता है, न उसे अस्तित्वान कहा जा सकता है, न अस्तित्वरहित कहा जा सकता है।

(4) **जीव का स्वरूप** :– मनुष्य क्या है? जिस रूप में वह दिखाई देता है, वह शरीरधारी रूप ही मानव है, या 'मानव' से वह तत्व सूचित होता है जो शरीर से भिन्न है जिसे **आत्मा** कहा जाता है। मानव के समक्ष ऐसे साक्ष्य सदा उपस्थित होते रहे हैं, जो उसे मानव की वास्तविकता के रूप में आत्मा को स्वीकारने के लिए बाध्य करते रहते है। मृत्यु क्या है? उसे विवश हो कल्पना करना पड़ता है कि शरीरधारी मनुष्य वास्तविक मानव नहीं है, वास्तविक मानव कोई **जैविक** शक्ति है जो मृत्यु के समय सदा के लिए शरीर का त्याग कर देती है यही शक्ति जीव है।

विवेकानंद जी का कहना है कि मानव की वास्तविकता वस्तुतः एक प्रकार की केन्द्रित आध्यात्मिक शक्ति है जिसे जीवात्मा (Spirit) कहा जा सकता है। मानव का ऊपर से दिखाई देने वाला रूप उसका वास्तविक स्वरूप नहीं है बल्कि मानव में जो भावना प्रधान शक्ति है उसे जीवात्मा कहते है। इस प्रकार मानव के दो पक्ष है। (1) उसका भौतिक या शारीरिक स्वरूप तथा (2) जीवात्मा या आत्मिक स्वरूप। भौतिक स्वरूप के अंतर्गत मनुष्य का शारीरिक, जैविक तथा मनोवैज्ञानिक पक्ष आता है यह उसका निम्नतर पक्ष है। उसका उच्चतर पक्ष उसके आध्यात्मिक स्वरूप, या आत्म रूप में है। मनुष्य के इस स्वरूप को विवेकानंद **आत्म–शक्ति** (Soul - force) या **आत्मन्** कहकर करते हैं। यह आत्मन् तथा ब्रम्ह में अंश अंशीं भाव संबंध है। जैसे सागर में उठती लहरे हर लहर अलग है किन्तु है सागर। बर्तनों मे रखे जल मे सूर्य या चन्द्रमा का प्रतिम्बिम्ब अलग अलग है किन्तु सूर्य या चंन्द्रमा है एक ही। इसी प्रकार प्रत्येक मनुष्य का आत्मन एक ही है, वह परिवर्तित नही होता जो परिवर्तन या भेद दिखाई देता है वह आत्मन् की प्रतीतियॉ है, आत्मन का परिवर्तन या वैविध्य नहीं। आत्मन् में निहित ईश्वरीय रूप का सबसे स्पष्ट साक्ष्य मनुष्य में सदा **परे** जाने की शक्ति का निहित होना है। यह परे जाने की शक्ति उसके इश्वरीय स्वरूप की घोतक है । यही विवेकानन्द जी का "आत्मा" तथा "परमात्मा" के तादात्म या एकरूपता का स्वरूप है, यही उनका जीवात्मवाद है।

(5) **आत्म अनुभूति के साधन** :–

स्वामी विवेकानंद आत्म अनुभूति के साधन या मार्ग के संबंध में कहते है कि आत्म अनुभूति का साधन या मार्ग **योग** है। योग क्या है? सामान्यतः **योग** शब्द के साथ दो अर्थ जुड़े रहते हैं। इसका एक अर्थ है **मिलन** तथा दूसरे अर्थ में यह एक 'विशेष प्रकार की **साधना** सूचित करता है। विवेकानंद ने इस शब्द का बड़ा ही व्यापक अर्थ दिया है, अतः उनके अर्थ में उपरोक्त दोनों ही अर्थ समाविष्ट है, इस अर्थ में योग एक ऐसा मार्ग है जो साधना का मार्ग है तथा जो मिलन का मार्ग है इस मार्ग में चलने के कुछ अनुशासन है जिनके द्वारा **मिलन** की अनुभूति संभव होती है। इन अनुशासनों का संबंध (1) ज्ञान संज्ञान क्रियाओं से भी हो सकता है, या (2) भावना से भी हो सकता है या (3) मानवीय क्रियाओं से भी हो सकता है, या (4) इन तीनों अनुशासनों के समन्वयन् से भी हो सकता है। विवेकानन्द इस अंतिम विकल्प को ज्यादा महत्व देते है। इन चारों अनुशासनों का नाम क्रमशः (1) **ज्ञान योग** (2) **भक्ति योग** (3) **कर्मयोग** एवं (4) **राजयोग** है।

(1) **स्वामी विवेकानन्द का ज्ञान योग** :–

ज्ञान योग इस अनुभूति पर आधारित है कि बंधन का मूल कारण **अज्ञान है।** अज्ञान का अर्थ सत् के स्वरूप का अज्ञान है, सत्–असत् के भेद को समझ पाने की असमर्थता–अक्षमता है। तो, यदि सत्–असत् में भेद नहीं कर पाना अज्ञान है, तो इस भेद को समझ लेना **ज्ञान** है। सत् असत् के भेद का ज्ञान ही विभिन्न नामों से निरूपित होता रहा है, यही आत्म–ज्ञान है, यही पूर्ण एकत्व का ज्ञान है, यही **ब्रम्ह–ज्ञान** है। इस प्रकार का ज्ञान केवल **गुरू** से सुनकर या ग्रन्थों को पढ़कर प्राप्त नहीं हो पाता । इस ज्ञान का अपना महत्व है। इसकी अपनी उपयोगिता है, किन्तु यदि इन्हें उसी स्तर तक सीमित रखा जाय तो वे **ज्ञान** नहीं **जानकारी** मात्र ही रह जायेंगे । **ज्ञान** के लिए अध्ययन तथा गुरू से सीखी बातों में निहित वास्तविकता को अनुभूत करना अनिवार्य है। इसके लिए सीखे हुए सत्यों पर **मनन** एवं **ध्यान** अनिवार्य है। इसी कारण **मनन, निदिध्यासन, ध्यान** आदि को ज्ञानोपार्जन का अनिवार्य अंग माना जाता है। **ध्यान केन्द्रित करने** का कार्य कोई सरल कार्य नहीं है । ध्यान के लिए अपनी पूर्ण शक्ति **ध्यान के विषय** पर केन्द्रित करने की आवश्यकता हाती है। आत्म की शक्तियां शारीरिक क्रियाओं में, ज्ञानेन्द्रिय और कर्मेन्द्रियों के माध्यम से क्षय होती रहती है इस कारण ध्यानस्थ होने के एक चरण के रूप में इन शक्तियों का **प्रत्याहरण** (वापस लेना) करना पड़ता है। इसका अर्थ **ज्ञान योग के संदर्भ** में यह है कि ज्ञान–योग के लिए शरीर, मन एवं इन्द्रियों पर पूर्ण नियंत्रण अनिवार्य है । हमारे सामान्य कार्य इन्द्रिय–तुष्टि के कार्य होते हैं, इसका नियंत्रण अनिवार्य है। इन्द्रियों की मांगों का एक प्रकार से उन्मूलन करना अर्थात शारीरिक आवश्यकताओं को प्राश्रय न देकर उनकी उपेक्षा करना पड़ता है। इसे **त्यागत** तथा **सन्यास** कहा जाता है। इस प्रकार का त्याग या सन्यास ज्ञानयोग की आवश्यक कड़ी है। यह निवृति का मार्ग है, इसका अर्थ है स्वार्थ मूलक तथा **शरीर आधृत** सभी इच्छाओं का त्याग, एवं मन, शरीर तथा इन्द्रियों पर पूर्ण नियंत्रण। इसी कारण इसे **वैराग्य** भी कहते हैं।

इस वैराग्य का एक भावात्मक पक्ष यह है कि इसकी प्रेरणा का आधार **ब्रम्ह–ज्ञान** की प्रबल आकांक्षा है। यदि इस **ज्ञान की आकांक्षा** में त्याग का आधार नहीं है, तो वह वस्तुतः सन्यास नहीं है। **ज्ञान की आकांक्षा** साधारण इच्छा जैसी कुछ नहीं है, क्योंकि इसका लक्ष्य सांसारिक या भौतिक नहीं है, बल्कि तात्विक है। **मन** जब इस वैराग्य में रमने लगे तब ध्यान साधना की जा सकती है। इसमें सभी शक्तियों को एकत्रित कर ज्ञान की दिशा में (प्रशांत चिंतन) क्रियाशील करना पड़ता है। **ध्यान का विषय** क्या इस हेतु स्वामी विवेकानंद जी कहते है कि प्रारंभिक अभ्यास में किसी **'रुप या विषय'** का चयन किया जा रहा है, जैसे विभिन्न ईश्वरीय गुणों को जानने का प्रयत्न करना। धीरे–धीरे सतत् अभ्यास तथा उसी दिशा में प्रगति से ध्यान की "प्रक्रिया" सधन होती जायेगी तथा व्यक्ति पूर्ण ध्यान अथवा समाधि की अवस्था तक पहुँच जावेगा। ज्ञान योग की यही परिणित है यहां आत्म तथा ब्रह्म का भेद अभेद हो जाता है। यही **ज्ञान योग** का लक्ष्य है, **पूर्ण ज्ञान** है। जिस ज्ञान के बाद अज्ञान अन्तिम रुप में समाप्त हो जाता है यहि **आत्म का मोक्ष** है। ज्ञान योग मोक्ष प्राप्ति की प्रक्रिया है।

(ii) स्वामी विवेकानंद का भक्ति योग

भक्ति योग या भक्ति मार्ग भावनाओं को धनीभूत करके ईश्वर को प्राप्त करने का मार्ग है। भावनाओं के आवेगों में इतनी शक्ति होती है कि वे मनुष्य में निहित शक्तियों को जाग्रत कर क्रियाशील बना देती है। साधारण भावनाओं को क्रमशः जैसे प्रबल संवेगात्मक अनुभूतियों में परिणित किया जा सकता है जैसे साधारण **प्रेम** के मनो आवेग को क्रमशः प्रबल मनोआवेग में पर्णित कर साधारण भक्ति को **परम भक्ति** में परिणित किया जा सकता है। यही ईश्वरीय सत्ता में लगाव भक्ति योग का वैचारिक आधार है। प्रेम या भक्ति मानव स्वभाव का सहज अंश है। अन्तर केवल यही है कि प्रेम में यदि विषय सीमित एवं साधारण वस्तुओं को लेकर है तो ऐसे प्रेम में स्थायित्व नहीं रह पायेगा, जो अन्ततः सत् भी नहीं होगा। इस प्रकार साधारण प्रेम वस्तुतः शुद्ध प्रेम नहीं है, बल्कि **आकर्षण** है, आसत्कि है। भक्ति मार्ग शुद्ध प्रेम का मार्ग है, भक्ति में जिससे प्रेम है वह कोई सीमित वस्तु नहीं बल्कि स्वयं परमेश्वर है। इस प्रकार के प्रेम में सर्व प्रेम की आवश्यकता है। हर वस्तु तथा हर तत्व के लिए प्रेम निहित होता है क्योंकि यह सबके एक मात्र आधार **ईश्वर** के प्रति प्रेम है अतः यह प्रेम अत्यन्त व्यापक तथा अत्यन्त सधन बनें की उसमें सब कुछ समाविष्ट हो जाय तब शुद्ध प्रेम उत्पन्न हो सकेगा यहि सच्ची ईश्वर भक्ति होगी और यही **भक्ति योग** होगा। इस ईश्वरीय प्रेम को प्राप्त करने की अनेक कड़िया है इस लक्ष्य तक पहुँचनें के कुछ सोपान है जो निम्नोक्त प्रकार के है।

(1) प्रथम स्तर सामान्य **पूजा, प्रार्थना, आराधना** इत्यादी। इसमें अराध्य की सगुण उपासना होती है। इसमें ऋषियों, मुनियों, देव पुरुषों, पैगम्बरों, आदि को महत्व है। मूर्ति पूजा इसी का एक रुप है।

(2) **पूजा की सधनता** या व्यापकता :– इसमें पूर्ण भक्ति के साथ ईश्वर की प्रार्थना, ईश्वर का अन्तःकरण से सुमिरन, उनके गुणों में ध्यान, उनका कीर्तन, श्लोकों का जाप आदि दैनंदिन के कर्म हो जाते है। अन्त में इन कार्यो का अर्थ स्पष्ट होने लगता है। तथा चेतना इन कार्यो की अर्थपूर्णता को ग्राह्य करने लगती है।

(3) **मौन का अर्न्तनाद** :– इस स्तर पर प्रार्थना आदि द्वितीय स्तर की सधनता मौन और शान्त होने लगती है। भक्त का हर क्षण ईश्वर के आनंद से विलग नहीं होता है उसकी सारी भावनात्मक शक्ति ईश्वरीय प्रेम में लग जाती है तथा ईश्वर की अनुभूति होने लगती है।

(4) **भक्ति की पूर्णता** :– इस स्तर पर अनुभूति की सधनता इतनी धनीभूत होती है कि भक्त में भगवान की भावना की अनुभूति का भी अन्तर नही रह जाता केवल ईश्वर में **तल्लीनता मात्र** रह जाती है। भक्त भगवान सादृश्य हो जाते है यह एकत्व की भावनात्मक अनुभूति है यही भक्ति योग है यही प्रेम योग है। इस योग के साधन स्वरुप भावनायें हर एक मनुष्य में **जन्मजात** सहज प्राप्य है केवल इन्हें धनीभूत करना होता है। अतः सब योगो में यह कही ज्यादा सरल मार्ग है।

(iii) स्वामी विवेकानंद का कर्मयोग

कर्मयोग नीति विषयक तथा धर्मशास्त्रीय एक निश्चित व्यवस्था है इस मार्ग के दो उपमार्ग या अनुशंशायें है।

(अ) शुभ कर्मो की अनुशंसा।

(ब) निःस्वार्थ कर्मो की अनुशंसा।

यह मार्ग तात्विक चिन्तन ये सिद्धांतों में नही उलझाता कि आत्म क्या है? मैं कौन हूँ? किसी परिकल्पना का इस योग में महत्व नहीं है। केवल स्वर्थ को त्याग, शास्त्र सम्मत नैतिक शुभ कर्मो को करतें चले जाना। इसमें कर्म की ही प्रधानता है अर्थात यह मार्ग पलायनवादी नहीं है, तथा किसी प्रकार के सन्यास की अनुशंसा नहीं करता कर्ममार्गो को जगत् के साथ शुभ–अशुभ, दुखः कलेशों, के मध्य निरपेक्ष भाव से अपने कर्मो को करते रहना है क्योंकि कर्म के बिना जीवन की कल्पना भी नहीं की जा सकती है अतः **निःस्वार्थ निष्काम कर्म** करना जिससे कर्मो का बंधन ही नहीं होगा। और जब कर्मो का बंधन ही न होगा ता मोक्ष तो स्वतः परिणित हो जावेगा। विवेकानंद जी का कहना है कि कर्म ऐसे न हो कि **कर्म ही बन्धन हो जावे**। कर्म करने वाले पर लदकर बोझ हो जाय। बल्कि कर्ममार्गी जो कर्मो का दास न बनकर कर्मो का स्वामी बनता है उनका संचालन एवं नियंत्रण अपने हाथ हो। व्यक्ति जब कर्मो को

स्वार्थ मूलक इच्छाओं के अधीन होकर सम्पादित करता है तब वह कर्मो का दास हो जाता है। कर्मयोग में तो कर्मो का स्वामी बनना है। गीता के कर्मयोग का प्रभाव विवेकानंद पर था इस रुप में वे कहते है कि **कर्मयोगी** को सदा **"दाता"** के रुप में कर्म करना चाहिए। इस प्रकार की प्रेरणा उसे अन्तिम लक्ष्य मोक्ष तक पहुचायेगी क्योंकि उसके कर्म के संचालन का भी यही भाव एवं लक्ष्य है परमार्थ हेतु वह भी सतत् कर्म करता है इस प्रकार सायुज्य कर्म करने पर भेद ही नहीं होगा यहि **भेदाभेद** मोक्ष हैं यही कर्मयोग है। विवेकानंद इस कर्मयोग हेतु गौतम बुद्ध का उदाहरण देते है कि निर्वाण प्राप्ति के बाद भी लम्बी अवधि तक वे कर्म क्यों करते रहे। उनके वे कर्म अपने लिए नहीं थे वे पलायनवादी नही थे सब कुछ छोड़कर पुनः सबके मध्य सबके शुभ हेतु कर्म करते रहे **प्रतिदान स्वरुप अपने लिये कुछ भी नहीं**। कर्मयोग का यह सर्वोच्च आदर्श है। स्वा तथा शरीर की सीमा से परे सभी इच्छाओं को छोड़कर निष्काम कर्म का सहजभाव यही भाव अमरता की मोक्ष की प्राप्ति है। यही कर्मयोग मार्ग की मंजिल है।

(iv) स्वामी विवेकानंद का राजयोग

इस मार्ग में अमरता की प्राप्ति हेतु मन तथा शरीर के पूर्ण नियंत्रण एवं सामंजस्य की अपेक्षा की जाती है। यही बात ज्ञान मार्ग का भी विषय है किन्तु राजमार्ग में इसकी एक विशेषता यह है कि इस शरीर और मन को नियंत्रित करने हेतु मार्ग दर्शक दशायें भी पूर्व निर्धारित है। इस मार्ग में शरीर और मन पर नियंत्रण के स्तर की सतत् माप की जा सकती है। इस मार्ग के मार्ग दर्शक चिन्हों पर प्रवेश के नियम कठोरता से पालनीय होते है तभी चरम लक्ष्य तक पहुंचा जा सकता है।

इस मार्ग की नींव वैसे तो अनादि रही हे किन्तु नवनिर्माण का श्रेय महर्षि पतंजली के नाम जाता है।इस मार्ग की मार्गदर्शक पुस्तिका **योगसूत्र** है। इस मार्ग के आठ अंग बड़े स्पष्ट एवं तेजी से गतिशील होनें में सहायक होते है। इस कारण इस योग को योगों का राजा (श्रेष्ठ) राजयोग कहा गया है। इसकी परिभाषा में ही कह दिया गया है कि यह मार्ग ईश्वर में लीन होने का मार्ग है। इस मार्ग में चलने के स्पष्ट नियम या अनुशासन है। मार्ग की बाध ाओं और निर्ममताओं से बचने हेतु ये नियम या अनुशासन है जिससे मंजिल तक पहुचने में व्यवधान न हो। इस मार्ग के अनुशासन में शरीर एवं मन रुपी चक्रों को सम्यक गति देकर साधना पड़ता है दोनों में से किसी भी की गति में परिवर्तन साधन को ही नष्ट कर सकता है। मंजिल तो दूर की बात है। शरीर की प्रकृति मन को तथा मन की चंचलता शरीर को स्थिर नहीं होने देती इस कारण अस्थिर दशा सत् का स्वरूप नहीं हो सकती सत की दशा स्थिर अचल, अमरपद है। अतः इस योग में शरीर पर नियंत्रण एवं मन पर नियंत्रण के लिए अष्टांग मार्ग का विधान हैं शरीर पर नियंत्रण हेतु बहिरंग साधना तथा मन पर नियंत्रण हेतु अन्तरंग साधना निर्देशित है। यम, नियम, आसन, प्राणायाम प्रत्याहार के द्वारा शरीर पर नियंत्रण प्राप्त कर धारणा ध्यान और समाधि द्वारा मन पर नियंत्रण प्राप्त करना तथा अन्तरंग साधना का सयंम चरम लक्ष्य हेतु करना राजयोग है।

स्वामी विवेकानंद ने इन चार मार्गो को मोक्ष या आमरता की प्राप्ति के साधन हेतु प्रस्तुत करने का कारण भी स्पष्ट कर दिया है कि (1) मनुष्यों में अभिरुचि (2) मनुष्यों की मनः स्थिति (3) मनोवृत्ति तथा (4) व्यक्तिक क्षमता की भिन्नता रहती है अतः इस विभिन्नता के कारण कोई ज्ञानमार्ग , कोई भक्ति मार्ग, कोई कर्ममार्ग तथा कोई राजमार्ग को अपना सकें। पृथक पृथक मार्ग से यह धारणा नही बनना चाहिऐ कि ये मार्ग पूर्णतः एक दूसरे से पृथक है। बल्कि प्रक्रिया भेद में भिन्नता है तथा अन्तः समन्वय भी है। तथा इन सभी मार्गो का लक्ष्य भी समान है, एक है। किन्तु मार्ग जो भी चुना जावे उसमें पूर्ण निष्ठा और शक्ति लगाना ही पड़ेगा।

5.3.3 स्वामी विवेकानंद की शिक्षायें

स्वामी विवेकानंद की शिक्षायें सभी के लिए प्रेरणास्पद है खासकर युवाओं के वे विश्वभर में अग्रणी पथप्रर्दशक के रुप में जाने जाते है। स्वामी जी ने कहा ''संसार के इतिहास का पर्यालोचन करो तो जहां कहीं भी किसी महान् आदर्श का संधान मिले तो समझ लो कि इसका जन्म भारतभूमि में हुआ था। अतीतकाल से भारत–भूमि, मानव–समाज के लिए अमूल्य भावों की खान बनी हुई है। स्वमी विवेकानंद अपनी शिक्षाओं में अपने गुरु के सिद्धांत अवश्य प्रचारित

करते थे ये सिद्धांत निम्नलिखित है।

(1) सर्वधर्म समन्वय वेद का प्रथम सूत्र है – नर–नारायण की सेवा।

(2) राष्ट्र तथा समाज की उन्नति और कल्याण के लिए सबसे अधिक आवश्यक है कि देशवासी **'मनुष्य बनें''**।

स्वामी विवेकानंद अपने गुरु के अध्यात्म को स्वयं अपने शब्दों में कहा करते थें ''शरीर और आत्मा मिलकर मनुष्य बनते है। शरीर तुच्छ नहीं है, **शरीर आत्मा का मंदिर है। सुन्दर मंदिर मं सुन्दर** विग्रह के रहने पर सोने में सुहागा होता है। इसलिए शरीर–मंदिर को स्वस्थ्य बनाओं। हमारे पूर्वज कह गये है – शरीर माद्यं खलु धर्मसाधनम्। **देह मंदिर और विग्रह आत्मा है। आत्मा ही ईश्वर है। आत्मा के प्रति अविश्वास का अर्थ है नास्तिकता।**

स्वामी विवेकानंद ने उपनिषदों की शिक्षा का सार बताते हुऐ कहा इनमें स्मरण रखने लायक यदि कुछ है तो वह यही है कि **हे मानव ! साहसी बनों, कायर पुरुष मत बनों''**।

स्वामी जी कि निम्नलिखित शिक्षायें उल्लेखनीय है।

(1) **मै फौलादी मांसपेशियों** तथा लोहे के समान सशक्त स्नायुतन्त्र की कामना करता हूँ जिसके अन्दर इसी ध ाातु से बना हुआ सशक्त मन हो। ऐसे ही पदार्थ से व्रज की भांति शक्ति सम्पन्न मानवता का निर्माण होना चाहिए। तुम्हारे अन्दर अनन्त शक्ति का भंडार है, तुम सब कुछ करने में समर्थ हो। इस बात को मन से निकाल दो कि तुम दुर्बल हो। किसी के पथ प्रदर्शन के बिना भी तुम सब कुछ करने में समर्थ हो। तुममें शक्ति का अनन्त भंडार है। उठो और अपने देवत्व को अभिव्यक्त करों।

(2) **वीर एवं साहसी बनों !** तुम्हारा संकल्प पत्थर की भाँति दृढ़ होना चाहिए। सत्य की हमेशा विजय होती है – **सत्यमेव जयते**। जनता राष्ट्र की शिराओं में नवीन ओजस्विता को आलोड़ित करने के लिए विद्युत शक्ति की सी ऊर्जा चाहती है। साहसी बनों, **मनुष्य की मृत्यु एक बार होती है**। मैं चाहता हूँ– मेरे शिष्य कायर न हो। मैं कायरता से घृणा करता हूँ। अपने मानसिक सन्तुलन को बनाये रखो। यदि कोई मूर्ख व्यक्ति तुम्हारे बारे में अनर्गल बातें करे तो उस ओर जरा भी **ध्यान मत दो उपेक्षा करो, उदासीन रहो,।** बड़े अवरोधों को पार करके ही महान् उत्तरदायित्वों को प्राप्त किया जा सकता है। मनुष्योचित पुरुषार्थ से सम्पन्न बनो।

(3) **पीछे मुड़कर देखने की** आवश्यकता नहीं है। आगे बढ़ों। हमें सीमाहीन ऊर्जा, असीम साहस , असीम धैर्य, असीम उत्साह की आवश्यकता है, तभी महान उपलब्धि हो सकती है।

(4) **शक्ति एवं सामर्थ्य** ही जीवन है, दुर्बलता ही मृत्यु। सामर्थ्य में ही आनन्द है, आत्मा अनित्य एवं शाश्वत है। दुर्बलता ही सतत् तनाव एवं दुःख का कारण है, दुर्बलता मृत्यु हैं बचपन से ही सकारात्मक शक्तिशाली, सहायक वृत्तियों को मन में आरोपित करना चाहिए।

(5) **क्लीवता ही कष्टों** का मुख्य कारण है। दुर्बल होने पर हम दयनीय हो जाते है। दूर्बलता एवं कायरता की वजह से हम झूठ बोलने, चोरी करने, हत्या करने एवं अन्य दुष्कर्मो को करने के लिए विवश हो जाते है। दुर्बलता की वजह से ही हम कष्ट भोगते है। हम दुर्बल है यही हमारी मृत्यु का कारण है। जहाँ दुर्बलता नही वहाँ न मृत्यु है न दुःख।

(6) शौर्य की सर्वाधिक आवश्यकता है। विश्व की सभी समस्याओं का निदान है। शौर्य एवं सामर्थ्य। शक्तिशाली अत्याचारियों द्वारा प्रताड़ित व्यक्तियों के लिए शौर्य ही एकमात्र दवा है। शिक्षितों के द्वारा प्रताड़ित होने पर अज्ञानियों के लिए भी शौर्य ही एकमात्र दवा है। गुनहगारों से प्रताड़ित होने पर पीड़ितों के लिए भी यही एकमात्र औषध है।

(7) **खड़े हो,** निर्भीक बनो, शक्तिशाली बनों। उत्तरदायित्व से भागों नहीं, उसे सहर्ष स्वीकार करो। इस बात को जान लो कि अपने भाग्य के निर्माता तुम ही हो, अन्य कोई नहीं। तुम जो शक्ति, सामर्थ्य एवं सहयोग की अपेक्षा करते हो वह और कहीं नहीं, तुम्हारे अंदर ही है। अतः अपनी **नियति के निर्माता स्वयं बनो।**

(8) **वेद पाप की अवधारणा** को मान्यता नहीं देते। मनुष्य से भूल होना संभव है। वेद के अनुसार **सबसे बड़ी**

मूल है अपने को दुर्बल मानना, अपने को पापी मानना, अपने को दयनीय मानना, अपने को अशक्त मानना तथा अपने को अकर्मण्य मानना।

(9) भौतिक जगत् हो या आध्यात्मिक जगत् यह सत्य है कि पतन एवं पाप का कारण है, **भय।** भय से ही दुःख, मृत्यु एवं अनिष्ट आते है। प्रश्न है कि भय का कारण क्या हैं? अपने स्वरूप की विस्मृति एवं अज्ञान ही भय का स्त्रोत् है। हम तो सम्राटों के भी सम्राट ईश्वर के उत्तराधिकारी अथवा अंश हैं –**अमृतस्यप पुत्राः** हैं। सभी पापों एवं दुष्कर्मो को एक शब्द में व्याख्यायित किया जा सकता है, और वह शब्द है **'दुर्बलता'।** प्रत्येक दुष्कर्म का प्रेरक तत्व है दुर्बलता। हर प्रकार की स्वार्थपरायणता का मूल है दुर्बलता। दुर्बलता के कारण ही व्यक्ति अपने को उस छद्म रूप में अभिव्यक्त करने का प्रयास करता है, जो कि वास्तव में वह है ही नहीं।

(10) **हमारे जनसमूह** के लिए आवश्यक है कि उनमें फौलादी मांसपेशियाँ, लौह सदृश स्नायुतंत्र, दृढ़ इच्छाशक्ति हो, जिसका प्रतिरोध कोई भी न कर सके। ऐसे संकल्प वाले व्यक्ति ही ब्रह्माण्ड के रहस्य का उद्घाटन करने में समर्थ हो सकते हैं। ऐसे व्यक्ति ही अपने संकल्प की पूर्ति के लिए किसी भी सीमा तक, चाहे वह अतल समुद्र की गहराई हो, जा सकते हैं अथवा उन्हें मृत्यु का भी सामना करना पड़े, तो वे कर सकते हैं।

(11) **हम बहुत रो चुके,** अब रोने का नहीं अपितु अपने पैरों पर खड़े होने का, पुरूषत्व प्राप्त करने का समय आ गया है। हमें ऐसे धर्म की आवश्यकता है जो मुनष्य का निर्माण कर सके। हमें मनुष्य निर्माण के सिद्धांत चाहिये। सर्वतोमुखी मानवता निर्माण करने वाली शिक्षा की आवश्यकता है। जो कोई सिद्धांत शिक्षा, धर्म तुम्हें शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक, आध्यात्मिक रूप से दुर्बल करे, तुम्हारी प्रतिष्ठा को आघात पहुँचावें, वह सत्य की कसौटी पर खरा उतरने वाला नहीं हो सकता, उसे पूर्णतः अस्वीकृत कर दो। शक्ति, ऊर्जा, ज्ञान ही सत्य हैं। सत्य प्रबुद्ध करने वाला, साध्य एवं उत्साह प्रदान करने वाला होना चाहिये।

(12) **उठो** कर्म करने के लिये तत्पर हो जाओ, यह जीवन कितने दिन का है? तुम इस जगत् में आये हो तो जाने के पहले अपनी कुछ छाप छोड़ते जाओ। अन्यथा तुममें एवं जड़ पदार्थो जैसे पत्थर एवं वृक्षों में अंतर ही क्या रहेगा? वे भी अस्तित्व में आते हैं और अंत में विनाश को प्राप्त होते हैं।

(13) **शिक्षा** केवल ज्ञान का पर्याय मात्र नहीं है। यह जीवन–निर्माण, मनुष्यत्व के विकास एवं चरित्र के गठन का साधन है। शिक्षा केवल उस जानकारी के समुदाय का नाम नहीं है, जो तुम्हारे मस्तिष्क में धनोपार्जन हेतु भर दी गई है और वहां पड़े–पड़े तुम्हारे सारे जीवन भर बिना पचाये ही सड़ रही है। हमें तो भावों या विचारों को ऐसे आत्मसात् कर लेना चाहिये, जिससे जीवन–निर्माण, मनुष्यत्व आये, और चरित्र का गठन हो। यदि शिक्षा और जानकारी एक ही वस्तु होती तो पुस्तकालय संसार के सबसे बड़े संत और विश्वकोष ऋषि बन जाते।

(14) स्वामी जी विश्व को धार्मिक शिक्षा देने वाले आचार्य भी थे। उन्होंने शिक्षा को धर्म से पृथक् न मानकर पूर्णतः धर्मनिरपेक्ष शिक्षा का विरोध किया। उनका मानना था कि व्यक्ति के समान राष्ट्र की भी एक विशिष्ट प्रतिभा होती है, उसके विकास का एक मार्ग होता है। भारत का प्राण केन्द्र धर्म ही है। अतः यहाँ धर्म निरपेक्ष शिक्षा की कल्पना ही भ्रामक है। उन्होंने कहा था **हमारी शिक्षा बुद्धि और हमारे विचार पूर्णतः आध्यात्मिक हैं, जो धर्म में ही अपनी पूर्णता पाते हैं।**

(15) स्वामी जी का मानना था –"आज की यह उच्च शिक्षा रहे या बंद हो जाय, इससे क्या बनता बिगड़ता है? यह अधिक अच्छा होगा, यदि लोगों को थोड़ी तकनीकी शिक्षा मिल सके, जिससे वे नौकरी की खोज में इधर–उधर भटकने के बदले किसी काम में लग सकें और जीविकोपार्जन कर सकें। उनके ये विचार वर्तमान तकनीकि शिक्षा के प्रति उनके उदार दृष्टिकोण के परिचायक है।

(16) स्वामी जी **देश के विकास** के लिये विज्ञान की शिक्षा की आवश्यकता तो अनुभव करते थे, किंतु उसमे वेदांत का समन्वय आवश्यक समझते थे। उनका विश्वास था कि वेदांत मानव को जीवित रहने के लिए, विवेक तथा कष्ट सहने के लिए धैर्य प्रदान करने के साथ–साथ स्वार्थ एवं लोलुपता पर अंकुश लगाकर उसकी मनोगत आकांक्षाओं की तृप्ति भी करवा सकता है और विश्व की नैतिक क्षयग्रस्तता का निवारण भी कर सकता है।

(17) स्वामी जी मानसिक एवं आध्यात्मिक बल के साथ **शारीरिक बल को** भी अत्यधिक आवश्यक मानते थे। उनका विश्वास था कि शरीर से दुर्बल व्यक्ति आत्मसाक्षात्कार के सर्वथा अयोग्य होता है, इसलिये वे अपने देश के समस्त स्त्री पुरूषों को सबल और सशक्त देखना चाहते थे।

इस प्रकार स्वामी विवेकानंद भारत के **पथदर्शक समसामयिक चिंतक** के रूप में आज भी अपने विचारों के माध्यम से अमर है।

बोध प्रश्न :

टिप्पणी क : अपने उत्तर नीचे दिये गये स्थान में लिखें।

ख : इकाई के अंत में दिये गये उत्तरों से अपने उत्तर मिलाइए।

1. स्वामी विवेकानन्द का संक्षिप्त जीवन परिचय दीजिये ?

2. स्वामी विवेकानन्द के दर्शन में भक्ति योग प्राप्त करने के सोपान लिखिये ?

5.4 इकाई 14 श्री अरविंद

5.4.1 श्री अरविंद का परिचय



ई. स. 1863–1902

विकासवादी अध्यात्मवाद के जनक् श्री अरविंद का जन्म 15 अगस्त 1872 मे पश्चिम बंगाल के कोनानगर में हुआ था। प्राथमिक शिक्षा दार्जिलिंग के लोरेटो कान्वेन्ट स्कूल में हुई। शेष शिक्षा इग्लैण्ड में हुई। 1893 में वे भारत लौटे तथा बड़ौदा कॉलेज में फ्रेंच और अंग्रेजी भाषा के शिक्षक बन गये। यही उन्हें प्राचीन भारतीय दर्शन के विस्तृत अध्ययन का समुचित समय तथा अवसर प्राप्त हुआ।

भारत की पराधीनता उन्हें स्वीकार नहीं थी अतः वे शीघ्र ही साक्रिय राजनीति में आ गये। सन् 1908 में उन्हें राजनैतिक कारणों से बन्दी बना लिया गया। कारावास काल के चिन्तन में उन्हें ऐसी अनुभूति हुई कि उनकी नियति

सर्वथा भिन्न कार्य करने के लिए थी। और वे सक्रिय राजनीति से एक **"योगी"** के रूप में आध्यात्मिक जीवन में प्रवेश कर गये। सन् 1910 के अप्रैल माह में उन्होंने **पण्डिचेरी** में अपना निवास स्थल बना लिया। इस समय तक उनके मन में विशिष्ट आध्यात्मिक तथा योग साधना के विचार प्रस्फुटित होने लगे थे। इस परिवर्तन को भारत के आगामी कल की रूपरेखा में ढालने के लिए श्री अरविंद ने एक आश्रम की स्थापना की। कुछ दिनों पश्चात् उन्हें इस आश्रम के योग्य विलक्षण प्रतिभा सम्पन्न **शिष्या मीरा रिचर्ड** प्राप्त हुई। इस शिष्या ने आश्रम का संपूर्ण कार्यभार अपने कंधों में ले लिया। धीरे–धीरे मीरा आश्रम की प्रतीक बन गयी तथा वे आश्रम की माँ कहीं जाने लगी। श्री अरविंद के वैयक्तिव प्रभाव तथा आकर्षण और उनके विचारोत्पादक प्रेरक रचनाओं और लेखों के कारण आश्रम में उनके अनुगामी होकर अनेक शिष्य आने लग गये। उनके शिष्य निष्ठा पूर्वक श्री अरविंद के विचार दूत बनने लगे। चेतना की लहर में वे भारत के भविष्य को देखा करते थे। उन्हें ज्ञात हो गया था कि भारत कब **स्वतंत्रता** प्राप्त करेगा अतः उन्होंने अपनी ऊर्जा को भारत के नवनिर्माण की ओर उन्मुख कर दिया था। 5 दिसंबर सन् 1950 को उन्होंने समाधि ले ली तथा अपने भौतिक शरीर को छोड़ दिया। किन्तु उनका आश्रम सतत् प्रभावशील बना रहा, तथा आज भी वह शिक्षा तथा आध्यात्मिक अनुशासन का एक विशिष्ट केन्द्र बना हुआ है।

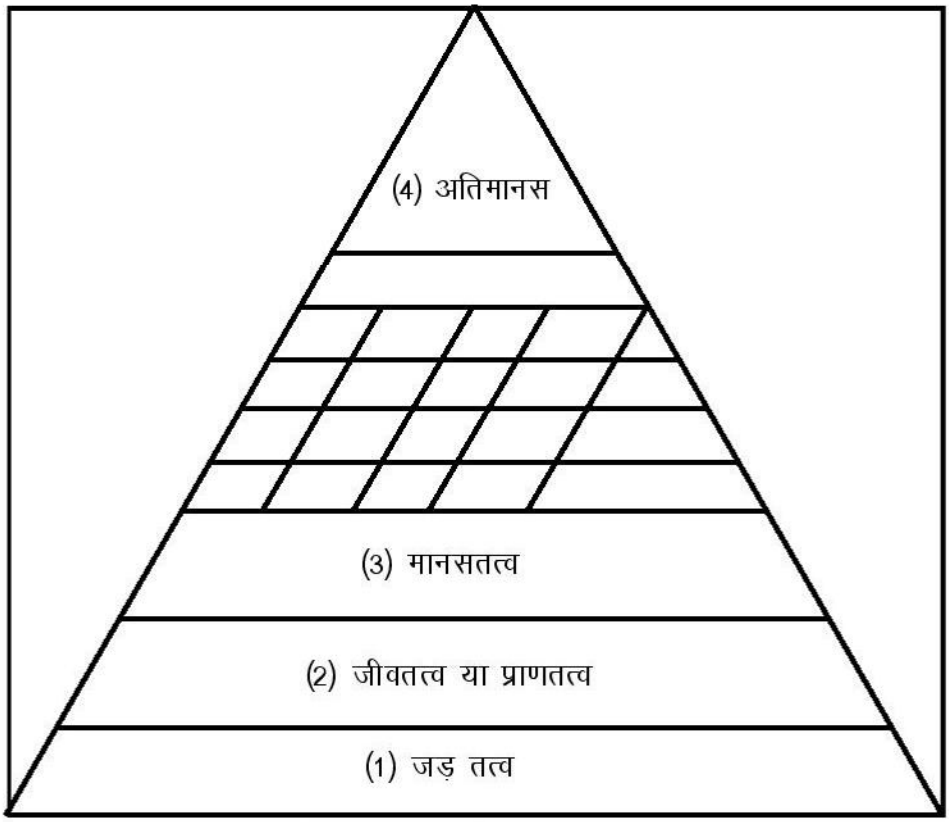
श्री अरविंद बीसवीं शताब्दी के एक महान् योगी तथा दार्शनिक के रूप में मान्य हुये। उनका दर्शन शुद्ध भारतीय है। उसमें प्राचीन भारत का अध्यात्म सुरक्षित है। किन्तु वह अत्यन्त नवीन भी है। इस प्रकार की दर्शनिक प्रेरणा किसी ने नहीं प्रतिपादित की है। श्री अरविंद ने अपने दार्शनिक ग्रंथ दिव्य जीवन (Life Divine) में दर्शन की शास्त्रीय व्याख्या प्रस्तुत की है। इसके अतिरिक्त उनके अनेक प्रसिद्ध ग्रंथ है जिनमें गीता पर निबंध (Essays on the Gita), योग समन्वय (The Synthesis of Yoga), मानव चक्र (Human cycle) तथा सावित्री। **सावित्री** नाम ग्रंथ अंग्रेजी में एक **महाकाव्य** है। श्री अरविंद के विचारों पर उनके विस्तृत अध्ययन तथा विभिन्न संस्कृति की जानकारी का प्रभाव तो है ही उन्होंने कम ही उम्र में पाश्चात्य दर्शन तथा साहित्य का अध्ययन किया था। उन्होंने प्लेटो तथा अरस्तु जैसे महान् ग्रीक विचारकों के विचार से भलीभाँति परिचित थे। वे आधुनिक पाश्चात्य दर्शन के कुछ आदर्शवादी तथा प्रत्ययवादी विचारों से भी पूर्णतया परिचित थे। उनके वैचारिक लेखों में स्पष्ट संकेत मिलता है कि उन्हें हेरोल, व्हाइटहेड तथा बर्गसां आदि के तत्वमीमांसीय विचारों की पूर्ण जानकारी थी। साथ ही साथ उन्होंने भारतीय दर्शनों का गहन अध्ययन किया था। विशेषतः **"अद्वैत वेदान्त"** तथा **योग दर्शन** का तो उनके विचारों पर स्पष्ट प्रभाव है। उन्होंने अपने चिन्तन में इस सभी विचारों को एक नवीन ढंग से व्यवस्थित करते हुए एक पूर्णतः विस्तृत एवं **नवीन सत् दृष्टि** प्रदान की है।

5.4.2 श्री अरविंद का अध्यात्मिक चिन्तन

श्री अरविंद के दर्शन के अनुसार विश्व में एक दिव्य विकास होता रहता है। यह भौतिक या प्राकृतिक विकास नहीं है किन्तु ब्रह्म के द्वारा ब्रह्म के लिए ब्रह्म का विकास है। सत्ता केवल ब्रह्म की है। श्री अरविंद ने अद्वैत वेदान्त के मायादवद का खण्डन किया और माया को ब्रह्म की शक्ति माना। उनका ब्रह्म सचल है। किन्तु सब कुछ ब्रह्म ही है, सब कुछ उसी की लीला है, उसी का विकास है, इस प्रकार अरविंद भी अद्वैतवादी ही है। ब्रह्म की गतिशीलता दो प्रकार की है –

1. अवरोह क्रम (Descent) 2. आरोह क्रम (Ascent)

ब्रह्म अपने स्वरूप को प्राप्त करने के लिए अनेक रूप धारण करता है यही उसका अवरोध या अवतरण है। इस अवरोह के अनेक स्तर हैं जिनमें चार मुख्य हैं –



चेतना का आरोहण

सबसे नीचे प्रारंभिक अवस्था **जड़तत्व** हैं, उसके ऊपर **जीवतत्व** या **प्राणतत्व** है, उसके ऊपर **मानसतत्व** है। मानस तत्व के ऊपर अनेक स्तर हैं जिनमें सबसे ऊपर **अतिमानस** है।

श्री अरविंद का सृष्टि विचार

जगत् की सृष्टि का तात्पर्य है कि पहले ब्रह्म अतिमानस में अवतरित होता है। मानस जीव या जीवन में अवतरित होता है और जीव जड़ में अवतरित होता है। इस प्रकार जड़ में भी अतिमानस अन्तर्व्याप्त रहता है। ब्रम्ह और अतिमानस का संबंध श्री अरविंद के दर्शन में कुछ वैसे ही हे जैसे वेदान्त में **कारण–ब्रह्म और कार्य–ब्रह्म** का संबंध। वास्तव में अतिमानस से ही सृष्टि का आरंभ होता है। अतिमानस मानसिक नहीं है। वह **उन्मनी ज्ञान** है। उस ज्ञान का कोई साधन या इन्द्रिय या कारण नहीं है। उसको **ऋग्वेद** के शब्दों में **ऋतचित्** भी कहा गया है वह अकरण है।

अवरोह के बाद ब्रह्म का आरोह आरंभ होता है। यह आरोह विकास है। इसका अर्थ है जड़ का जीव में विकास, जीव का मानस में विकास और मानस का अतिमानस में विकास। यह विकास अन्तर्व्याप्त ब्रह्म का उर्ध्वगमन या पूर्णत्व की ओर अग्रसर होना है। फिर यह सरल का जटिल होना है, **जड़** से अधिक जटिल **जीव** है, जीव से अधिक जटिल **मानस** है। और मानस से अधिक जटिल **अतिमानस** है। इस प्रकार जड़, जीव और मानस का विनाश नहीं होता है। अन्त में वे केवल अपना विकास या उज्जीवन ही अतिमानस के रूप में प्राप्त करते है। अभी तक विश्व का जो विकास है वह केवल **मानस स्तर** का विकास है। अब आगे मानस ने **अतिमानस शुरू** किया है। आधुनिक वैज्ञानिक जब कहते हैं कि जड़ से प्राण तत्व उत्पन्न हुआ और प्राण तत्व से मानसतत्व उत्पन्न हुआ तो श्री अरविंद इसको स्वीकार कर लेते हैं। किन्तु वे आगे यह भी कहते है कि ऐसे ही मानस तत्व से अतिमानस तत्व उत्पन्न होगा। यह बात जरूर

है कि वे ऐसी उत्पत्ति को विकास कहते हैं तथा **जड़, प्राण** तथा **मानस** को उस रूप में नहीं मानते हैं जिस रूप में वैज्ञानिक गण मानते हैं क्योंकि उनके मत से इन सभी में ब्रह्म अन्तर्यामी है।

श्री अरविंद का अध्यात्मिक विकासवाद का सिद्धान्त

अध्यात्मिक विकासवाद से पहले वैज्ञानिक विकास के सिद्धांत को स्पष्ट करते हुए श्री अरविंद कहते है कि भौतिक वस्तुओं में जीवन का संचार जीव तत्व के अभाव में नहीं होता। सजीव भौतिक वस्तु में **भावना, संवेग, विचार, तर्कशास्त्र** इत्यादि प्रत्यय न होने पर मन रूपी तत्व भौतिक वस्तु तथा जीव तत्व की उत्पादन शक्ति के रूप में विद्यमान न होगा श्री अरविंद ने पूर्व और पश्चिम, भारतीय और पाश्चात्य तथा आध्यात्मिक और भौतिक सिद्धान्तों के **आधार** पर अपने **आध्यात्मिक विकासवाद** का प्रतिपादन किया। उनका विकासवाद भारतीय दर्शन के **'सत् कर्मवाद'** और पाश्चात्य दर्शन के **कर्मकारण** के सिद्धान्त पर आधारित है। ये सिद्धान्त इस विचारधारा का प्रतिपादन करते हैं कि भौतिक वस्तुओं में चेतना पहले से ही विद्यमान रहती है। या हम कहें कि कर्म अपने कारण में पहले से ही विद्यमान रहता है और उसी की अभिव्यक्ति को विकास माना जाता है।

इसी प्रकार श्री अरविंद भौतिकतत्वों से जीवन और जीवन से मन की उत्पत्ति न मानकर **भौतिक वस्तुओं से जीवन और जीवन से मन की** उत्पत्ति मानते हैं। उनके अनुसार भौतिक वस्तु जीवन का प्राकृत रूप है और जीवन चेतना का प्राकृत रूप है। श्री अरविंद ने अपने **विकासवादी सिद्धान्त** में तीन प्रकार की क्रिया का उल्लेख किया है

(i) विस्तारण (ii) ऊर्ध्वीकरण (iii) समग्रीकरण।

जड़ से चेतन की ओर बढ़ने की प्रक्रिया या विकास की प्रक्रिया को आरोह कहते हैं, तथा ह्यास की प्रक्रिया को अवरोह कहा जाता है।

विकास की तीन दिशायें – श्री अरविंद ने अपने विकासवाद में विकास की तीन दिशायें मानीं है जो निम्नलिखित है –

(i) विस्तारण – विस्तारण से श्री अरविंद का तात्पर्य विभेदीकरण, संगठन और विविधता से है। उनके अनुसार विकास चौड़ाई और मात्रा में होता है। निम्न स्तर की वस्तु में संगठन, फैलाव और विभेद होता है और फिर वह उच्च स्तर की वस्तु का स्वरूप धारण करता है और यह विस्तारण सृष्टि में जड़ से लेकर मनुष्य तक देखा जा सकता है।

(ii) ऊर्ध्वीकरण – श्री अरविद यह मानते है कि विकास क्रम में निम्न स्तर की वस्तुएँ उच्च स्तर की हो जाती है। विस्तारण की क्रिया के साथ–साथ ही ऊर्ध्वीकरण की प्रक्रिया भी चलती है। विकास क्रम में चेतना शक्ति का अधिाक से अधिक सूक्ष्म और तीव्र होते जाना ऊर्ध्वीकरण है। इसी प्रक्रिया के द्वारा भौतिक वस्तु से जीवन, जीवन से मन, मन से अति मानस का ऊर्ध्वीकरण हुआ और निश्चित ही यह प्रक्रिया अवरोहण के समान है।

समग्रीकरण – समग्रीकरण विकास प्रक्रिया की सबसे महत्वपूर्ण प्रक्रिया है यह निम्न स्तर और उच्च स्तर में एकरूपता बनाए रखती है, निम्न तत्व का उच्च तत्व में परिवर्तित हो जाना ही विकास है, लेकिन इस विकास में निम्न तत्व नष्ठ नहीं होता, बल्कि उच्च तत्व में रूपान्तरित होता है जैसे – भौतिक पदार्थ का रूपांतरण वनस्पति में, वनस्पति का पशु जगत में पशु जगत का मानव में रूपांतरण देखा जा सकता है। विकास की इस प्रक्रिया में सबसे महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि, उच्चतम् तत्व निम्नतम् तत्व का संशोधित, परिष्कृत, विकसित एवं उन्नत रूप होता है।

संक्षेप में श्री अरविंद का **विकासवाद विस्तारण, ऊर्ध्वीकरण** और **समग्रीकरण** का समन्वय एवं सामंजस्य है।

ऐक्य विकासवाद – निम्न तत्व का उच्च तत्व में विकास होने के साथ–साथ श्री अरविंद दोनों तत्वों में एक्य या एकता स्थापित करते हैं, विकास की इसी विशेषता के कारण उनका विकासवाद **एक्य विकासवाद** भी कहा जाता है। जड़ से चेतन, चेतन से मन और मन से अतिमानस की ओर बढ़ने की प्रक्रिया में हमेशा एक्य बना रहता है। श्री अरविंद ऐक्य विकासवादी विचारधार में डार्विन और स्पेन्सर आदि पाश्चात्य विकासवादी विचाराकों से भिन्नता रखते हैं। पाश्चात्य विकासवादी दार्शनिक अलेक्जेंडर के विकासवाद में उच्च स्तर के उद्भव से निम्न स्तर में कोई विकास या अन्तर नहीं माना गया है। परन्तु अरविन्द इस विकास या परिवर्तन को स्वीकार करते हैं और इस परिवर्तन में सामंजस्य

बनाये रखने के लिए ऐक्य विकासवाद का प्रतिपादन करते हैं।

समष्टिवादी विकासवाद – कुछ विकासवादी दार्शनिक यह मानते हैं कि विकास व्यक्तिगत होता है, परन्तु अरविंद का विकास व्यक्तिवादी न होकर समष्टिवादी है। अरविंद का मानना यह है कि समष्टि या संपूर्ण विकास में व्यक्ति विशेष का विकास निश्चित होता है। वे यह भी मानते हैं कि व्यक्ति विशेष को अध्यात्मिकता और दक्षता प्राप्त होने पर समष्टि का विकास होता है और ऐसी स्थिति में प्रत्येक व्यक्ति अपने आप को सृष्टि का एक अभिन्न अंग मानता है। व्यक्ति और सृष्टि दोनों का विकास एक साथ मानने के कारण इनका सिद्धान्त समष्टिवादी विकासवाद कहलाता है।

सर्वमुक्ति की अवधारणा – श्री अरविंद ने समष्टिवादी दृष्टिकोण को अपनाकर सर्वमुक्ति की अवधारणा को प्रतिपादित किया है। उनके अनुसार अध्यात्मिकता या दक्षता को प्राप्त करके केवल व्यक्ति विशेष ही मुक्ति प्राप्त नहीं करता, बल्कि संपूर्ण मानवता मुक्ति की ओर अग्रसर होती है। चूँकि अरविंद भौतिक जगत से लेकर अतिमानव की विकास की प्रक्रिया में ऐक्य विकासवाद स्वीकार करते हैं, इसलिए वह समष्टिवादी विचारक कहलाते है। ऐक्य और समष्टिवादी विकासवादी होने के कारण उनके दर्शन में सर्व मुक्ति की अवधारणा महत्वपूर्ण अवधारणा बन जाती है।

अति मानस – श्री अरविंद अपने अध्यात्मिक विकासवाद में अति मानस की अवधारणा को स्वीकार करते हैं। अरविंद के अनुसार अति मानस (मानव) विकास की प्रक्रिया का संधि स्तर है। उन्होंने विकास की प्रक्रिया में (7) कक्ष माने हैं।

(i) भौतिक तत्व (ii) जीवन (iii) अतिमानस (iv) आनन्द
(v) मानस (vi) चित्त शक्ति (vii) सत्ता

श्री अरविंद के विकासवाद में विकास के इन सात पक्षों में अतिमानस बीच की अवस्था है इसलिए इसे संधि स्थल कहते है।

श्री अरविंद के अनुसार मानव जीवन का लक्ष्य अतिमानस को प्राप्त करना है। विकास की प्रक्रिया मनुष्य तक पहुँच चुकी है, और इसी विकास की क्रिया के आधार पर आगामी विकास में अतिमानस की संभावना व्यक्ति की है और उनका यह मानना है कि विकास सदैव उद्देश्य पूर्ण होता है। विकास का अंतिम उद्देश्य पूर्णतत्व की प्राप्ति है। चूँकि सृष्टि का हर पदार्थ और हर तत्व अपूर्ण है इसलिए वह पूर्णता की ओर बढ़ने का प्रयास करता है। अरविंद के अनुसार यह पूर्णता क्रमशः भौतिक पदार्थ से जीवन में, जीवन से मानस में, मानस से अतिमानस में, अतिमानस से आनन्द मे, आनन्द से चेतन शक्ति में और अन्त में चेतन शक्ति परम **सत्ता** में अपनी सत्ता प्राप्त करती है। व्यवहारिक रूप से देखने में भी यही आता है कि प्रत्येक जीवन **अपूर्णता से पूर्णता** की ओर, **भोग से योग** की ओर **सन्यास से अभ्यास** की ओर प्रवृत होता है। अर्थात सदैव लक्ष्य की ओर अग्रसर होता है। परम सत्ता का ज्ञान निर्पेक्ष सत्ता का ज्ञान है और यह निर्पेक्ष सत्ता वेदों और उपनिषदों में वर्णित ब्रह्म है। परम सत्ता या ब्रह्म स्वयं सिद्ध और सच्चिदानंद स्वरूप है।

5.4.3 श्री अरविंद की शिक्षायें

श्री अरविंद की शिक्षायें समाज के हर पहलू पर उनके दार्शनिक सिद्धांतों के अनुरुप बड़ी व्यावहारिक एवं सरल शिक्षायें है।

(1) **जीवन का लक्ष्य** :– श्री अरविंद कहते है – जीवन का एक प्रयोजन है। वह प्रयोजन है भगवान को खोजना और उनकी सेवा करना। भगवान दूर नहीं है, वे हमारे अंदर है, अन्दर गहराई मे, भावनाओं और विचारों से ऊपर। **भगवान के साथ है शान्ति,** निश्चितंता और सभी कठिनाइयों का समाधान।

(2) **शिक्षा का लक्ष्य**– शिक्षा का प्रमुख उद्देश्य होना चाहिए कि वह अन्तरात्मा की इस बात में सहायता करे कि अपने अन्तरतम से अच्छी–से–अच्छी वस्तु को बाहर लाये और उसे किसी श्रेष्ठ एवं उदार उपयोग के लिये पूर्ण बनाये। अपने अध्यवसाय का लक्ष्य अपने आपको जानना, अपनी निजी निर्यात, अपना मार्ग चुनना, अपने को देखना समझना और संकल्प करना होना चाहिए। न कि पृथ्वी कैसी रची गई आदि सिखाने की अपेक्षा यह अनन्द गुना महत्वपूर्ण है।

(3) श्री अरविंद कहते थे कि विद्यार्थियों को नित्य यह स्मरण करवाना चाहिए कि 'हम अपने परिवार के लिए नही ' पढ़ते, हम कोई अच्छा पद पाने के लिए नहीं पढ़ते, हम पैसा कमाने के लिए नहीं पढ़ते, हम कोई उपाधि पाने के लिए नहीं पढ़ते। हम सीखने के लिए, जानने के लिए, संसार को समझने के लिए और इससे मिलने वाले आन्नद के लिए पढ़ते है।

(4) **सर्वांगींण शिक्षा** :– भारत के पास **"आत्मा"** का ज्ञान था किन्तु उसने भौतिक तत्व की उपेक्षा की इस कारण कष्ट भोगा। पश्चिम के पास भौतिक तत्व का ज्ञान है, पर उसने "आत्मा " को अनदेखा किया इस कारण कष्ट भोग रहा है।

अतः सर्वांगीण शिक्षा का आशय उस शिक्षा से है जो थोड़े से परिवर्तन के साथ संसार के सभी देशों में अपनायी जा सके, और पूर्णतया विकसित और उपयोग में लाये हुए **'भौतिक तत्व"** पर **"आत्मा"** के वैध अधिकार को वापस लाया जा सके। शिक्षा को सर्वांगीण बनाने हेतु उसमें निम्नलिखित पाँच प्रधान तत्व होने चाहिये।

(1) भौतिक (शारीरिक)
(2) प्राणिक
(3) मानसिक
(4) आन्तरात्मिक और
(5) आध्यात्मिक

ये पाँचों पहलू व्यक्ति के विकास के अनुसार कालक्रम से आरम्भ होते है यहाँ यह भी स्मरणीय है कि यहाँ एक पहलू दूसरे का स्थान भी ले सकता हैं

(1) **शारीरिक शिक्षा** :– शरीर की शिक्षा के तीन मुख्य रुप है (1) शरीरिक क्रियाओं को संयमित और नियमित करना, (2) शरीर के सभी अंगों और क्रियाओं का सर्वांगपूर्ण, प्रणालीबद्ध और सुसामजस्य पूर्ण विकास करना और (3) यदि शरीर में काई दोष या विकृति हो तो उसे सुधारना। इन सब शिक्षाओं का अभ्यास **जीवन शुरु होते ही** सम्यक प्रकार से दिया जाना चाहिए।

(2) **प्राण की शिक्षा** :– सब प्रकार की शिक्षाओं में सम्भवतः प्राण की शिक्षा सबसे अधिक आवश्यक है। फिर भी इसका ज्ञानपूर्वक तथा विधिवत आरम्भ और अनुसरण बहुत कम लोग करते है। इसके कई कारण है, सबसे पहले इस विशेष विषय का जिन बातों से सम्बंन्ध है इनके स्वरुप के विषय में मानव–बुद्धि की कोई सुस्पष्ट धारणा नहीं है। दूसरे यह कार्य बड़ा ही कठिन है और इसमें सफलता प्राप्त करने के लिए हमारे अन्दर सहनशीलता, अनन्त अध्यवसाय और किसी भी असफलता से निर्बल न होने वाला संकल्प आवश्यक है। वास्तव में, जगत् जेसा है, इसमें जीवन का लक्ष्य व्यक्तिगत सुख प्राप्त करना नहीं, अपितु व्यक्ति को उत्तरोत्तर **सत्य चैतत्य** के प्रति **जाग्रत** करना है।

(3) मन की शिक्षा – जैसे शारीरिक प्रशिक्षण के बिना शरीर भद्दा और अधूरा ही रह जाता है यही बात मन के साथ भी लागू होती हैं तुम्हे मन रुपी एक यंत्र मिला है जिसमें अनेक सम्भावनाए है, अनेक क्षमताएँ है, किन्तु ये छिपी हुई है, इन्हे विशिष्ट शिक्षण से, विशिष्ट रुप से साधने की आवश्यकता है, जिससे ये ज्योति को व्यक्त कर सकें। यह निश्चित है कि साधारण जीवन में दिमाग मानसिक चेतना की बाह्य अभिव्यंजना का आधार है, तो यदि दिमाग विकसित न हो, यदि यह अनगढ रहे तो ऐसी असंख्य वस्तुएँ है जो व्यक्त नही की जा सकेगी, क्योकि अपने आपको व्यक्त करने के लिए उनके पास आवश्यक यंत्र नही होगा। मन को उच्चतर जीवन हेतु तैयार करने के लिए मन को पाँच अंगों की शिक्षा आवश्यक है ये है

(1) एकाग्रता की शक्ति का, मनोयोग की क्षमता का विकास करना
(2) मन को व्याप्त , विशाल बहुविध और समृद्ध बनाने की क्षमताएँ विकसित करना।
(3) जो केन्द्रीय विचार या उच्चतर आदर्श या परमोज्जवल भावना जीवन में पथ–प्रदर्शक का काम करेगी उसे केन्द्र बनाकर समस्त विचारों को संगठित एवं सुव्यवस्थित करना।

(4) विचारों को संयमित करना, अनिष्ट विचारों का त्याग करना, जिससे मनुष्य अन्त में जैसा चाहे वैसा और जब चाहे तब विचार कर सके।

(5) मानसिक निश्चलता का परिपूर्ण शान्ति का और सत्ता के उच्चतर क्षेत्रों से आनेवाली अन्तः प्रेरणाओं को अधिकाधिक पूर्णता के साथ ग्रहण करने की क्षमता का विकास करना।

(4) आन्तरात्मिक शिक्षा :– हम कह सकते है कि शारीरिक, प्राणिक तथा मानसिक शिक्षाएँ व्यक्तित्व का निर्माण करने, मनुष्य को अस्पष्ट और अवचेतन जड़ता से उबारने तथा उसे एक सुनिशिचित और आत्मा चेतन सत्ता बनाने के साधन है।

अन्तरात्मा की शिक्षा के द्वारा हम जीवन के सच्चे आशय पृथ्वी पर अपने अस्तित्व के कारण तथा जीवन की खोज के लक्ष्य और उसके परिणाम अपनी नित्य सत्ता के प्रति व्यक्ति के आत्मसमर्पण के प्रश्न आते हैं। इस **तादात्मय** को सिद्ध करने के लिए देश और काल के अन्तर्गत बहुत सी पद्धतियाँ निश्चित की गयी हैं और कुछ यान्त्रिक भी हैं सच पूछा जाय तो प्रत्येक मनुष्य को वह पद्धति ढूँढ़ निकालनी होगी जो उसके लिए सबसे अधिक उपयुक्त हो और यदि साधक में सच्ची और सुदृढ़ अभीप्सा हो, अटूट और सक्रिय संकल्प –शक्ति हो तो निश्चित ही अपनी सत्ता के सत्य को पाने और उसके साथ युक्त होने का तुम्हारा संकल्प सदा विद्यमान रहना चाहिए।

(5) आध्यात्मिक शिक्षा :– आन्तरात्मिक जीवन एक ऐसाा जीवन है जो अमर है, अनन्तकाल तक असीम देश में नित्य प्रगतिशील परिवर्तन है और बह्य रुपों के संसार में एक अविच्छिन्न धारा है। दूसरी ओर आध्यात्मिक चेतना का अर्थ है नित्य और अनन्त में निवास करना तथा देश काल से, सृष्टिमात्र से बाहर स्थित हो जाना। अपनी अन्तरात्मा को पूर्णरुप से जानने और आन्तरात्मिक जीवन बिताने के लिए मनुष्य को समस्त स्वार्थपरता का त्याग करना होगा, किंतु आध्यात्मिक जीवन के लिए अहंमात्र से मुक्त हो जाना होगा। इसके साथ जिस उच्च से उच्च सत्ता की मनुष्य कल्पना कर सकता है उसके प्रति पूर्ण आत्म समर्पण के आनंद से अधिक पूर्ण आनंद ओर नहीं है, कुछ इसे **ईश्वर** का नाम देते है और कुछ **पूर्णता** का। आत्म समर्पण का यह भाव यदि स्थिर एवं उत्साह युक्त हो जाय तो मनुष्य एक ऐसे अनुभव को प्राप्त कर लेता है जिसका वर्णन तो नही किया जा सकता किंतु उस अनुभव का लाभ व्यक्ति पर सदैव एक समान रहता है। तथा आत्म–समर्पण और सहज प्रेम उसमें पूर्ण रुप से मिल जाने की अभीप्सा पैदा करता है। इस स्थिति में कोई भी शक्ति उसे बाधक नही कर सकेगी।

सारतः मन को ऐसी कोई भी शिक्षा नहीं दी जा सकती जिसका बीज मनुष्य की विकासशील अन्तरात्मा में पहले से ही निहित न हो। अतएव मनुष्य का बह्य वयक्तित्व जिस पूर्णता को पहुँच सकता है वह भी सारी –की –सारी उसकी अपनी अन्तःस्थ आत्मा की सनातन पूर्णता को उपलब्ध करना मात्र है। हम भगवान का ज्ञान प्राप्त करते है और भगवान ही बन जाते है, क्योंकि हम अपनी प्रच्छन प्रकृति में पहले से वही हैं। आत्मेपलब्धि ही रहस्य है, आत्म ज्ञान और वर्द्धमान चेतना उसके साधन तथा प्रक्रिया है।

श्री अरविंद का पूर्ण अद्धैत योग–

श्री अरविंद के अनुसार विकास–प्रक्रिया का चरम लक्ष्य **"दिव्य जीवन"** की स्थापना है। यह पृथ्वी पर कैसे अवतरित हो। इसे अवतरित तो होना ही है स्थापित तो होना ही है देर से हो? या शीघ्र ! शीघ्र या तीव्र गति से दिव्य जीवन के अवतरण का एक ढ़ंग **"योग"** है।

श्री अरविंद के योग–विचार के तंत्र भी समाविष्ट है। हम अरविंद के योग या पूर्ण अद्धैत योग Integral Yoga

को निम्न प्रकार से समझ सकते है।

(1) योग का लक्ष्य :– योग का शाब्दिक अर्थ है **मिलन** अथवा **एकलन** अतः हर प्रकार के योग का लक्ष्य **ईश्वर मिलन** है **एकत्व** प्राप्ति करना है। प्रायः सभी योग–दर्शन यह मानते हैं कि सभी अशुभ रूपों की जड़ में **जीव** का **अनन्त** से अलगाव है, अतः सभी योगों का लक्ष्य इस अलगाव से ऊपर उठना, **ससीम** तथा **असीम** के मौलिक **एकत्व** को पा लेना है। अरविंद भी ऐसा ही मानते है किन्तु उनके योग में थोड़ी भिन्नता है। उनके अनुसार योग का लक्ष्य निम्नलिखित है –

(i) **अरविंद के** योग की आवश्यकता विकास प्रक्रिया के आध्यात्मिक शेष में छलांग लगाने के लिये उद्यत व्यक्ति की छलांग को सहज बना देना है।

(ii) विकास प्रक्रिया का लक्ष्य **दिव्य जीवन** की स्थापना है। इस दिव्य जीवन को शीघ्र लाने में **यो**ग एक **साधक** है।

(iii) अरविंद सम्पूर्ण जीवन प्रक्रिया को ही योग प्रक्रिया स्वीकारते हैं क्योंकि जीवन का हर कार्य एक मूल **एकत्व** की ओर प्रेरित हैं, हर गतिविधि में असीम की अभिव्यक्ति है, जीवन प्रक्रिया चल ही नहीं सकती यदि उसमें उच्चतर रूपों का अवतरण न हुआ रहें। साधारण जीवन में हम यह कार्य **अचेतन रूप** में करते हैं। योग का लक्ष्य इस एकत्व की ओर की उन्मुखता चेतन जीवन का अंग बन जाये। हमें हमारे कार्यों में यह चेतना बनी रहे कि उनके माध्यम से असीम ही व्यक्त हो रहा है।

(iv) चूंकि हमारा जीवन बाह्य वृत्तियों में उलझा रहता है इस कारण विकास की प्रक्रिया धीमी रहती है अतः योग का लक्ष्य इस बाह्यता को आन्तरिकता में बदलना है।

इस प्रकार अरविंद के योग का लक्ष्य इसी जीवन में, शरीर रूप में ही ईश्वरत्व की **पूर्ण चेतना** है। जीवन के भौतिक, जैविक, मानसिक प्रक्रियाओं में परिवर्तन। यह परिवर्तन **उत्थान** और अवतरण दोनों में है। तथा यह **दिव्य जीवन** का परिवर्तन वैयक्तिक **मोक्ष** न होकर सबों का मोक्ष है **सर्वमुक्ति** है।

(2) योग का स्वरूप :– योग की प्रायः सभी विधाओं (प्रकारों) में योग का अर्थ ईश्वर मिलन है। जो (1) पारलौकिक स्तर पर (2) सार्वभौम स्तर (सर्वमुक्ति) पर (3) वैयक्तिक स्तर पर सभी प्रकार के योगों में इन तीनों में कोई एक प्रकार का चयन होता है। किन्तु अरविंद अपने योग में तीनों का समन्वय करते है। और इसी कारण अपने योग को **पूर्ण अद्वैत योग** कहते है। योग चेतना को विस्तृत, उच्चतर एवं एकत्वरूप करने की प्रक्रिया है। इस कारण अरविंद अपने योग को **पूर्ण योग** या **पूर्ण अद्वैत योग** कहते है। इसके निम्नलिखित लक्षण है

(1) योग के अन्य प्रकार कुछ ऐसी विशिष्ट शक्तियों के विकास की बात करते है जो सर्वसाधारण के लिए सुगम नहीं हो पाती वरन् अत्यंत कठिन एवं दुर्लभ होती है। इसलिये अरविंद **आंतरिक योग** की प्रक्रिया बतलाते है। इसमें वे **हठयोग** के अनुशासनों पर बल नहीं देते, आसन प्राणायाम पर बल नहीं देते, वे इस बात पर भी बल नहीं देते कि योग के लिये अद्भुत क्षमतायें, विशेष शक्तियों को बढ़ाने के लिए धार्मिक अनुष्ठान जैसा कुछ कर्म करना आवश्यक है। वे **प्रार्थना** और **मंत्र** जाप आदि को भी अनिवार्य नहीं कहते। अरविंद अन्य योगों के समान कुछ अनुशासनों की अनुशंसा तो करते हैं। किन्तु उनके **आंतरिक योग** के अनुशासन सभी के लिये पालनीय है।

(2) अधिकतर योगविधियों की जगत् के प्रति अभिवृति निषेधात्मक है। महर्षि पतंजलि के अनुसार योग का लक्ष्य विवेक ज्ञान की प्राप्ति है, जिस ज्ञान में आत्म तथा अनात्म के भेद का स्पष्ट ज्ञान हो जाता है। किन्तु श्री अरविंद का

कहना है कि योग का लक्ष्य **'आत्म'** तथा **'अनात्म'** के भेद का ज्ञान नहीं है, बल्कि **'अनात्म'** में भी आत्म रूप, आध्यात्मिकता की पहचान करना है।

(3) प्रायः सभी योग मार्गो के उपदेशक यह मानते है कि योग का लक्ष्य भौतिक एवं शारीरिक स्तर का निषेध है, उससे ऊपर उठना है। जबकि श्री अरविंद योग का लक्ष्य भौतिक एवं शारीरिक हनन अथवा निषेध नहीं बल्कि उनको भी अतिमानसिक प्रकाश में रूपांतरित कर देना है।

(4) प्रायः अन्य योगियों की मान्यता है कि योग लक्ष्य की प्राप्ति – ईश्वरत्व से एकत्व की प्राप्ति– समाधि की अवस्था में अथवा पूर्ण अलहादपूर्ण तन्मयता की अवस्था में ही हो सकती है। इस अवस्था में जाग्रतावस्था की चेतना पूर्णतया धूमिल हो जाती है, तथा सांसारिकता एवं साधारण परिवेश से संपर्क एक प्रकार से टूट जाता है इसके विपरीत श्री अरविंद का कहना है कि **पूर्ण एकत्व** की प्राप्ति शरीर में रहते हुए, जाग्रतावस्था तथा जगत से संपर्क बिना तोड़े हुए संभव है।

(5) प्रायः सभी योग के प्रकारों के अनुसार योग का लक्ष्य **'व्यक्ति का मोक्ष'** है। श्री अरविंद का कहना है कि वह तो है, किन्तु **मात्र** वहीं योग का लक्ष्य नहीं है। उनके अनुसार तो व्यक्ति का मोक्ष भी चरम लक्ष्य का अंश मात्र है। योग का लक्ष्य **'सबों की मुक्ति'** है तथा धरती पर दिव्य जीवन को उतार लाना है।

(6) उपरोक्त कारणों से अरविंद की योग विधि अन्य प्रचलित योग विधियों से भिन्न प्रकार की है। इस विधि में योग द्वारा **'मानस' उच्चतर मानस, प्रदीप्त मानस, अर्न्तदृष्टि, व्यापक मानस** के क्रमों को पर करता हुआ साधक **अतिमानसिक प्रकाश** को ग्रहण करने हेतु तत्पर होता है। इस हेतु अरविंद ने तीन स्तरों की अनुशंसा की है। ये तीन प्रक्रियायें इस प्रकार है।

(1) आत्मिकता की प्रक्रिया (Process of Psychisation)

(2) आध्यात्मिकता की प्रक्रिया (Process of Psychisation) तथा

(3) अतिमानसिकता की प्रक्रिया (Process of Supramentalisation)

इन तीनों प्रक्रियाओं को अरविंद ने **आंतरिक योग** भी कहा है। जब अतिमानसिकता की स्थिति आती है तो साधक आत्म उच्चतर चेतना के अवतरण को ग्रहण कर अपनी चेतना को **ईश्वरीय चेतना** बना लेता है। उसका दृष्टिकोण ही परावर्तित हो जाता है और सभी द्वैतभाव सभी विभिन्नतायें–विषमतायें लुप्त हो जाती हैं, तथा पूर्ण अद्धैत एकत्व की चेतना स्पष्ट हो जाती है। इस स्तर पर मानसिकता के स्तर के सभी झंझावत उत्पन्न करने वाले अंश क्षोभ, अशान्ति, विषमता उत्पन्न करने वाले तत्व पूर्णतया शान्त हो जाते हैं। इस प्रक्रिया को अरविन्द चार स्तरों पर बतलाते है।

(1) अचंचलता (Quiet) (2) स्थिरता (Calm) (3) शान्ति (Peace) तथा (4) नीरवता (Silence)

इन चारों में गुणात्मक भेद नहीं है ये उस क्रम का निर्देश करते हैं जिस क्रम में **आत्म मानस** के द्वारा उत्पन्न विषमताओं से धीरे–धीरे मुक्त हो जाता है। यही पूर्ण **अद्धैत योग** है।

बोध प्रश्न :

टिप्पणी क : अपने उत्तर नीचे दिये गये स्थान में लिखें।

ख : इकाई के अंत में दिये गये उत्तरों से अपने उत्तर मिलाइए।

3. श्री अरविंद के विकासवाद की तीन क्रियाओं का उल्लेख कीजिये ?

4. श्री अरविंद के अनुसार जीवन एवं शिक्षा का लक्ष्य बतलाईयें ?

5.5 इकाई 15 स्वामी कुवलयानन्द

5.5.1 स्वामी कुवलयानन्द का परिचय

ई. स. 1883–1966

स्वामी कुवलयानन्द जी वैज्ञानिक योग के **निर्देशक** एवं योग की महान् संस्था को **शून्य से उत्पन्न करने वाले** समसामयिक योग विज्ञान के विशिष्ट चिंतक थे जिनका भव्य शिल्प कैवल्यधाम संस्थान लोनावाला पूना विश्व को योग के आलोक से आलोकित कर रहा है। आधुनिक वैज्ञानिक युग में योग के प्रसार का श्रेय स्वामी कुवलयानन्द को है। स्वामी जी के प्रयासों से ही योग का पुरातन रूप आधुनिक काल के बुद्धिजीवियों को भी जो कि वैज्ञानिक और तार्किक मार्गदर्शक सिद्धान्तों में प्रशिक्षित हुए थे, अधिक स्वीकार्य हुआ। यह सर्वमान्य है कि स्वामी जी के वैज्ञानिक कार्य के कारण ही योग को भारी संख्या में लोगों ने स्वीकार किया तथा रोगों के उपचार के लिए अपनाया।

स्वामी जी का जन्म 30 अगस्त 1883 को ऐसे समय में हुआ था जब भारतीयों में राष्ट्रीयता की भावना पुनर्जाग्रत हो रही थी। कालेज में अध्यापन करते समय **स्वामी जी पर श्री अरविंद का प्रभाव** पड़ा, जो एक युवा के रूप में बड़ौदा में व्याख्याता के पद पर कार्यरत थे। एक उद्दीयमान क्रान्तिकारी होने के नाते उन्हें कुछ समय के लिए भूमिगत भी होना पड़ा। बाद में बंबई विश्वविद्यालय से स्नातक की उपाधि ग्रहण करने के पश्चात् उन्होंने स्वयं को **लोक मान्य तिलक द्वारा** चलाये गये **होमरूल आन्दोलन** में अपने को झोंक दिया। इस कार्य के लिए वे गांव–गांव राष्ट्रयीता का उद्घोष करते हुए घूमते रहे। इस कार्य के लिए उन्होंने **परम्परागत कीर्तन** करने का एक सर्वथा नवीन मार्ग अपनाया।

विभिन्न क्षेत्रों का भ्रमण करते समय भारत की जनता से उनका संपर्क बढ़ा, जो अज्ञानी, अशिक्षित, अंधविश्वासों तथा शरीर और आत्मा दोनों से अशक्त थी। उन्होंने यह अनुभव किया कि शिक्षा के द्वारा ही इनमें जीवन का संचार किया जा सकता है और यही भारत माता की सबसे बड़ी सेवा है। अपने इन विचारों को मूर्तरूप देने के लिए वे अमलनेर में खान देश शिक्षा समिति के साथ जुड़ गये। जहां अन्ततः 1916 में नेशनल कालेज के प्राचार्य बने, किन्तु तत्कालीन ब्रिटिश शासन द्वारा इस कालेज की मान्यता समाप्त करने का कारण यह था कि अंग्रेजों को यह भय था कि यह कालेज नवयुवकों को राष्ट्रीयता की शिक्षा दे रहा है। इससे उनमें अंग्रेजों के विरूद्ध असंतोष उभरेगा।

इसी दौरान स्वामी जी ने यह भी अनुभव किया कि युवकों के सर्वांगीण विकास के लिए उनको शारीरिक शिक्षा की भी उतनी ही आवश्यकता है। बड़ौदा में 'जमुनादास व्यायामशाला' तथा उसके विश्वसनीय मंत्री तथा भारतीय संस्कृति के पुरोधा राजरत्न माणिकराव से संपर्क के कारण वे शारीरिक संस्कृति के विभिन्न स्वदेशी तरीकों जिनमें **'योग'** भी सम्मिलित हैं, से परिचित हुए। योग के दिव्य रूप के इस परिचय ने उनके सम्मुख एक नया क्षितिज उभार दिया और मनोआत्मिक स्वरूप से परिचित होने के लिए प्रोत्साहित किया, जिससे कि वे आध्यात्मिक खोज के मार्ग पर अग्रसर हुए। सौभाग्य से इस मार्ग पर अग्रसर होते हुए उन्हें बंगाल के एक महान **योगी परमहंस माधवदास जी** का शिष्यत्व मिल गया, जो बड़ौदा के निकट मालसर में नर्मदा के तट पर ही बस गए थे।

अपनी यौगिक शक्ति के कारण परमहंस माधवदास जी साधुओं, योगियों तथा बम्बई राज्य की जनता के लिए एक पौराणिक पुरूष बन गये थे। परमहंस माधवदास जी की अप्रतिमता इस बात में थी कि आध्यात्मिक क्षेत्र में अपनी सुदृढ़ स्थिति के बावजूद वे ऐसे आध्यात्मिक व्यक्ति की भूमिका अदा कर रहे थे, जो समाज के उत्थान के लिए कार्य करता है। साधु समाज को उनके सामाजिक उत्तदायित्व का ज्ञान कराते हुए तथा तत्कालीन साधु समाज में फैले अज्ञान और अंधविश्वास को मिटाने के लिए उन्होंने इस सदी की प्रथम दशाब्दी में साधु सुधारनी सभा का गठन किया। आध्यात्मिक क्षेत्र में इस अपारम्परिक तथा अरूढ़िवादी तरीके के इस्तेमाल ने स्वामी कुवलयानन्द के मस्तिष्क पर गहरा प्रभाव छोड़ा।

माधवदास जी के मार्गदर्शन में योग के क्षेत्र के परिज्ञान ने स्वामी कुवलयानन्दजी के जीवन को एक तीक्ष्ण मोड़ दिया। उन्होंने एक नये क्षेत्र में बिल्कुल नई अवधारणा को लेकर साहस के साथ प्रवेश किया। उन्होंने सन् 1920–21 में बड़ौदा चिकित्सालय की प्रयोगशाला में अपने कुछ विद्यार्थियों के सहयोग से मानव शरीर पर कुछ यौगिक आसनों के प्रभाव को अन्वेषण करने का प्रयत्न किया। उनके विषयगत अनुभवों तथा वैज्ञानिक प्रयोगों को श्रेष्ठतम परिणामों से वे इस तथ्य से आश्वस्त हो गए कि योग की पुरातन पद्धति को यदि आधुनिक वैज्ञानिक प्रणाली के द्वारा समझा जाय तो वह प्रणाली मानव समाज के आध्यात्मिक और भौतिक पुनर्जीवन में बहुत सहायक होगी। यह धारणा स्वामी जी के जीवन का उद्देश्य बन गई।

कैवल्यधाम योग संस्थान – समाज की योग आध्यात्मिक मूल्यों पर पुनर्सरचना करने के उद्देश्य से योग की प्राचीन धारणा को मूल्यांकित करके समाज की आध्यात्मिक मूल्यों पर पुर्नरचना करने के उद्देश्य से स्वामी कुवलयानन्द जी ने **सन् 1927 में लोनावला में विजय दशमी के पवित्र** दिवस पर कैवल्यधाम योग संस्थान की स्थापना की।

इस कार्य के साथ ही साथ स्वामी जी ने **योग मीमांसा नामक एक पत्रिका** का प्रकाशन भी प्रारंभ कर दिया था जिसका उद्देश्य जनसाधारण को योग के उन रहस्यों को प्रकट करने के अपने वैज्ञानिक कार्य के परिणामों की जानकारी देना था। शीघ्र ही योग के प्रति समर्पित विवेकशील व्यक्तियों का एक दल उनके चारों ओर एकत्रित हो गया।

जब इस कार्य का विस्तार होने लगा तभी **'श्रीमन माधव योग' मंदिर समिति** के रूप में इसकी एक उपशाखा अस्तित्वमें आई, जिसका कार्य था योग के क्षेत्र में अन्वेषण के उन क्रिया कलापों के प्रायोगिक एवं सैद्धांतिक पक्ष का अवलोकन करते रहना।

इस संस्था का यश संपूर्ण विश्व में फैल गया, फलस्वरूप एक बड़ी संख्या में योग के प्रति जिज्ञासु युवकों ने इस आश्रम में योग की शिक्षा लेना प्रारंभ कर दिया। इन जिज्ञासु युवकों को सही ढंग से प्रशिक्षण देने के लिए सन् 1950 में गोवर्धनदास सेक्सरिया कालेज ऑफ योग एण्ड कल्चरल सिंथिसिस प्रारंभ किया गया।

कैवल्यधाम की इस संस्था में न केवल आध्यात्मिक एवं भौतिक ज्ञान पिपासु युवकों ने प्रवेश लिया अपितु सैकड़ों की संख्या में वे लोग भी यहां आने लगे जो विविध प्रकार के रोगों से पीड़ित थे। ऐसे लोगों की चिकित्सा और सेवा के लिए रूग्ण सेवा मण्डल की स्थापना की गई। इस चिकित्सा से प्रेरित होकर भारत में अपनी किस्म का **पहला चिकित्सालय 'श्रीमती अमोलक देवी तीर्थराम गुप्ता रोग चिकित्सालय सन् 1961 में खोला गया'।** यह चिकित्सालय योग के द्वारा दीर्घ स्थायी रोगों के निदान के लिए प्रारंभ किया गया था। इस चिकित्सालय की ख्याति संपूर्ण भारत में फैली इससे प्रेरित होकर **बम्बई, राजकोट, दिल्ली और भोपाल** में इसकी शाखाएँ खोली गई।

राजकोट की शाखा जो 'कैवल्यधाम सौराष्ट्र मण्डल' के नाम से विख्यात है, स्वामी दिगम्बर जी के दिशा निर्देशन में प्रारंभ हुई। यह संस्था क्रियायोग को महत्व दे रही है और धार्मिक ग्रंथों के अध्ययन तथा वैदिक अग्नि पूजा के अभ्यास पर आधारित है।

मुम्बई की शाखा एक पूर्ण स्वतंत्र केन्द्र के रूप में पल्लवित एवं पुष्पित हो गई है और एक स्वतंत्र ट्रस्ट द्वारा संचालित की जा रही है।

योग के क्षेत्र में संस्था द्वारा किये गए सत् कार्यों ने राष्ट्रीय नेताओं जैसे – **महात्मा गांधी, पं. मदन मोहन मालवीय, पं. जवाहर लाल नेहरू** का ध्यान आकर्षित किया और इन सभी ने स्वामी कुवलयानन्द जी के कार्यों की सराहना की तथा उन्हें प्रोत्साहित किया। महात्मा गांधी ने कुछ विशिष्ट लोगों जैसे **श्री एन.डी. पारीख, श्री के. एम. मुशी, सुरी एफ. मेरीबार, श्री ब्रजकृष्ण चांदीवाला** को कैवल्यधाम योगाश्रम में योग के द्वारा उपचार कराने की अनुशंसा की। वे स्वयं बहुधा पत्र लिखकर योग की विभिन्न प्रक्रियाओं की जानकारी देने के लिए स्वामी जी को पत्र लिखते थे और स्वयं के अनुभवों से उन्हें परिचित कराते थे। पं. जवाहर लाल नेहरू ने एक बार **मौलाना अबुल कलाम आजाद** को स्वामी कुवलयानन्द जी के संबंध में लिखा था 'स्वामी कुवलयानन्द एक अत्यन्त कुशल, आकर्षक और निष्ठावान व्यक्ति हैं।' मैं उन्हें गत अनेक वर्षों से जानता हूँ और उनसे मैंने बहुत कुछ सीखा है। मेरे पिताजी भी उनसे परामर्श लिया करते थे।

एक अत्यन्त क्रियाशील जीवन जीने के अनन्तर तथा सन् 1924 में एक साधारण लघु बीज से योग संस्कृति के विशाल तरू को पुष्पित होते तथा विश्व भर को उसकी सुगंध से मोहित होते देखकर **18 अप्रैल 1966 को स्वामी जी** चिर निद्रा में लीन हो गये।

5.5.2 स्वामी कुवलयानन्द का आध्यात्मिक चिन्तन

आप लोगों ने शायद ऐसे लोगों को देखा हो जो शर–शय्या पर सुगमता से सो जाते हैं। आप लोगों ने उन लोगों के प्रदर्शन भी देखे हों जो तीखे अम्लों को पी जाते हैं, शीशे के टुकड़ों को चबा जाते हैं, कीलें खा लेते हैं, जो सांप को खा जाते हैं, या पृथ्वी में नीचे समाधि ले लेते हैं। हमें बताया जाता है कि यह सब **योग विद्या की कला** है। मैं आपको विश्वास दिलाता हूं कि इनमें से किसी भी कार्य का संबंध योग विद्या से नहीं है। तब फिर योग क्या है? मैं कहूंगा कि योग वह कला है, विज्ञान है जिसकी साधना अपने शरीर को पूर्ण स्वस्थ रखने के लिए, अपने मस्तिष्क को पूर्ण प्रसन्नता प्रदान करने के लिए और अपनी आत्मा के पूर्ण विकास के लिए की जाती है। इस तरह योग वह विज्ञान है जो शारीरिक, मानसिक और **आध्यात्मिक पूर्णता** की ओर हमें ले जाता है। यह शारीरिक मनोवैज्ञानिक अनुशासन निर्देशों का संग्रह है, जो उन सिद्धान्तों पर आधारित है, जो पूर्णरूप से विवेकपूर्ण है।

तब फिर उन अलौकिक और परा–**मानवीय शक्तियों** के संबंध में कहा जाय जिनके विषय में कहा जाता है कि योगी इन्हें प्राप्त कर लेते हैं। जहां तक मैंने योग का अध्ययन किया है, मैं यह कह सकता हूं कि सच्चे योगी ने कहीं भी किसी भी अलौकिक या दैवी कार्य करने का दावा नहीं किया है। जिन शक्तियों का दावा किया गया है वे सभी मानव हित के लिए की गयी हैं। इनसे यही सिद्ध होता है कि वे शक्तियां मानव की पहुंच के भीतर हैं अतः वे **अलौकिक या दैवी** नही कही जा सकती और न हम यौगिक शक्तियो को अलौकिक ही कह सकते है। प्रकृति के नियम **सनातन, शाश्वत** और **स्थिर** हैं। मानव में चाहे जो आत्मिक पूर्णता है, वह उसे परिवर्तित नहीं कर सकता।

यह बात ब्रम्हसूत्र में बहुत स्पष्ट रूप से कही गयी है – 'जगद् व्यापार वर्जम्'। अर्थात् प्रकृति के नियम मानव के नियंत्रण से परे हैं, भले ही यह आत्मिक पूर्णता को प्राप्त कर ले। इसका कारण स्पष्ट है यदि प्रत्येक आत्मिक पूर्णता को प्राप्त व्यक्ति प्रकृति के नियमों पर अपनी इच्छा के अनुसार नियंत्रण करने की कोशिश करेगा तो प्रकृति की संरचना में जबरदस्त विप्लव हो जायेगा।

मेरी दृष्टि में योगी जिस बात का दावा करते हैं वह ज्ञान इन्द्रियों से परे है और इसी ज्ञान के माध्यम से वे उन वस्तुओं को प्राप्त कर लेते हैं या उन क्रियाओं को प्रदर्शित करते हैं जो साधारण मनुष्य के बूते की नहीं होती। पतंजलि के योगशास्त्र जिसमें यौगिक क्रियाओं की शक्ति का वर्णन है का सूक्ष्मता से अवलोकन कीजिए। इसके अधिकतर सूत्रों में किसी न किसी इन्द्रियों से परे ज्ञान की बात कहीं गयी है और जहां केवल इन्द्रियातीत ज्ञान की शक्ति पर दावे की बात है **पतंजलि** ने अत्यंत श्रमपूर्वक सैद्धान्तिक रूप से यह सिद्ध किया है कि यह शक्ति **मानव मस्तिष्क** के द्वारा इन्द्रियजन्य क्रियाकलाप के कारण है। मैं अपने इस कथन को एक साधारण सा उदाहरण देकर स्पष्ट कर रहा हूं। अपनी दृष्टि के संबंध में सोचिए। यह हमारी आंखों की सीमा (क्षेत्र) तक सीमित है। पतंजलि ने लिखा कि योगी मानव दृष्टि से बहुत परे की चीज भी देख सकता है। क्योंकि वे कहते हैं कि योगी **अन्तर्दृष्टि** के प्रभाव से स्वतंत्र रूप से वस्तुओं का निरीक्षण कर सकते हैं। इसलिए योगी की दृष्टि को ठोस पदार्थ और दूरी कोई बाधक नहीं है। जो बात दृष्टि के संबंध में लागू होती है वहीं बात अन्य इन्द्रियों के संबंध में भी लागू होती है। इसलिए यह दावा भी किया जाता है कि योगी का मस्तिष्क अपनी इन्द्रियों पर निर्भरता से स्वतंत्र होकर कार्य करता है और इसीलिए वे इन्द्रियातीत ज्ञान के अधिकारी होते हैं।

यहां प्रश्न यह उठता है कि योगियों को इन्द्रियातीत ज्ञान होने का क्या कोई वैज्ञानिक प्रमाण भी है? इस प्रश्न का उत्तर मैं हां या नहीं दोनों प्रकार से दे सकता हूं। मैं यह बात स्वीकार करता हूं कि अभी तक इन इन्द्रियातीत अनुभवों का **वैज्ञानिक ढंग** से समुचित नियंत्रण के अंतर्गत **उच्चस्तरीय अनुसंधान** नहीं किया गया है। अतएव पूर्णतः वैज्ञानिक प्रमाण का दुर्भाग्यवश आज भी अभाव है।

5.5.3 स्वामी कुवल्यानन्द की शिक्षायें

स्वामी कुवल्यानन्द के शिक्षा पर विचार :– जो शिक्षा पद्धति भारतीय संस्कृति पर आधारित होते हुए, जिसमें भारतीय संस्कृति का मधुर सम्मिश्रण हो और जिसके माध्यम से व्यक्तिगत, सामाजिक आदि भौतिक तथा आध्यात्मिक उन्नति प्राप्त हो सके, उसी को राष्ट्रीय शिक्षा कह सकते हैं। इसका अर्थ यह हुआ कि केवल वेदाध्ययन या केवल भारतीय दर्शन के अध्ययन को हम राष्ट्रीय शिक्षा नहीं कह सकते। इसका मुख्य कारण यह है कि यद्यपि यह शिक्षा प्रणाली भारतीय संस्कृति पर आधारित है तब भी इसमें विभिन्न संस्कृतियों का मधुर मिश्रण नहीं होगा। यदि एक पक्षीय मिशनरी स्कूल और कालेज में मिली हुई अति उच्च बौद्धिक शिक्षा को भी वो राष्ट्रीय शिक्षा की संज्ञा प्राप्त नहीं हो सकती क्योंकि उसको भारतीय संस्कृति का आधार प्राप्त नहीं होगा। इन्हीं सब विचारों को लेकर जिस शिक्षा में आदि भौतिक और आध्यात्मिक विकास के लिए कोई व्यवधान न हो अथवा जो शिक्षा व्यक्ति को समाज से परान्मुख करे या अवगत करावे उसको हम राष्ट्रीय शिक्षा नहीं कह सकते। ये विचार राष्ट्रीय शिक्षा को दृष्टि में रखकर किये गये हैं।

अब शिक्षा की दृष्टि में रखकर यह ध्यान में रखना है कि शिक्षा केवल पाठ्यपुस्तकों, शिक्षा संस्थाओं की इमारतों शिक्षा क्रम में औद्योगिक कला का अन्तर्भाव करने से या शिक्षा के माध्यम पर आधारित नहीं रहता। वो मुख्यतः शिक्षा संस्थाओं की घटनाओं पर, अध्यापक का फल है।

यहां पर ऊपर उल्लेखनीय बातों द्वारा अपने देश की शिक्षा संस्थाओं की स्थिति चाहे कितनी भी निकृष्ट हो तो भी इन संस्थाओं को बन्द करने, या उनका इष्ट रूप में रूपांतर एक या दो वर्षों में करने की सोची भी जाय तो यह मूर्खता होगी। ये बात जितनी सच्ची है उतनी ही यह बात भी सच्ची है कि इन शिक्षा संस्थाओं में सुधार के योग्य उपाय न करना भी मूर्खता होगी। आज जो उपाय और योजनाए बन रही है उससे ऐसा नही लगता कि इष्ट सिद्ध होगा। क्योंकि आज के उपाय का मतलब पाठ्यपुस्तकों को एक विशिष्ट रीति से लिखना औद्योगिक कलाओं का शिक्षा में

अन्तर्भाव करना, मातृभाषा को ही माध्यम बनाना, शिक्षण संस्थाओं की रचना आरोग्य की दृष्टि में रखकर करना आदि प्रकार के विचार हैं। इन उपायों का निःसंदेह ही महत्व है परन्तु इसक द्वारा आज के शिक्षकों को शिक्षणत्व प्राप्त नहीं हो सकता और राष्ट्रीय शिक्षणत्व तो कदापि नहीं। कारण इन उपायों द्वारा शिक्षा के मूल में विचार नहीं किया जाता है और वे मूल याने भारतीय व भारतीय लोगों पर संस्कृति के मधुर सम्मेलन से विकसित होने वाले संस्कार ही है। ये संस्कार विद्यार्थियों पर दृढ़ता से हो सकें वहीं उपाय योजना करनी चाहिए।

इस उपाय की योजना करने के लिए जरा भी विलम्ब न करके दो मार्गों का अवलम्बन करना चाहिए। संस्कृति यें एक विषय अभ्यासक्रम में सर्वत्र प्रविष्ट करके और इस विषय को अमल से पढ़ाने वाले शिक्षक तैयार करना, ये वो दो मार्ग हैं जिस प्रकार से प्रत्येक प्रान्त में शारीरिक शिक्षा के एक एक महाविद्यालय बनवाने और कम से कम एक अखिल भारतीय स्तर का सर्वोच्च महाविद्यालय बनवाने का भारत में प्रयत्न शुरू है। उसी तरह वर्ग के आचार विचारों पर, गुरू शिष्य के आपस के प्रेम संबंधों और एक तरह से इन सब बातों के आपसी मिलन से जो एक वातावरण तैयार होता है ये उस पर अवलम्बित रहता है। आजकल विद्यालयों महाविद्यालयों में दी जा रही शिक्षा के इस तत्व को मान्य कर इस आधार पर रखते हुए किस हद तक खरी उतरेगी, इस बात की शंका मन में उठती है। फिर व्यक्तिगत मालिकों की ओर आर्थिक लाभों के लिए चलाये हुए विद्यालयों के बारे में (और ये मुम्बाई प्रान्त में बहुत संख्या में है) बोलना ही व्यर्थ हैं। जहां अध्यापकों और विद्यार्थियों का सम्बन्ध दिन भर में केवल एक घंटे के लिए होता है और वो भी लिखी हुई पद्धति के अनुसार ही अपने–अपने विषय सिखाने तक ही सीमित रहता है ऐसी परिस्थिति में गुरू और शिष्यों के आत्मिक संबंध होना दुर्लभ हैं। इसके सिवाय शिक्षकों की पात्रता केवल उनके बौद्धिक विकास पर से ही निश्चित की जाती है। इसलिए आजकल की शिक्षा संस्थाओं से केवल बौद्धिक विकास तो होता रहेगा लेकिन इसमें से सच्ची और खरी शिक्षा नहीं मिल सकती और राष्ट्रीय शिक्षा मिलना तो असंभव है।

उपरोक्त विचारों पर ऐसा आक्षेप लिया जायेगा कि आज अपने देश में अनेक नेता लोग अपने अपने क्षेत्र में काम कर रहे हैं, उनकी शिक्षा भी आज के बहुसंख्यक शिक्षा संस्थाओं द्वारा ही हुई है। अतः इस शिक्षा को शिक्षा की संज्ञा न देना कितना उचित होगा। यह आक्षेप अपने आप में यद्यपि बलवान लगता हो लेकिन वस्तुतः वो अत्यंत दुर्बल है क्योंकि विद्यार्थियों में मन अत्यंत दुर्बल संस्कार क्षय होने की वजह से उनके ऊपर कुल परम्परा देशी और परदेशी आन्दोलनों के शिक्षा संस्थाओं के बाहर जो कुछ वाचन आदि और विशेषतः उच्छी संगति के संस्कार बराबर होते रहते हैं। आजकल के नेताओं में बौद्धिक और औद्योगिक कलात्मक विकास के अलावा दिखने वाले वे सब शिक्षा संस्थाओं के बाहर के संस्थाओं से संस्कृति शिक्षा के लिए भी अविलंब प्रयत्न करना चाहिए। इन दोनों मार्गों का यहां सविस्तार से विचार नहीं करना है। यहां केवल इनका दिग्दर्शन किया है। परन्तु मार्ग का अवलम्बन करने से आज विद्यार्थियों में दिखने वाली संस्कारहीनता समय के अनुसार नष्ट होकर धीरे–धीरे सच्ची राष्ट्रीय शिक्षा की शुरूआत होने लगेगी।

शिक्षा में महापंडितों को ये विचार अगर समझ में आ गये तो या उनके मन को भा गये तो वो दिन **भारत के भाग्योदय** का दिन होगा।

स्वामी कुवल्यानन्द के प्राणायाम की महत्ता पर विचार

प्राणायाम एक यौगिक श्वसनाभ्यास है। इस अभ्यास को, सामंजस्यपूर्ण मानव शरीर क्रियात्मक विकास और अभ्यासेच्छु के आध्यात्मिक उन्नयन के अनुभवों तथा वैज्ञानिक परीक्षणों के आधार पर अत्यंत मूल्यवान पाया गया है। हमारे सबसे प्राचीन स्मृतिकार मनुजी ने प्राणयाम को **शारीरिक** और **मानसिक** बुराईयों को दूर करनेवाला एक निश्चित उपाय बताया है। कुल्लुक भट्ट ने मनुस्मृति पर अपनी टीका में **प्रेम** और **घृणा** (तिरस्कार) को **मानसिक दोष** और ज्ञानेन्द्रियों के बाह्य वस्तुओं के प्रति आकर्षणों को **शारीरिक दोष** बताया है। मन और ज्ञानेन्द्रियों की इन स्वाभाविक प्रवृत्तियों को दोष माना जाने का कारण यह है कि योग में सफलता मिलना, मन और ज्ञानेन्द्रियों को अन्तर्मुखी बना

सकने पर निर्भर होता है। **हठप्रदीपिका** में भी कहा गया है कि योगियों का मत है कि केवल प्राणायाम ही ज्ञानेन्द्रियों और मन की दुष्ट प्रवृत्तियों पर नियमन प्राप्त करने का एकमात्र साधन है। महर्षि पतंजलि ने भी प्राणायाम के आध्यात्मिक मूल्यों पर विस्तृत प्रकाश डाला है। योगार्थो का आध्यात्मिक विकास दो बातों पर निर्भर होता है। (1) उसे आध्यात्मिक ज्योति को ढकनेवाले कारण को दूर करना चाहिये और (2) उसे अपने चंचल मन को एकाग्र करते बनना चाहिये। पतंजलि के अनुसार योगार्थो इन दोनों बातों की प्राप्ति प्राणायाम द्वारा कर सकता है।

आधुनिक मानस शास्त्रीयों का मत है कि काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मात्सर्य, ईर्ष्या, द्वेष, घृणा, शोक, अनुताप आदि मनोविकार ही मानसिक शांति को भंग करने में प्रबल हेतु हैं। ये विकार हमारे मन के उस स्तर में उत्पन्न होते हैं जहाँ चेतनता अथवा ज्ञान अर्धजागृत रहता है। प्राणायाम के द्वारा हमारे मस्तिष्क के स्नायुजाल तथा हमारे मन के बोध पूर्वक व्यापारो पर ही हमारा अधिकार नही हो जाता, बल्कि उससे उपर्युक्त स्तर के भी द्वार खुल जाते है। जहाँ हमारा ज्ञान अर्धजाग्रत रहता है। प्राणायाम के द्वारा हमारे मस्तिष्क के स्नायुजाल तथा हमारे मन के बोधपूर्वक व्यापारों पर ही हमारा अधिकार नहीं हो जाता, बल्कि उससे उपर्युक्त स्तर के भी द्वार खुल जाते है। जहाँ हमारा ज्ञान अर्धजाग्रत रहता है, और उस स्तर पर हमारा अधिकार हो जाता है। यही कारण है कि प्राणायाम साधक अपने मनोविकारों को दबाकर मानसिक समता स्थापित करने में समर्थ होता है। उपरोक्त उदाहरणों में इस मानसिक साम्य में हलचल पैदा करने वाले कारणों को '**मल**' कहा गया है, क्योंकि वे प्रकाश्यरूप आत्मा को आच्छन्न कर देते हैं। इन मनोमलों को धोने तथा आत्मा को अपने निज स्वरूप में स्थित करने के लिए **भगवान् पतंजलि ने प्राणायाम** को ही साधन बतलाया है और **भाष्यकार व्यास जी** ने भी उनका समर्थन किया है। प्राणायाम से शरीर की आभ्यन्तर क्रियाओं का नियंत्रण ही नहीं होता, अपितु इस शरीर यंत्र को जीवन देने वाले प्रत्येक व्यापार पर अधिकार हो जाता है।

योग चिकित्सा पर स्वामी कुवल्यानंद के विचार :– यौगिक चिकित्सा दिन प्रतिदिन ख्याति प्राप्त कर रही है। भारत ऐसे अनेक छोटे और बड़े संस्थानों से भरा पड़ा है जो कि यौगिक उपचार द्वारा अनेक रोगों को दूर करने का दावा करते हैं। इनमें से कुछ तो अच्छी प्रगति भी कर रहे हैं। हो सकता है कि सारे के सारे इस क्षेत्र में तब तक अपनी सिद्धहस्तता सिद्ध न कर पायें, जब तक कि इसका सरकारी मानक स्थिर नहीं हो जाता, जिसे कि इस नई चिकित्सा को प्राप्त करने के लिए लम्बा समय लगेगा। केवल इसके अभ्यासियों की संख्या के बल पर इस पद्धति की उपादेयता हम सिद्ध नहीं कर सकते। लेकिन यह सत्य है कि इतनी ख्याति प्राप्त करने से इतना स्पष्ट हो जाता है कि इसकी अपनी कुछ विशेषता अवश्य है। यह ध्यान देने की बात है कि बहुत से चिकित्सक जो कि आरंभ में इसकी ओर अविश्वास तथा निराशापूर्ण दृष्टि से देखते थे आज अनुभव हो जाने के बाद इसकी अच्छाइयां जान गये हैं। देश तथा विदेश में **मनोकायिक चिकित्सक** का विशेषज्ञ तथा मनोविकारी चिकित्सक इस चिकित्सा प्रणाली में रूचि दिखाने लगे हैं। वे यह विश्वास करने लगे है कि योग द्वारा मनोशारीरिक तनाव दूर होते हैं, जो कि उनके रोगियों में मानसिक तथा स्नायु दुर्बलता दूर हो जाने के बाद भी बने रहते हैं। बहुत से चिकित्सक अब यह समझ गये हैं कि मनोचिकित्सा तथा पुनर्वास के क्षेत्र में जीर्ण रोगियों के लिए यौगिक–चिकित्सा महत्वपूर्ण योग दे सकती है। अतः यौगिक–चिकित्सा को अवैज्ञानिक तथा थोथी कहकर तिरस्कृत करना आवश्यक भूल ही होगी। यौगिक चिकित्सा वास्तविक रूप में व्यावहारिक मूल्य की होगी **यदि उसके सिद्धान्त अन्य किसी चिकित्सा पद्धति के सिद्धान्तों में न मिलाया जावें**। कुछ आधुनिक योग परम्पराओं में संभवतः मान्यता प्राप्त करने या प्रदर्शनों में आकर्षण उत्पन्न करने के निष्पाप दृष्टिकोण, इस प्रकार के सिद्धान्तों को मिलाने की तीव्र प्रवृति और मोह देखने में आते हैं। दूसरी ओर चिकित्सक समूह योग–चिकित्सा पद्धति को एक विशेष व्यायामात्मक चिकित्सा पद्धति को रूप समझाने में प्रवृत्त हैं। यौगिक चिकित्सा प्रविधियों में कुछ व्यायाम आवश्यक हैं, परंतु ये ध्यान रखा जाय कि साधारण गति युक्त और उग्र व्यायामों के शरीर क्रियात्मक तत्व उन पर लागू नहीं किए जा सकते हैं। तथापि यौगिक चिकित्सा में केवल व्यायाम ही नहीं है। यह एक मिश्रित स्वरूप की चिकित्सा प्रक्रिया है। जिसमें मानव व्यक्तित्व के सभी पहलुओं पर ध्यान दिया जाता है।

5.6 इकाई 16 : स्वामी शिवानन्द

5.6.1 स्वामी शिवानन्द का परिचय

ई.स. 1887–1963

स्वामी शिवानन्द का जन्म दक्षिण भारत के तमिलनाडु राज्य के ताम्रपर्णी नदी के किनारे बसे गाँव में 8 सितम्बर 1887 को हुआ। ये बचपन से ही प्रखर बुद्धि सम्पन्न एवं स्वस्थ्य शरीर के पहलवानी एवं खेलकूद में शौक रखने वाले युवा थे। बचपन में इनका नाम **कुप्पुस्वामी** था। इनके पिता जेनू अय्यर भगवान शिव के भक्त एवं छठी शताब्दी के विद्वान संत **अयप्पा दीक्षितार** के वंशज थे।

लोगों की सेवा करने की तीव्र इच्छा ने उन्हें चिकित्सा के क्षेत्र में प्रवेश करवाया, वे 1905 में तंजौर के चिकित्सा स्कूल में चिकित्सा विज्ञान का अध्ययन करने लगे। परन्तु पिता की मृत्यु के कारण उन्होंनें अध्ययन स्थगित कर दिया। दैनिक जीवन के खर्चो के लिए चिकित्सा विज्ञान की मासिक पत्रिका **अम्ब्रासिया** का प्रकाशन किया। सन् 1913 में मलाया में एक चिकित्सा संस्थान के संचालक बन गये एवं 10 वर्षो तक वह मानव सेवा का कार्य करते रहे। मलाया के जोहतोबार एवं सिंगापुर में 1922 तक बीमारों व गरीबों की सेवा में संलग्न रहें। वहीं एक **सन्यासी की सेवा की**

तथा स्वस्थ्य होने पर उन सन्यासी ने कुडपाह के **स्वामी सच्चिदानन्द** रचित **जीव ब्रम्ह एवं वेदांत रहस्यमय** नामक किताब स्वामी शिवानंद को भेंट की। इस ग्रंथ ने उन्हें अंदर से बेचैन कर दिया और वे अपना पद त्याग कर **पूना** आ गये। पूना में उन्होंन अपनी समस्त संपत्ति दान कर दी एवं अमरत्व की प्राप्ति और आध्यात्मिक खोज में निकल पड़े। वे जंगली फल–फूलों का सेवन करते तथा प्रश्रय देने वाले की सेवा करते थे। इस प्रकार समस्त सांसारिक एश्वर्यों का त्याग उन्होने दिया था।

स्वामी जी सन् 1924 में **ऋषिकेश** गये जहां **स्वामी विश्वानंद** सरस्वती जो कि **दशनामी** (सरस्वती) परम्परा के गुरू थे। **सन्यास** की दीक्षा ग्रहण की। इसके बाद मानव सेवा के सतत् भाव ने उन्हे 1925 में **सत्य सेवा आश्रम** औषधालय के स्थापना की प्रेरणा दी। ऋषि केश में लक्ष्मण झूला की जीर्ण–शीर्ण झोपड़ी से चार मील चलकर घने जंगलों से होकर भिक्षा मांगने हेतु जाया करते थे। इस दौरान वे निरंतर ऊँ का जाप करते थे। 12 वर्षों तक अनवरत् तपश्चर्या में रत् रहे। स्वयं **योग के नियमित साधक** रहें इस कारण उनमें अनन्त शक्ति एवं ओजपूर्ण एवं असाधारण स्मरण शक्ति की क्षमता थी। सन् 1931 से वे छः वर्षों तक **एकांतवास** में चले गये तथा कठोर तपस्या करते रहे। इसके बाद सन् 1936 में **दिव्य जीवन संग** की स्थापना की, उनका विश्वास था कि निःस्वार्थ सेवा से ही मनुष्य अपने संस्कारों को पवित्र कर सकता हैं। **परिव्राजक** के रूप में निकलकर उन्होंने उत्तर प्रदेश, बिहार, जम्मू काश्मीर, आन्ध्रप्रदेश में घूम घूमकर वेदांत एवं योग का प्रचार किया। 17 जनवरी 1934 को उन्होंने गंगा के दाहिने किनारे ऋषिकेश में टेहरी गढ़वाल के महाराजा से प्राप्त दान भूमि में आश्रम की स्थापना की। वहाँ स्थित पुरानी गौशाला में **आनंद कुटीर** की स्थापना की तथा **आध्यात्मिक पुस्तकों** का प्रकाशन शुरू किया। इस आश्रम में अखण्ड कीर्तन पाठ किया जाता था।

सन् 1943 में स्वामी सत्यानन्द जी उनके आश्रम में आये और **सन्यास की दीक्षा** ग्रहण की। आश्रम में अध्यात्म गतिविधियाँ तीव्रता से बढ़ने लगी इसी समय सन् 1945 में विश्व धर्म समाज एवं शिवानन्द आयुर्वेदिक फार्मेसी की स्थापना की गई। सन् 1948 में **योग–वेदान्त–आरण्य** अकादमी की स्थापना की गई। तथा सन् 1951 में **योग आरण्य अकादमी प्रेस** की स्थापना की गई। तथा **योग स्वास्थ्य एवं आध्यात्मिक जीवन** पर 200 सौ से अधिक पुस्तकों का लेखन एवं प्रकाशन किया। सन् 1953 में ऋषिकेश में विश्व धर्म संसद का आयोजन किया। सन् 1857 में **शिवानन्द नेत्र चिकित्सालय** की स्थापना की। सन् 1958 में **शिवानन्द साहित्य शोध संस्थान** का गठन किया। सन् 1959 में शिवानन्द साहित्य प्रचार समिति का गठन किया। श्रोताओं के साथ उनका अच्छा तादात्म्य था। उन्होंने मैसूर, श्रीलंका, त्रिवेन्द्रम की यात्रा की। सन् 1959 में फ्रांस, स्वीजरलैंड और बेल्जियम के दूर दर्शन केन्द्रों से उनके कार्यक्रम प्रचारित किये गये।

23 जून 1963 को अपने कार्यालयीन कार्यों में अंतिम बार सहयोग देते हुये 14 जुलाई रविवार 1963 को रात्रि 11.25 बजे **महासमाधि** में लीन हो गये। सर्वोच्च सत्ता में एकाकार हो चुकी आत्मा के इस पार्थिव शरीर का 16 जुलाई को विश्वनाथ मंदिर की सुरम्य पहाड़ियों में अंत्येष्ठि कर दी गई।

5.6.2 स्वामी शिवानंद का आध्यात्मिक चिन्तन

सभी चिन्तनशील मनुष्यों ने भागवतीय चेतना की प्राप्ति को जीवन का परमार्थ ! मानवजीवन का लक्ष्य! तथा मानव जीवन का उद्देश्य! सर्वतः स्वीकार किया है, अतः इस रूप में उस लक्ष्य की प्राप्ति के विविध उपायों तथा युक्तियों का स्पष्ट तथा व्यापक ज्ञान सर्वथा अवाछंनीय नहीं होगा। पुरातन कालीन ऋषियों तथा मुनियों ने इस शुद्ध विज्ञान को जैसा समझा था तथा उसका जैसा अभ्यास किया था उसे साधक जब तक स्पष्ट शब्दों में नहीं जान लेते, तब तक उनके लिए शांति, सुख, आनंद, अमरता तथा भागवतीय चेतना प्राप्त करना असंभव नहीं तो अत्यधिक दुष्कर अवश्य होगा।

योग वेदांत का अंतिम तात्पर्य जीव ब्रह्म की एकता है। ब्रह्म का मूल स्वरूप सच्चिदानंद है; परंतु यह जीव अविद्या के कारण अपने को शरीर मान लेता है और समझता है कि वह तभी तक है जब तक यह शरीर है। मस्तिष्क द्वारा पिंजर में बद्ध होने के कारण मस्तिष्क से संवृत ज्ञान को अपना ज्ञान समझता है। वह इंद्रिय–सुख में लीन रहकर यही

सोचता है कि इंद्रिय–सुख ही वास्तविक सुख है और इसलिए विषयों के भंवर में फंसा रहता है। परंतु ज्यों ही शरीर आदि निम्न तत्वों के स्वप्न से वह जाग उठता है और आत्मा आदि उन्नत तत्वों की ओर दृष्टिपात करता है, तब उसे अपने भ्रम का परिज्ञान होता है और अपना ब्रह्मस्वरूप पहचानने लगता है। प्रत्येक जीव को अपने शरीर के ही तीन अंगों में मूर्धा, हृदय और मूलाधार में इस ब्रह्मत्व का अनुभव करना चाहिए। हृदय में वह हृदय–ग्रंथि का उच्छेद करता है और अपनी सर्वव्यापकता को देखता है। मूर्धा में वह सहस्त्रार–चक्र तक ऊँचा उठता है और सर्वज्ञता तथा मूलाधार–चक्र में सुषुप्त पड़ी कुण्डलिनी नामक रहस्यमयी शक्ति पर अधिकार प्राप्त करता है।

मनोवैज्ञानिक कहते है कि जब कामनाओं पर विजय प्राप्त कर लेते हैं तब संकल्प शक्ति का विकास होता है और जब संकल्प शक्ति का बृहत् परिमाण में विकास किया जाता है तो सर्वज्ञता नामक महत् शक्ति की प्राप्ति होती है। कुण्डलिनी जय हो जाने पर अणिमा, महिमा आदि जैसी असीम शक्तियों की प्राप्ति होती है और कुण्डलिनी की विजय तभी होती है जब मनुष्य इंद्रिय विषयों की वासना से ऊपर उठ जाता है। सतत् निदिध्यासन, अखंड योगाभ्यास तथा चिंतन इसे सम्पन्न करने की सर्वोत्तम विधि है। ये सब देहाध्यास को विजय करने में और सच्चिदानंद रूप ब्रह्म में अवस्थित होने में साधक के सहायक होते हैं।

मुख्यतः चार मार्ग हैं और वे सभी एक ही लक्ष्य–भागवत चेतना की प्राप्ति तक पहुँचाते हैं। मार्ग अलग–अलग हैं; किंतु गंतव्य एक ही है। विभिन्न दृष्टिकोणों से उपदिष्ट चारों मार्गो को कर्मठ लोगों के लिए कर्मयोग, भावप्रवण लोगों के लिए भक्तियोग, रहस्यवादियों के लिए राजयोग तथा विवेकवान् व्यक्तियों के लिए ज्ञानयोग कहा जाता है। ये चारों मार्ग परस्पर किंचित भी विरोधी नहीं हैं, वरन् वे एक–दूसरे के सम्पूरक हैं। वे हिन्दू–धर्म की विविध प्रणालियों को सूचित करते हैं और यह प्रदर्शित करते हैं कि वे परस्पर उपयुक्त सामंजस्य में रहते हैं। धर्म को पूरे मनुष्य का, उसके मस्तिष्क, हृदय तथा बाहुओं को प्रशिक्षित तथा विकसित करना चाहिए। एकांगी विकास संस्ताव्य नहीं है। व्यक्ति का शिर **शंकरचार्य** का, हृदय **बुद्ध** का तथा हाथ जनक का होना चाहिए। कर्मयोग चित्त का मल दूर करता और हृदय को विकसित करता है। भक्तियोग मन के विक्षेप को नष्ट करता है। राजयोग मन को स्थिर करता तथा एकाग्रता विकसित करता है। ज्ञानयोग अज्ञानावरण को दूर करता तथा आत्मज्ञान प्राप्त कराता है। अतः व्यक्ति को चारों योगों का अभ्यास करना चाहिए। आध्यात्मिक पथ में साधक के आशु विकास तथा उन्नति के लिए ज्ञानयोग को केन्द्रीय आधार तथा अन्य लोगों को सहायक समझना चाहिए।

क्रिया, मनोभाव तथा बुद्धि–रूपी तीन अश्व शरीर–रूपी रथ में जुते हुए हैं। उन्हें पूर्ण सामंजस्य से कार्य करना चाहिए। तभी रथ निर्विघ्न चल सकता है। सर्वांगीण विकास होना चाहिए। भक्ति रहित वेदांत शुष्क हैं, वैसे ही ज्ञानरहित भक्ति अपूर्ण है। जिस व्यक्ति ने आत्मा की एकता का साक्षात्कार कर लिया है, वह संसार, जो कि आत्मा की ही अभिव्यक्ति हैं, की सेवा किये बिना कैसे रह सकता हैं? भक्ति ज्ञान से पृथक् नहीं हैं, वरन् वह उसकी पूर्णता की प्राप्ति में अत्यधिक सहायक है।

भक्ति ज्ञान की विरोधी नहीं है। इन दोनों में अन्योन्याश्रयी संबंध है। दोनों एक ही गन्तव्य तक पहुँचाते हैं। भक्ति तथा ज्ञान अम्ल तथा क्षार की तरह परस्पर विरोधी नहीं हैं। व्यक्ति भक्तियोग को ज्ञानयोग के साथ सम्मिलित कर सकता है। भक्ति का फल ज्ञान है। पूरा भक्ति और ज्ञान एक ही हैं। पूर्ण ज्ञान भक्ति है। पूर्ण भक्ति ज्ञान है। केवलाद्वैत ज्ञानी श्री शंकराचार्य भगवान हरि, हर तथा देवी के परम भक्त थे। आलंदी के महान् योगी ज्ञानदेव भगवान् कृष्ण के भक्त थे। श्री गौरांग एक सुसंस्कृत अद्वैत वेदांती विद्वान् थे, परंतु हरि का नाम गाते हुए गलियों में नृत्य करते फिरते थे। अतएव **भक्ति को ज्ञान के साथ** बहुत लाभकर रूप में सम्मिलित किया जा सकता है।

''अनंतशास्त्रं बहु वेदितव्यं स्वल्पश्च कालो बहुवश्च विघ्नाः।

यत् सारभूतं तदुपासितव्यं हंसो यथा क्षीरमिवाम्बुमिश्रम्।।

शास्त्र अनंत हैं, जानने के लिए बहुत कुछ है। समय अल्प है और विघ्न अनेक हैं। अतः जो सारवस्तु है, उसे ही ग्रहण करना चाहिए जैसे हंस क्षीर–नीर–मिश्रण की दशा में करता है।''

पाठको! अमृत पुत्रो! जाग जायें अब अपने नेत्र खोलें। शास्त्र सागर के अध्ययन में अपना संपूर्ण जीवन नष्ट न करें। मैं आपका शुभचिंतक हूँ। मैं विश्व का मित्र हूँ। मैं आपके उद्देश्य में आपकी सहायता कर सकता हूँ। आपने जो कुछ सीखा है उसे आत्मसात् करें। उसे व्यवहार में लायें। एक–एक पग रखते हुए योग के सोपान पर आरोहण करें और परम भागवत चेतना की अवस्था प्राप्त करें। मेरे प्रिय भाइयों! वेदों के अंतिम शब्द को कभी भी विस्मरण न करें– ''**तत्वमसि**'', तुम वही (ब्रह्म) हो! संक्षिप्त में स्वामी शिवानन्द के उपदेश –

सेवा, प्रेम, दान, शुद्धि, ध्यान, ज्ञान प्राप्ति है।

5.6.3 स्वामी शिवानन्द की शिक्षायें : स्वामी शिवानन्द ने योग के समस्त पहलुओं पर अपनी शिक्षाएं इस प्रकार दी है –

(1) **साधक का स्वभाव** यदि सामान्य बातों से ही आसानी से क्रुद्ध हो जाने वाला हो तो वह ध्यानयोग में कोई प्रगति नहीं कर सकता है। उसको तो मिलनसार, प्रेमल तथा परिस्थिति के अनुरूप बनने वाले स्वभाव का पोषण करना चाहिए। कुछ साधक, जब उनका दुर्गुण तथा त्रुटि उन्हें बता दी जाती हैं तो बड़ी जल्दी अप्रसन्न हो जाते हैं और दोष दिखाने वाले व्यक्ति से रूष्ट हो कर झकड़ने लग जाते है। वे सोचते है कि इस व्यक्ति ने ईर्ष्या तथा घृणा के कारण उन्हें अपनी ओर से गढ़ लिया है। यह बुरा है। दूसरे व्यक्ति हमारी त्रुटियों का बड़ी सरलता से पता लगा सकते है। जो व्यक्ति आत्मनिरीक्षण नही करता तथा जिसकी वृत्ति बर्हिमुखी है, वह अपने दोषों को पहचान नही सकता है। अभिमान उसका आवरण बन जाता है और उसकी मानसिक दृष्टि को धुँधला बना देता है। साधक को यदि प्रगति करनी है। तो यदि कोई दूसरा व्यक्ति उसके दोषों को उसे दिखा दे तो चाहिए कि वह उन्हें स्वीकार कर ले, उनके उन्मूलन का यथाशक्त प्रयास करे तथा दोष दिखाने वाले व्यक्ति को धन्यवाद दे। वह तभी अध्यात्म मार्ग में गति कर सकेगा।

(2) **स्वाग्रही प्रकृति** का उन्मूलन करना बहुत ही कठिन कार्य है। प्रत्येक व्यक्ति ने अनादि काल से अपने व्यक्तित्व का निर्माण किया है। उसने अपने राजसिक मन को मनमानी करने की पूरी छूट दे रखी है।

(3) **व्यक्ति को दूसरों के आचरण** तथा प्रकृति के अनुकूल अपने को बनाना बहुत कठिन लगता हैं उसका मन जाति, वर्ण तथा सम्प्रदाय के पक्षपात से भरा रहता हैं वह नितान्त असहिष्णु होता है। वह सोचता हैं कि उसका अपना दृष्टिकोण, उसकी अपनी राय और जीवन–पद्धति ही ठीक है और दूसरों के दृष्टिकोण गलत है। दोष–दृष्टि की प्रकृति उसमें दृढ़ निविष्ट हैं दूसरों की त्रुटियाँ देखने को वह तुरन्त उछल पड़ता है। उसके नेत्र विकृत होते है। वह दूसरों के गुण नहीं देख सकता। वह दूसरों के सत्कार्य पसन्द नही कर सकता। अपने ही कार्य तथा योग्यता की डींग मारता रहता है। यहि कारण है कि वह प्रत्येक व्यक्ति के साथ झगड़ता रहता है और किसी के साथ अधिक समय तक मित्रता नहीं निभा सकता हैं कई साधको में भी ये त्रृटियाँ पर्याप्त मात्रा में होती है। इसी कारण वे भी अपने मार्ग में कोई प्रगति नही कर पाते। उन्हें सहिष्णुता, शुद्ध प्रेम तथा अन्य सात्विक गुणों के विकास द्वारा इन त्रृटियों का उन्मूलन करना चाहिए।

(4) **आपने विद्वान् सन्यासियों** के अनेक वाग्मितापूर्ण भाषण सुने होंगे, गीता, रामायण, भागवत तथा उपनिषदों की कथाएँ, प्रवचन तथा व्याख्याएँ सुनी होगी। आपने कई बहुत उपयोगी नैतिक तथा अध्यात्मिक उपदेश सुने होंगे किन्तु आपने उनमें से किसी को भी व्यावहार में लाने का और दीर्घ काल तक साधना करने का कुछ भी गंभीर प्रयत्न नहीं किया। केवल उन धार्मिक विचारों को बुद्धि से स्वीकार करना, अपने को तथा अपने अन्तर्यामी को धोखा देने के लिये प्रातः सायं थोड़ी देर आंखे मींच कर बैठना, निरुत्साह तथा असावधानीपूर्वक कुछ नित्यकर्मो को करते रहना तथा कुछ सद्गुणों के विकास करने का स्वल्प प्रयास करना तथा अपन गुरु के उपदेशों को कार्यान्वित करने का धीमा प्रयत्न–ये पर्याप्त नही है। इस प्रकार की मनोवृत्ति पूर्णतयाा छोड़ देनी चाहिए। साधक को अपने गुरु के उपदेशों तथा शास्त्र के वचनों का अक्षरशः पालन करना चाहिए। मन को कुछ भी ढील नही देनी चाहिए। अध्यात्म–मार्ग में अर्ध प्रयत्न काम नही देता। आप यह नहीं कह सकते, 'बाद में देखा जायेगा। जब मै निवृत होऊँगा, तब अधिक समय दूँगा। कम या अधिक, जितना सभव था, उतना मैने पालन किया। यह **'कम या अधिक' या 'यथासम्भव' का मामला साधक के लिए अनिष्टकर है**। आध्यात्मिक उपदेशों में सामान्य नियमों में अपवाद, छूट या रियायत सम्भव नही हैं पूर्ण,

अन्ध तथा अतिनियमनिष्ठ आज्ञाकारिता की यहाँ अपेक्षा है।

(5) **बिना सोचे–समझे** कोई टिप्पणी न करें। एक भी निरर्थक शब्द न बोलें। निराधार बातें, लम्बी बातें , ऊँची बातें तथा असंयत बातें करना छोड़ दें। मौन रखें। इस भौतिक प्रातिभासिक जगत् में अपने अधिकार का दावा न करें, उसके लिए लड़े नहीं। अपने कर्तव्यों की चिन्ता अधिक और अधिकार की चिन्ता कम करें। अधिकार का दावा रजोगुणी अहंकार से आता है। ये अधिकार व्यर्थ है। यह समय ओर शक्ति का अपव्यय है। भागवत चेतना के अपने जन्मसिद्ध अधिकार का दावा करें। आप ब्रह्म हैं। इस वास्तविक जन्म–सिद्ध अधिकार का दावा करें। तभी आप बुद्धिमान् है।

(6) यदि आप पहुँचे हुए सन्तों की संगति में रहेंगे तो आप उनकी आकर्षण आभा तथा आध्यात्मिक लहरों में अत्यधिक लाभान्वित होंगे। उनकी संगति आपके लिए दुर्ग का काम देगी। आप दुष्प्रभावों से आक्रान्त नहीं होंगे। वहाँ पतन की कोई आशंका नहीं है। आप तीव्र आध्यात्मिक प्रगति कर सकेंगे। सन्त के सान्निध्य से साधक की सात्विक वृत्तियों की वृद्धि में उल्लेखनीय गति आती है और उसे अपनी सभी प्रसुप्त शक्तियों को उद्घोषित करने और अवाच्छित दुर्गुणों तथा विविध त्रुटियों का उन्मूलन करने के लिए अधिक बल, ऊर्जा तथा शक्ति प्राप्त होती है। नवयुवक साधको को अपने गुरु या सन्तों की संगति में तब तक रहना चाहिए जब तक वे अध्यात्म–पथ ओर गम्भीर ध्यान में दृढ़ता से ढल न जायें अथवा स्थित न हो जायें। इन दिनों अनेक नवयुवक साधक इधर–उधर निरुद्देश घूमते–फिरते हैं। वे अपने गुरुओं अथवा अनुभवी संतों के उपदेश नही मानते है। वे प्रारंभ से ही स्वतंत्रता चाहते है। इसीलिए वे अध्यात्म में कुछ भी प्रगति नही कर पाते। वे समाज के लिए भार बने रहते हैं उन्होनें अपने को उन्नत नहीं बनाया हैं वे दूसरों के लिए भी उपयोगी नही होते। वे सामान्य रुप में स्वेच्छाचारी सज्जन है।

(7) **आध्यात्मिक मार्ग में थोड़ी** सी सफलता मिलते ही, थोड़ी–सी मानसिक शान्ति, थोड़ी–सी एकाग्रता, किसी देवदूत के दर्शन अथवा सिद्धि, पर विचार–ज्ञान की थोड़ी शक्ति आदि प्राप्त होते ही संन्तोष न कर बैठें। और भी कई शिखर आरोहण करने को, कई क्षेत्र पार करने को अभी शेष हैं। आध्यात्मिक साधना जारी रखें।

(8) **सेवा के लिए पूर्ण समर्पित जीवन जियें**। अपने हृदय में सेवा के लिए उत्कण्ठा तथा उत्साह भरें। दूसरो के लिए वरदान–स्वरुप होकर जियें। इसके लिए आपको मन परिष्कृत करना होगा, अपना चरित्र चमकाना होगा, अपना चरित्र ढालना अथवा निर्माण करना होगा तथा सहानुभूति, स्नेह, परोपकारिता, धैर्य और नम्रता का विकास करना होगा। दूसरों के विचार यदि आपसे भिन्न हों तो उनसे झगड़े नहीं। मन कई प्रकार के होते हैं विचार–सरणी भी विविध प्रकार की होती हैं प्रामाणिक मतभेद हुआ करते है। प्रत्येक की आपनी–अपनी राय हुआ करती है और सब अपने दृष्टिकोण से सही हैं। उनकी दृष्टि के साथ मेल साधें। उनकी राय की भी सहानुभूति और ध्यान से सुनें और उसे भी स्थान दें। अपने अहंकार के संकीर्ण वृत्त को छोड़ कर बाहर आयें और विशाल दृष्टि अपनाये। उदार दृष्टि से काम ले। सबके दृष्टिकोण को स्थान दें, तभी अपने को विशाल बना सकेंगे और हृदय को विकसित कर सकेंगे। मृदुता, मधुरता और शिष्टता के साथ बात करें। कम बोलें। अवाच्छित विचारों और भावनाओं को दूर करें। गर्व और उत्तेजना का लेशमात्र भी न रहनें दें। अपने को पूर्णतया भूल जायें। वैयक्तिक तत्व या भावना की रत्तीभर छाप न रहने दे। सेवा के लिए पूर्ण समर्पण आवश्यक है। यदि आप उपर्युक्त गुणों से सन्नध हों तो सामान्य रूप से जगत् के प्रकाश–स्तम्भ तथा दुर्लभ वरदान हैं। निश्चित ही आप ऐसा रमणीय पुष्प हैं जिसकी सुरभि इस समूचे विश्व में सर्वत्र प्रवेश कर जायेगी और छा जायेगी।

(9) **समाज–सेवा करते समय** सजग रहें। किसी प्रकार की निस्वार्थ सेवा हो, चाहे वह सभा–मंच पर भाषण करना हो अथवा किसी प्रकार जन–प्रवृत्ति हो, उससे आपको नाम और यश दोनों ही प्राप्त होंगे। यह नाम तथा यश **मंजरी या पौधें** में लगे कीट की भांति आपको नष्ट कर देंगे। **नाम और यश को विष** समझें। बहुत ही विनम्र बनें। यह गुण आपके हृदय में, प्रत्येक विषाणु में, नस–नस में तथा शरीर के कण–कण में अधिश्लिष्ट हो जाना चाहिए। इस नाम और **यश–रूपी प्रबल नशे** का शिकार बन कर कई लोगों का पतन हो गया, उनकी प्रगति रूक गयी। इसलिए मैं गंभीरतापूर्वक आपको सावधान कर रहा हूँ।

(10) **आपको विवेक, दूरदृष्टि,** सावधानी तथा दक्षता के गुणों का उल्लेखनीय अंश तक विकास करना चाहिए जिससे कि कर्तव्यता की स्थिति में ठीक कार्य–प्रणाली अपनाने का निर्णय ले सकें। ये गुण हों तभी आपको क्रान्तिक घड़ी में अथवा ठीक समय पर ठीक उपाय सूझेगा – जब चाहिए तभी, उससे घण्टेभर बाद नहीं। आपको बाद में किसी प्रकार का पश्चाताप नहीं करना पड़ेगा।

(11) **शान्त तथा शुद्ध चित्त** का प्राप्त होना बहुत ही कठिन है, किन्तु यदि आप ध्यान में प्रगति करना चाहते हैं। और यदि आप निष्काम कर्मयोग करना चाहते हैं तो आपको उपर्युक्त प्रकार का मन रखना ही होगा। तब आपके अधिकार में एक निर्दोष साधन, एक सुनियंत्रित मन होगा। यह साधकों के लिए अत्यंत आवश्यक अर्हता है। इसको प्राप्त करने के लिए आपको धैर्य तथा अध्यवसाय के साथ सुदीर्घ काल तक संघर्ष करना होगा। लौह संकल्प तथा दृढ़ निश्चय वाले साधक के लिए कुछ भी असंभव नहीं है।

(12) **आत्मनिरीक्षण करें**। अन्तरावलोकन करें। अपने दोषों को दूर करने का प्रयास करें। यही वास्तविक साधना है और सर्वाधिक कठिन साधना है। यह साधना करनी ही चाहिए, चाहे इसके लिए जो भी मूल्य चुकाना पड़े। बौद्धिक प्रगति कोई प्रगति नहीं है। यह अपेक्षाकृत सरल है। एक शब्दकोश साथ में ले कर कुछ पुस्तकें नियमित रूप से कुछ काल तक पढ़ें। आपकी बुद्धि विकसित हो जायेगी । किन्तु पूर्वोक्त साधना के लिए कई वर्ष तक कठोर संघर्ष करने की आवश्यकता है। कई पुरानी बुरी आदतों को मिटाना होगा। कई महामण्डलेश्वर तथा मठाधिपति हैं जो गीता या उपनिषद् के श्लोक पर सप्ताहभर तक व्याख्यान दे सकते हैं। उनका सम्मान होता है, परंतु चूँकि अंदर कई बड़े दोष हैं, अतः लोग उन्हें पसन्द नहीं करते। उन्होंने अधिक आत्मनिरीक्षण नहीं किया है। उन्होंने अपने दोषों को दूर करने के लिए कोई कठोर साधना नहीं की है। उन्होंने केवल अपनी बुद्धि का विकास किया है। कितनी दयनीय स्थिति है।

(13) **यह संसार विषय–वासना और अहंकार** के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। अहंकार ही प्रमुख वस्तु है। यही आधार है। विषय–वासना तो अहकार पर ही आश्रित है। यदि विचार अथवा "मै. कौन हूँ" के अनुसन्धान द्वारा अहंकार को नष्ट कर दिया जाय तो विषय–वासना स्वयं ही भाग खड़ी होगी। मनुष्य, जो अपना भाग्यविधाता है, अपनी दिव्य महिमा को खो चुका है तथा अज्ञानवाश विषय–वासना और अहंकार का दास बन बैठा है। वासना और अहंकार दोनो अविद्या की उपज है। आत्मा के ये दोनों शत्रु, ये दोनों दस्यु जो असहाय, अज्ञ क्षुद्र जीव को लूट रहे है, आत्मज्ञान के उदय होते ही नष्ट हो जाते है।

(14) **ब्रह्मचर्य की साधना निरापद** है। इसमें कोई रोग या अनिष्ट की आशंका नहीं हैं पाश्चात्य मनोवैज्ञानिकों की मान्यता है कि ब्रह्मचर्य–पालन से कई उलझने पैदा होती है, किन्तु ऐसी कोई बात नहीं है। उन्हें इस विषय का व्यवहारिक ज्ञान नहीं है। वे केवल भ्रान्तिपूर्ण कल्पनाओं के आधार पर यह मान बैठे है कि वासना–पूर्ति न की गयी तो **स्पर्श–भीति** जैसी कई प्रकार की विकृतियाँ उत्पन्न हो जाती हैं ऐसी विकृतियों के कारण कुद और ही होते है। यह **चित्त–विकार के कारण होता है** जो अत्यन्त ईर्ष्या, घृणा, क्रोध, चिन्ता तथा विभिन्न कारणों से होने **वाले विषाद से होता है**।

(15) **यद्यपि इस संसार में विविध** प्रकार के प्रलोभन तथा चित्तविक्षेप है, तथापि इस संसार में रहते हुए ब्रह्मचर्य का पालन करना सर्वथा सम्भव है। प्राचीन काल में कइयों ने इसमें सफलता प्राप्त की है। इस समय भी कई लोग है। सुअनुशासित जीवन, धार्मिक ग्रन्थों का स्वाध्याय, सत्संग, जप, ध्यान, प्राणायाम, सात्विक मिताहार, दैनिक आत्मनिरीक्षण तथा मनन, आत्माविश्लेषण तथा आत्मसंशोधन, सदाचार, यम–नियम का अभ्यास–ये सब ब्रह्मचर्य –पालनका मार्ग प्रशस्त करते है। लोग अनियमित, अनैतिक, अमर्यादित, अधार्मिक तथा अनुशासनहीन जीवन व्यतीत करते है। इसलिए वे कष्ट झेलते तथा जीवन का लक्ष्य प्राप्त करने में असफल रहते है। जिस प्रकार हाथी अपने ही सिर पर धूल उछालता है ठीक उसी प्रकार सांसारिक व्यक्ति अपनी मूर्खता के कारण कष्ट और बाधाओं को बुला कर अपने गले में बाँधता है।

(16) **वर्णाश्रम तो आज समाप्त प्राय** हो चला है। प्रत्येक व्यक्ति आज बनिया बन गया है ओर भिक्षा, ऋण, चोरी अथव ठगी के द्वारा किसी भी तरह अपनी तिजोरी भरने को लालायित है। प्रायः सारे ब्राह्मण तथा क्षत्रिय वैश्य बन चले है। आजकल सच्चे ब्राह्मण तथा क्षत्रिय मिलते ही नहीं। सबको येन केन प्रकारेण पैसाा चाहिए। वे अपने अपने आश्रम–ध र्म का पालन नही करते। यही मनुष्य के पतन का मूलभूत कारण है। यदि गृहस्थ अपने आश्रम–धर्म का नियम–निष्ठा के साथ पालन करे, यदि वह आदर्श गृहस्थ बने तो उसे सन्यास लेने की कोई आवश्यकता नहीं है। इन दिनों सन्यासियों की संख्या में जो बाढ़ –सी आ रही है, इसका एक कारण यह भी है कि गृहस्थ अपने कर्तव्य के पालन में विफल हो रहे है। एक आदर्श गृहस्थ का जीवन आदर्श सन्यासी के जीवन जितना ही दुःसाध्य और कठोर है। प्रवृति–मार्ग अथवा कर्मयोग का मार्ग उतना ही दुःसाध्य तथा कठोर है जितना कि निवृति मार्ग या सन्यास–मार्ग है।

(17) **कुछ ऐसे लोग है** जो कई दिन निरर्थक बातों तथा ताश और शतरंज खेलने में नष्ट कर डालते है। कुछ ऐसे लोग है जो मद्यपान तथा गपशप में कई सप्ताह गंवा देते है कुछ एसे लोग भी है जो वेश्याओं की संगति द्यूतक्रीड़ा तथा विविध व्याभिचारी कार्यो में अपव्यय करते है।

(18) **मनुष्य इस ससार** में किसी निश्चित उद्देश्य से आया है। जीवन का अर्थ खाना, पीना, वस्त्र पहनना और सन्तान उत्पन्न करना ही नही है। उसके पीछे कुछ दिव्य उदात वस्तु हैं इस जीवन से परे आनंद का शाश्वत जीवन है। जीवन के इस लक्ष्य के प्राप्त व्यर्थ प्रत्येक क्षण का उपयोग करना चाहिए। समय अतीव मूल्यावान् है। यह कभी वापस नही आ सकता। यह अत्यधिक गति से व्यतीत होता जा रहा है। जब घड़ी घंटा बजाती है, तो स्मरण रखे कि आपकी जीवनावधि से एक घंटा घट गया। आपको भय से कम्पित होकर कहना चाहिए " मृत्यु निकट आ रही है। मै अपना समय नष्ट कर रहा हूँ। मै अपने जीवन–लक्ष्य को कब प्राप्त करुँगा? मै इस संसार–चक्र से अपने को कब उन्मुक्त करुँगा।

(19) **वैराग्य तथा सन्यास** केवल मानसिक अवस्थाएँ है। संसार में रहते हुए संसार से बाहर रहना ही सन्यास की सच्ची कसौटी है। सच्चा सन्यास मन में है। सच्चा सन्यास एक मानसिक व्यवस्था है। व्यक्ति अपनी पत्नी, सम्पत्ति, सन्तति और पद का त्याग कर सकता है तथापि हो सकता है कि वह सन्यासी न हो क्योकि वह अपने मन तथा हद्य से उनसे आसक्त हो सकता है।

(20) **गिद्ध आकाश में ऊँची उड़ाने भरता है,** किन्तु उसका मन पशुओं के मृत शरीर पर ही केन्द्रित रहता है। मक्खी मिष्ठान्न तथा विष्ठा दोनों पर बैठती है। इसी तरह अनेक लोग ऐसे है जो दर्शन शास्त्र की ऊँची–ऊँची बातें करते है, पर उनका हृदय वैषयिक भोगों से ही चिपका रहता है। उनका मन काम –वासना तथा विविध प्रकार की तृष्णाओं से सन्तृप्त रहता है।

(21) **बहुसंख्यक लोगों का**, यहाँ तक कि शिक्षित कहें जाने वाले व्यक्ति का भी, जीवन में कोई निश्चित लक्ष्य नहीं होता । फल यह होता है कि लोग इधर –उधर वैसे ही मारे–मारे फिरते हैं, जैसे समुद्र में एक लकड़ी का कुंदा चपल लहरों के साथ निरवलम्ब इधर–उधर भटकता है। आज के जन–समुदाय को अपने कर्तव्य का यर्थाथ ज्ञान नहीं है। बहुत से विद्यार्थी **अपना बी.ए. तथा एम.ए. का अध्ययन** समाप्त कर लेते है पर आगे क्या करना है, इसका उन्हें पता नहीं रहता। अपनी प्रकृति के अनुसार किसी अच्छे उद्यम को चुनने की शक्ति उनमें नही है जिससे उन्हें जीवन में **अभ्युदय तथा सफलता** की प्राप्ति हो। अतः वे आलसी बन जाते है तथा साहस के कार्य या किसी कार्य को जिसमें कुशलता, चातुर्य और कुशाग्र बुद्धि की आवश्यकता है करने के आयोग्य सिद्ध होते है।

(22) **इस भाँति उनका समय नष्ट होता है** और सारा जीवन उदासी, निराशा और दुःख में बीत जाता है। उनके पास शक्ति है, बुद्धि भी है पर कोई निश्चित लक्ष्य या ध्येय नहीं, कोई आर्दश नही और न जीवन का कोई कार्यक्रम ही है। अतः उनका जीवन असफलता का प्रतीक बन, जाता है। प्रत्येक व्यक्ति को प्रथमतः अपने जीवन के लक्ष्य का उचित ज्ञान होना चाहिए। उसके पश्चात् कार्य करने का एक ऐसा ढंग निकालना चाहिए, जो अपने ध्येय की सफलता के अनुकुल हो। फिर लक्ष्य तक पहुँचने के लिए कठोर श्रम भी अवश्य करना चाहिए। इसके साथ ही व्यक्ति के अपने

आदर्श के अनुसार कर्म करना चाहिए। लड़खड़ाते पग से चल कर दस वर्ष बाद या अभी तथा इसी क्षण आप अपने आदर्श को साकार कर सकते हैं यह कोई महत्व की बात नही है किन्तु अपना एक आदर्श और एक ध्येय अवश्य होना चाहिए।

(23) **जब व्यक्ति ने अपने गृहस्थ–आश्रम** के कर्तव्यों को सफलतापूर्वक निर्वाह लिया है, जब उसके सभी लड़के जीविका में लग चुके है, जब उसकी लड़कियों का विवाह भी हो चुका है तब उसे अपने जीवन के अवशेष भाग को अध्यात्मिक प्रवृत्ति धार्मिक पुस्तकों के स्वाध्याय और भगवच्चिन्तन में व्यतीत करना चाहिए। पर ऐसा होता ही कहाँ है? बहुत से लोगो को तो इसका विचार तक नही आता कि वे क्या करने जा रहे है। प्रथम नौकरी से अवकाश मिलते ही वे दूसरी नौकरी पकड़ लेते हैं उनमें लालच यथावत् वर्तमान रहता है वे जीवन के अंतिम क्षणों तक रुपयों को ही गिनते रहते है, पौत्रों और प्रपौत्रों के विषय में ही सोचते रहते है। ऐसे लोगों के भाग्य को क्या कहा जाय ? वे सचमुच दयनीय है। भाग्यशाली है वह, जो चाकरी से अवकाश पाते ही अपना सारा समय एकान्त में स्वाध्याय तथा ध्यान में व्यतीत करता है।

(24) **कुछ लोगों की, जिनमें तर्क–शक्ति** विकसित होती है, अनावश्यक वाद विवाद तथा परिचर्चा में उलझने की आदत हो जाती हैं उनमें तर्कबुद्धि होती है। वे एक क्षण भी चुप नही रह सकते है। वे उत्तेजनापूर्ण विवाद की स्थिति खड़ी कर देते है। अत्यधिक विवाद की परिसमाप्ति शत्रुता तथा विद्वेष में होती है। **निरर्थक वाद विवाद में शक्ति का अत्यधिक अपव्यय होता है**। बुद्धि का यदि आत्मविचार की सम्यक् दिशा में उपयोग किया जाय तो यह सहायक होती है किन्तु यदि इसका उपयोग अनावश्यक वादविवाद में किया जाए तो यह बाधक होती है। बुद्धि साधक को अन्तर्ज्ञान की देहली तक पहुँचा देती हैं इससे आगे वह कुछ भी नही करती। तर्क भगवान् के अस्तित्व का अनुमान लगाने तथा भगवत्साक्षात्कार के लिए उपयुक्त विधि खोज निकालने में सहायक होता है। अन्तर्ज्ञान तर्क का अतिक्रमण करता है, किन्तु उसका खण्डन नही करता। अन्तर्ज्ञान सत्य का अपरोक्ष दर्शन है। यहाँ तर्क की पहुँच नहीं है। तर्क का संबन्ध भौतिक जगत् के विषयों तक ही हैं जहाँ 'क्यों' तथा 'किस कारण से' है, वहाँ तर्क है। तर्क के परे अनुभवातीत विषयों में तर्क उपयोगी नही होता है।

(25) **किसी काम में बारम्बार विफलता आये तो** भी किच्चित् निराश नही होना चाहिए। विफलताओं से पाठ ही गिलता है। इससे आप विफलता के कारण को जान जायेंगे और भविष्य में उनकी पुनरावृत्ति न करने में सावधान रहेंगे। आपको सावधानीपूर्वक अपनी रक्षा करनी चाहिए। आपको दुर्बलताओं में ही आपकी शक्ति का रहस्य छिपा हुआ हैं बारम्बार की असफलताओं के होते हुए भी आपको अपने सिद्धांतों, आदर्शो, मान्यताओं और साधना में दृढ़ता के साथ संलग्न रहना चाहिए और साहस के साथ आध्यात्मिक पथ पर आगे बढ़ते जाना चाहिए। कहना चाहिए : ''कुछ भी हो मै निश्चय ही विजयी होकर निकलूँगा। इसी जन्म में नहीं नहीं इस क्षण में आत्मसाक्षात्कार प्राप्त करके रहूँगा। असफलता, फिसलन अथवा पतन किसी भी तरह मुझे परास्त नहीं कर सकेंगे।

(26) **बुद्धि चिन्तन तथा तर्क** में बहुत सहायता करती है किन्तु जिन लोगो में तर्क–शक्ति अत्यधिक विकसित होती है, वे संशयी हो जाते है। उनकी तर्क–शक्ति भी विकृत हो जाती है उनमें वेदों और महात्माओं के उपदेशों में विश्वास नही रह जाता। वे कहते है : ''**हम बुद्धिवादी हैं**। हम किसी भी ऐसी बात पर विश्वास नही कर सकते जो हमारे विवेक को अच्छी न लगे। हमे उपनिषदो मे विश्वास नही है। जो बात विवेक के क्षेत्र से बाहर है, उसे हम स्वीकार नही करते । हमे भगवान और सदगुरूओं में श्रद्धा नहीं है।'' ये तथाकथित बुद्धिवादी एक प्रकार के नास्तिक ही हैं। उन्हें विश्वास दिलाना बहुत ही कठिन है। उनमें अशुद्ध तथा विकृत तर्क–शक्ति होती हैं भगवद्विचार उनके मस्तिष्क में प्रवेश नही कर पाते। वे किसी पकार की अध्यात्मिक साधना नही कर सकते। वे कहते है ''आप अपने औपनिषदिक ब्रह्म अथवा भक्तों को ईश्वर को दिखाइए।'' संशयात्मा विनिष्ट हो जायेंगे। तर्क एक सीमित साधन हैं यह जीवन की अनेक रहस्यमयी समस्याओं का स्पष्टीकरण नही दे सकता है। जो व्यक्ति तथा–कथित बुद्धिवाद तथा संशयवाद से मुक्त हैं वे ही भगवत्साक्षात्कार के मार्ग पर अग्रसर हो सकते है।

(27) **मै सदा आपकी सहायता को उद्यत हूँ।** आपसे मेरी सदा ही सहानुभूति हैं मैं आपकी और सुख, शान्ति और प्रेम की विचार–तरंगे प्रेषित कर रहा हूँ। मैं आपको प्रोत्साहित करुगा, किन्तु आपका काम मै नहीं कर सकूँगा। आपको ही अपना काम करना होगा। संघर्ष और पुरुषार्थ आपकी ओर से ही होना चाहिए। आध्यात्मिक निश्रयणी पर एक–एक पग आपको स्वयं चढ़ना होगा। इस बात को सदा स्मरण रखें।

(28) **हे सौम्य! प्रिय अमर आत्मन!** साहसी रहें। भले ही आप बेरोजगार हों, खाने को न मिले, चिथड़ों में लिपटें हो, फिर भी प्रसन्न रहें। आपका मूल स्वरुप सत–चित् आनंद हैं यह बाहरी ढाँचा, भौति अनित्य आवरण भ्रम है, माया की सृष्टि हैं सुख और संतोष के साथ हँसते रहें, सीटी बजाते हुए उछलें–कूदे। ओम, राम, राम–यही गाया करें। माँस–पिण्ड के इस बंधन से बाहर निकलें आप यह नश्वर शरीर नहीं हैं आप अमर आत्मा हैं **आप न स्त्री है न पुरुष। आप आत्मा है** जो आपकी हद्य–गुहा में निवास करता हैं ऐसा अनुभव करें, ऐसाा ही व्यवहार करें, अपने जन्मसिद्ध अधिकार का दावा करें–कल नहीं, परसों नहीं वरन् अभी ओर इसी क्षण। **हे प्रिय राम** ! **''तत्त्वमसि – तू वही है।''** अनुभव करें, बल देकर कहें, स्वीकार करें, **साक्षात्कार करें।**

5.7 सारांश

इस पंचम खण्ड के अध्ययन के अंतर्गत आपने चार योग के समसामयिक चिन्तकों का अध्ययन किया। **इकाई 13 में स्वामी विवेकानंद** का जीवन परिचय, स्वामीजी के आध्यात्मिक चिन्तन, के अन्तर्गत सत् एवं ईश्वर का स्वरुप, जगत् या ब्रम्हाण्ड का स्वरुप, माया (प्रकृति) सिद्धांत, आत्म अनुभूति के साधन का अध्ययन किया। साथ ही स्वामी जी के ज्ञान योग, भक्तियोग कर्मयोग एवं राजयोग का अध्ययन किया इस प्रकार भारत के आध्यात्मिक पुर्नजागर में विवेकानंद की भूमिका एवं योग साधना में उनके दृष्टिकोण से परिचित हुए।

इकाई 14 में श्री अरविंद का जीवन परिचय, उनके आध्यात्मिक चिन्तन के अन्तर्गत सृष्टि विचार, समष्टिवादी विकासवाद, सर्वमुक्ति की अवधारणा का परिचय आपने प्राप्त किया। इसी इकाई में आपने श्री अरविंद की शिक्षाओं के विविध पहलुओं का भी अध्ययन किया। साथ ही आपने श्री अरविंद के **पूर्ण योग** के सन्दर्भ में भी ज्ञान प्राप्त किया इस प्रकार आप इस **विकासवादी अध्यात्मवाद के जनक समसामयिक चिन्तन** के विचारों एवं योग साधना के स्वरुप से अवगत हुए।

इकाई 15 में भारत के वैज्ञानिक योग के निर्देशक स्वामी कुवल्यानन्द का जीवन परिचय आपने प्राप्त किया। स्वामी कूवल्यानंद के आध्यात्मिक चिन्तन के अन्तर्गत योगी एवं उसकी अर्न्तदृष्टि तथा योग की सैद्धांतिक विवेचनाओं का प्रायोगिक अध्ययन के महत्व की जानकारी हासिल की साथ ही स्वामीजी की शिक्षाओं का भी विस्तृत अध्ययन आपने किया। प्राणायाम की महत्ता एवं योग चिकित्सा पर भी स्वामी जी के विचारों से आप अवगत हुऐ। इस प्रकार आपने भारत के उस योगी के संदर्भ में अध्ययन किया जिसने योग को वैज्ञानिक ज्ञान की कसौटियों पर कसा एवं योग की वैज्ञानिकता को सत्य सिद्ध करने का प्रयास किया।

इकाई 16 में आप स्वामी शिवानंद के जीवन परिचय से परिचित हुऐ एवं उनके कार्यो की जानकारी हासिल की। स्वामी शिवानंद के आध्यात्मिक चिन्तन के अन्तर्गत आपने उनके व्यापक विचार जाने तथा सेवा, प्रेम, दान, शुद्धि, ध्यान ज्ञान के उपदेश से अवगत हुऐ। स्वामी शिवानंद की शिक्षाओं के अन्तर्गत आपने योग साधना के सोपानों में उत्पन्न होनें वाले विध्न तथा उनके निवारण के संदर्भ में प्रायोगिक जानकारी प्राप्त की। इस प्रकार **सन्यास योग के संस्थापक इस समसामयिक योग चिन्तक** के सबध मे जानकारी हासिल प्राप्त कर सके। इस खड के सम्पूर्ण अध्ययन से आप भारत में योग के समसामयिक स्वरूप एवं विकास से अवगत हुए।

बोध प्रश्न :

टिप्पणी क : अपने उत्तर नीचे दिये गये स्थान में लिखें ।

ख : इकाई के अंत में दिये गये उत्तरों से अपने उत्तर मिलाइए।

5. योग चिकित्सा पर स्वामी कुवलयानंद के विचार दीजिये ?

6. स्वामी शिवानन्द के कोई पाँच उपदेश बतलाइये ?

5.8 बोध प्रश्न के उत्तर

प्र. 1. स्वामी विवेकानन्द का संक्षिप्त जीवन परिचय दीजिये ?

उ. स्वामी विवेकानन्द का जन्म 12 जनवरी 1863 को कलकत्ता में हुआ था। उनका मूल नाम नरेन्द्रदत्त था। वे बचपन से ही निर्भीक बुद्धिमान और स्पष्ट युवक वक्ता थे जो राजनीति, धर्म व सामाजिक विषयों पर किसी से भी विद्वतापूर्ण चर्चा करने में समर्थ थे। उनकी बौद्धिक खोज और तरूण अवस्था में ही श्री रामकृष्ण की सेवा और धार्मिक सहिष्णुता के संदेश से वे अत्यंत प्रेरित हुए। 16 अगस्त 1886 को श्री रामकृष्ण के अवसान के पश्चात उन्होंने अपने गुरू का संदेश समस्त विश्व में पहुँचाने का बीड़ा उठाया। वे **भारतीय नवजागरण** के अग्रदूत बन गये। देश में नवजागरण लाने के लिए उन्होंने सम्पूर्ण भारत का भ्रमण किया तथा देश के पतन के कारणों एवं जीवन के सभी पक्षों और समस्याओं पर गहराई से विचार किया।

प्र. 2. स्वामी विवेकानन्द के दर्शन में भक्ति योग प्राप्त करने के सोपान लिखिये ?

उ. स्वामी विवेकानन्द के दर्शन में भक्ति योग के निम्नलिखित सोपान है –

(1) प्रथम स्तर सामान्य **पूजा, प्रार्थना,** आराधना इत्यादि। इसमें आराध्य की सगुण उपासना होती है। इसमें ऋषियों, मुनियों, देव पुरुषों , पैगम्बरों, आदि को महत्व है। मूर्ति पूजा इसी का एक रुप है।

(2) पूजा की सघनता या व्यापकता :– इसमें पूर्ण भक्ति के साथ ईश्वर की प्रार्थना, ईश्वर का अन्तकरण से सुमिरन, उनके गुणों में ध्यान, उनका कीर्तन, श्लोकों का जाप आदि दैनंदिन के कर्म हो जाते है। अन्तः में इन कर्मो का अर्थ स्पष्ट होने लगता है। तथा चेतना इन कार्यो की अर्थपूर्णता को ग्राह्य करने लगती है।

(3) मौन का अर्न्तनाद :– इस स्वर पर प्रार्थना आदि द्वितीय स्तर की सघनता मौन और शान्त होने लगता है। भक्त का हर क्षण ईश्वर के आनंद से विलग नहीं होता है उसकी सारी भावनात्मक शक्ति ईश्वरीय प्रेम में लग जाती है तथा ईश्वर की अनुभूति होने लगती है।

(4) भक्ति की पूर्णता :– इस स्तर पर अनुभूति की सघनता इतनी धनीभूत होती है कि भक्त में भगवान की भावना की अनुभूति का भी अन्तर नही रह जाता केवल ईश्वर में **तल्लीनता मात्र** रह जाती है। भक्त भगवान सादृश्य हो जाते है यह एकत्व की भावनात्मक अनुभूति है यही भक्ति योग है यही प्रेम योग है। इस योग के साधन स्वरुप भावनायें हर एक मनुष्य में **जन्मजात** सहज प्राप्य है केवल इन्हें धनीभूत करना होता है। अतः सब योगो में यह कही ज्यादा सरल मार्ग है।

प्र. 3. श्री अरविंद के विकासवाद की तीन क्रियाओं का उल्लेख कीजिये ?

उ. श्री अरविंद के अनुसार विकासवाद में भौतिकतत्वों से जीवन और जीवन से मन की उत्पत्ति न मानकर **भौतिक वस्तुओं से जीवन और जीवन से मन की** उत्पत्ति मानते हैं। उनके अनुसार भौतिक वस्तु जीवन का प्राकृत रूप है और जीवन चेतना का प्राकृत रूप है। श्री अरविंद ने अपने **विकासवादी सिद्धान्त** में तीन प्रकार की क्रिया का उल्लेख किया है –

(i) विस्तारण (ii) ऊर्ध्वीकरण (iii) समग्रीकरण।

जड़ से चेतन की ओर बढ़ने की प्रक्रिया या विकास की प्रक्रिया को आरोह कहते हैं, तथा ह्यास की प्रक्रिया को अवरोह कहा जाता है।

विकास की तीन दिशायें :– श्री अरविंद ने अपने विकासवाद में विकास की तीन दिशायें मानीं है जो निम्नलिखित है –

(i) विस्तारण – विस्तारण से श्री अरविंद का तात्पर्य विभेदीकरण, संगठन और विविधता से है। उनके अनुसार विकास चौड़ाई और मात्रा में होता है। निम्न स्तर की वस्तु में संगठन, फैलाव और विभेद होता है और फिर वह उच्च स्तर की वस्तु का स्वरूप धारण करता है और यह विस्तारण सृष्टि में जड़ से लेकर मनुष्य तक देखा जा सकता है।

(ii) ऊर्ध्वीकरण – श्री अरविंद यह मानते हैं कि विकास क्रम में निम्न स्तर की वस्तुएँ उच्च स्तर की हो जाती है। विस्तारण की क्रिया के साथ–साथ ही ऊर्ध्वीकरण की प्रक्रिया भी चलती है। विकास क्रम में चेतना शक्ति का अधि ाक से अधिक सूक्ष्म और तीव्र होते जाना ऊर्ध्वीकरण है। इसी प्रक्रिया के द्वारा भौतिक वस्तु से जीवन, जीवन से मन, मन से अति मानस का ऊर्ध्वीकरण हुआ और निश्चित ही यह प्रक्रिया अवरोहण के समान है।

(iii) समग्रीकरण – समग्रीकरण विकास की प्रक्रिया है यह निम्न स्तर और उच्च स्तर में एकरूपता बनाए रखती है, निम्न तत्व का उच्च तत्व में परिवर्तित हो जाना ही विकास है, लेकिन इस विकास में निम्न तत्व नष्ट नहीं होता, बल्कि उच्च तत्व में रूपान्तरित होता है जैसे – भौतिक पदार्थ का रूपांतरण वनस्पति में, वनस्पति का पशु जगत में पशु जगत का मानव में रूपांतरण देखा जा सकता है। विकास की इस प्रक्रिया में सबसे महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि, उच्चतम् तत्व निम्नतम् तत्व का संशोधित, परिष्कृत, विकसित एवं उन्नत रूप होता है।

प्र. 4. श्री अरविंद के अनुसार जीवन एवं शिक्षा का लक्ष्य बतलाईये ?

उ. श्री अरविंद की शिक्षायें समाज के हर पहलू पर उनके दार्शनिक सिद्धांतों के अनुरुप बड़ी व्यावहारिक एवं सरल शिक्षायें है।

(1) **जीवन का लक्ष्य** :– श्री अरविंद कहते है – जीवन का एक प्रयोजन है। वह प्रयोजन है भगवान को खोजना और उनकी सेवा करना। भगवान दूर नहीं है, वे हमारे अंदर है, अन्दर गहराई मे, भावनाओं और विचारों से ऊपर। **भगवान के साथ है शान्ति,** निश्चितंता और सभी कठिनाइयों का समाधान।

(2) **शिक्षा का लक्ष्य**:– शिक्षा का प्रमुख उद्देश्य होना चाहिए कि वह अन्तरात्मा की इस बात में सहायता करे कि **अपने अन्तरतम से अच्छी–से–अच्छी वस्तु को बाहर लाये** और उसे किसी श्रेष्ठ एवं उदार उपयोग के लिये पूर्ण बनाये। अपने अध्यवसाय का लक्ष्य अपने आपको जानना, अपनी निजी निर्यात, अपना मार्ग चुनना, अपने को देखना समझना और संकल्प करना होना चाहिए। न कि पृथ्वी कैसी रची गई आदि सिखाने की अपेक्षा यह अनन्त गुना महत्वपूर्ण है।

(3) श्री अरविंद कहते थे कि विद्यार्थियों को नित्य यह स्मरण करवाना चाहिए कि 'हम अपने परिवार के लिए नही पढ़ते, हम कोई अच्छा पद पाने के लिए नहीं पढ़ते, हम पैसा कमाने के लिए नहीं पढ़ते, हम कोई उपाधि पाने के लिए नहीं पढ़ते। हम सीखने के लिए, जानने के लिए, संसार को समझने के लिए और इससे मिलने वाले आन्नद के लिए पढ़ते है।

प्र. 5. योग चिकित्सा पर स्वामी कुवलयानंद के विचार दीजिये ?

उ. **योग चिकित्सा पर स्वामी कुवल्यानंद के विचार** :– यौगिक चिकित्सा दिन प्रतिदिन ख्याति प्राप्त कर रही है। भारत ऐसे अनेक छोटे और बड़े संस्थानों से भरा पड़ा है जो कि यौगिक उपचार द्वारा अनेक रोगों को दूर करने का दावा करते हैं। इनमें से कुछ तो अच्छी प्रगति भी कर रहे हैं। हो सकता है कि सारे के सारे इस क्षेत्र में तब तक अपनी सिद्धहस्तता सिद्ध न कर पायें, जब तक कि इसका सरकारी मानक स्थिर नहीं हो जाता, जिसे कि इस नई चिकित्सा को प्राप्त करने के लिए लम्बा समय लगेगा। केवल इसके अभ्यासियों की संख्या के बल पर इस पद्धति की उपादेयता हम सिद्ध नहीं कर सकते। लेकिन यह सत्य है कि इतनी ख्याति प्राप्त करने से इतना स्पष्ट हो जाता है कि इसकी अपनी कुछ विशेषता अवश्य है। यह ध्यान देने की बात है कि बहुत से चिकित्सक जो कि आरंभ में इसकी ओर अविश्वास तथा निराशापूर्ण दृष्टि से देखते थे आज अनुभव हो जाने के बाद इसकी अच्छाइयां जान गये हैं। देश तथा विदेश में मनोकायिक चिकित्सक का विशेषज्ञ तथा मनोविकारी चिकित्सक इस चिकित्सा प्रणाली में रूचि दिखाने लगे हैं। वे यह विश्वास करने लगे हैं कि योग द्वारा मनोशारीरिक तनाव दूर होते हैं, जो कि उनके रोगियों में मानसिक तथा स्नायु दुर्बलता दूर हो जाने के बाद भी बने रहते हैं। बहुत से चिकित्सक अब यह समझ गये हैं कि मनोचिकित्सा तथा पुनर्वास के क्षेत्र में जीर्ण रोगियों के लिए **यौगिक–चिकित्सा महत्वपूर्ण योग दे सकती हैं**। अतः यौगिक–चिकित्सा को अवैज्ञानिक तथा थोथी कहकर तिरस्कृत करना अनावश्यक भूल ही होगी। यौगिक चिकित्सा वास्तविक रूप में व्यावहारिक मूल्य की होगी यदि उसके सिद्धान्त अन्य किसी चिकित्सा पद्धति के सिद्धान्तों में न मिलाये जावें। कुछ आधुनिक योग परम्पराओं में संभवतः मान्यता प्राप्त करने या प्रदर्शनों में आकर्षण उत्पन्न करने के निष्पाप दृष्टिकोण, इस प्रकार के सिद्धान्तों को मिलाने की तीव्र प्रवृति और मोह देखने में आते हैं। दूसरी ओर चिकित्सक समूह योग–चिकित्सा पद्धति को एक विशेष व्यायामात्मक चिकित्सा पद्धति का रूप समझाने में प्रवृत्त हैं। यौगिक चिकित्सा प्रविधियों में कुछ व्यायाम आवश्यक हैं, परंतु ये ध्यान रखा जाय कि साधारण गति युक्त और उग्र व्यायामों के शरीर क्रियात्मक तत्व उन पर लागू नहीं किए जा सकते हैं। तथापि यौगिक चिकित्सा में केवल व्यायाम ही नहीं है। यह एक मिश्रित स्वरूप की चिकित्सा प्रक्रिया है। जिसमें मानव व्यक्तित्व के सभी पहलुओं पर ध्यान दिया जाता है।

प्र. 6. स्वामी शिवानन्द के कोई पाँच उपदेश बतलाइये ?

उ. स्वामी शिवानन्द के उपदेशों में योग पर बृहद विवेचन है

(1) साधक का स्वभाव यदि सामान्य बातों से ही आसानी से क्रुद्ध हो जाने वाला हो तो वह ध्यानयोग में कोई प्रगति नहीं कर सकता है। उसको तो मिलनसार, प्रेमल तथा परिस्थिति के अनुरूप बनने वाले स्वभाव का पोषण करना चाहिए। कुछ साधक, जब उनका दुर्गुण तथा त्रुटि उन्हें बता दी जाती हैं तो बड़ी जल्दी अप्रसन्न हो जाते हैं और दोष दिखाने वाले व्यक्ति से रूष्ट हो कर झगड़ने लग जाते है। वे सोचते है कि इस व्यक्ति ने ईर्ष्या तथा घृणा के कारण उन्हें अपनी ओर से गढ़ लिया है। यह बुरा है। दूसरे व्यक्ति हमारी त्रुटियों का बड़ी सरलता से पता लगा सकते है। जो व्यक्ति आत्मनिरीक्षण नही करता तथा जिसकी वृत्ति बहिमुखी है, वह अपने दोषों को पहचान नहीं सकता है। अभिमान उसका आवरण बन जाता है और उसकी मानसिक दृष्टि को धुँधला बना देता है। साधक को यदि प्रगति करनी है। तो यदि कोई दूसरा व्यक्ति उसके दोषों को उसे दिखा दे तो चाहिए कि वह उन्हें स्वीकार कर ले, उनके उन्मूलन का यथाशक्त प्रयास करे तथा दोष दिखाने वाले व्यक्ति को धन्यवाद दे। वह तभी अध्यात्म मार्ग में गति कर सकेगा।

(2) स्वाग्रही प्रकृति का उन्मूलन करना बहुत ही कठिन कार्य है। प्रत्येक व्यक्ति ने अनादि काल से अपने व्यक्तित्व का निर्माण किया है। उसने अपने राजसिक मन को मनमानी करने की पूरी छूट दे रखी है।

(3) व्यक्ति को दूसरों के आचरण तथा प्रकृति के अनुकूल अपने को बनाना बहुत कठिन लगता हैं उसका मन जाति, वर्ण तथा सम्प्रदाय के पक्षपात से भरा रहता हैं वह नितान्त असहिष्णु होता है। वह सोचता हैं कि उसका अपना दृष्टिकोण, उसकी अपनी राय और जीवन–पद्धति ही ठीक है और दूसरों के दृष्टिकोण गलत है। दोष–दृष्टि की प्रकृति उसमें दृढ़ निविष्ट हैं दूसरों की त्रुटियाँ देखने को वह तुरन्त उछल पड़ता है। उसके नेत्र विकृत होते है। वह दूसरों के गुण नहीं देख सकता। वह दूसरों के सत्कार्य पसन्द नही कर सकता। अपने ही कार्य तथा योग्यता की डींग मारता रहता है। यहि कारण है कि वह प्रत्येक व्यक्ति के साथ झगड़ता रहता है और किसी के साथ अधिक समय तक मित्रता नहीं निभा सकता हैं कई साधको में भी ये त्रृटियाँ पर्याप्त मात्रा में होती है। इसी कारण वे भी अपने मार्ग में कोई प्रगति नही कर पाते। उन्हें सहिष्णुता, शुद्ध प्रेम तथा अन्य सात्विक गुणों के विकास द्वारा इन त्रृटियों का उन्मूलन करना चाहिए।

(4) आपने विद्वान् सन्यासियों के अनेक वाग्मितापूर्ण भाषण सुने होंगे, गीता, रामायण, भागवत तथा उपनिषदों की कथाएँ, प्रवचन तथा व्याख्याएँ सुनी होगी। आपने कई बहुत उपयोगी नैतिक तथा अध्यात्मिक उपदेश सुने होंगे किन्तु आपने उनमें से किसी को भी व्यावहार में लाने का और दीर्घ काल तक साधना करने का कुछ भी गंभीर प्रयत्न नहीं किया। केवल उन धार्मिक विचारों को बुद्धि से स्वीकार करना, अपने को तथा अपने अन्तर्यामी को धोखा देने के लिये प्रातः–साय थोड़ी देर आंखे मींच कर बैठना, निरुत्साह तथा असावधानीपूर्वक कुछ नित्यकर्मो को करते रहना तथा कुछ सद्गुणों के विकास करने का स्वल्प प्रयास करना तथा अपन गुरु के उपदेशों को कार्यान्वित करने का धीमा प्रयत्न–ये पर्याप्त नही है। इस प्रकार की मनोवृत्ति पूर्णतयाा छोड़ देनी चाहिए। साधक को अपने गुरु के उपदेशों तथा शास्त्र के वचनों का अक्षरशः पालन करना चाहिए। मन को कुछ भी ढील नही देनी चाहिए। अध्यात्म–मार्ग में अर्ध प्रयत्न काम नही देता। आप यह नहीं कह सकते, 'बाद में देखा जायेगा। जब मै निवृत होऊँगा, तब अधिक समय दूँगा। कम या अधिक, जितना सभव था, उतना मैने पालन किया। यह 'कम या अधिक' या 'यथासम्भव' का मामला साधक के लिए अनिष्टकर है। आध्यात्मिक उपदेशों में सामान्य नियमों में अपवाद, छूट या रियायत सम्भव नही हैं पूर्ण, अन्ध तथा अतिनियमनिष्ठ आज्ञाकारिता की यहाँ अपेक्षा है।

(5) बिना सोचे–समझे कोई टिप्पणी न करें। एक भी निरर्थक शब्द न बोलें। निराधार बातें, लम्बी बातें , ऊँची बातें तथा असंयत बातें करना छोड़ दें। मौन रखें। इस भौतिक प्रातिभासिक जगत् में अपने अधिकार का दावा न करें, उसके लिए लड़े नहीं। अपने कर्तव्यों की चिन्ता अधिक और अधिकार की चिन्ता कम करें। अधिकार का दावा रजोगुणी अहंकार से आता है। ये अधिकार व्यर्थ है। यह समय ओर शक्ति का अपव्यय है। भागवत चेतना के अपने जन्मसिद्ध अधिकार का दावा करें। आप ब्रह्म हैं। इस वास्तविक जन्म–सिद्ध अधिकार का दावा करें। तभी आप बुद्धिमान् है।

5.9 उपयोगी संदर्भ ग्रंथ

(1) भारत के महान् योगी भाग 1–10 — **विश्वनाथ मुखर्जी**
अनुराग प्रकाशन चौक
वाराणसी 221001

(2) योग और अनुसंधान — **स्वामी कुवलयानन्द**
कैवल्यधाम लोनावाला पूना 410403

(3) प्राणायाम — **स्वामी कुवलयानन्द**
कैवल्यधाम लोनावाला पूना 410403

(4) यौगिक चिकित्सा — **स्वामी कुवलयानन्द**
प्रका. केन्द्रीय स्वास्थ्य शिक्षा ब्यूरो
भारत सरकार, नई दिल्ली 110001

(5) साधना — **स्वामी शिवान्द**
दिव्य जीवन संघ
पत्रालय शिवानन्द नगर 249192
जिला टिहरी गढ़वाल हिमालय (उ.प्र.)

(6) अध्यात्म विद्या — **स्वामी शिवानन्द**
दिव्य जीवन संघ
पत्रालय शिवानन्द नगर 249192
जिला टिहरी गढ़वाल,हिमालय (उ.प्र.)

(7) व्यक्तित्व विकास — **स्वामी विवेकानंद**
अद्धैत आश्रम
5–देही एन्टाली रोड
कलकत्ता – 700014

(8) राजयोग — **स्वामी विवेकानंद**
अद्धैत आश्रम, 5–देही एन्टाली रोड
कलकत्ता – 700014

(9) राजयोग — **स्वामी विवेकानंद**
अद्धैत आश्रम, 5–देही एन्टाली रोड
कलकत्ता – 700014

(10) भक्ति योग — **स्वामी विवेकानंद**
अद्धैत आश्रम, 5–देही एन्टाली रोड
कलकत्ता – 700014

(11) योग समन्वय — **महर्षि अरविंद**
अरविंद आश्रम पाण्डिचेरी

(12) दिव्य जीवन — **महर्षि अरविंद**
अरविंद आश्रम पाण्डिचेरी

(13) लाईट ऑनयोग — **महर्षि अरविंद**
अरविंद आश्रम पाण्डिचेरी

(14) योग एवं एजुकेशन — **महर्षि अरविंद**
अरविंद आश्रम पाण्डिचेरी